इंग्लैण्ड, जापान एवं रूस का आर्थिक विकास

Landmarks in Economic Development of U. K., Japan and U S. S. R.
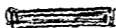
[illegible] नाजवाद रूपी साधन के माध्यम से किया जाता है।

न केवल अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों वरन् सभी रुचियों और विषयों के पाठकों के लिए यह वांछनीय है [illegible] वे इन दोनों महान् अर्थ-व्यवस्थाओं के [illegible] संक्षिप्त

Dr K A. CHOPRA
Department of Economics
University of Rajasthan, JAIPUR

AND

Prof P N. MATHUR
Department of Economics
Govt. Girls College, KOTA

Prof M L MEHTA
Department of Economics
Government College, BHILWARA

COLLEGE BOOK DEPOT
TRIPOLIA ★ JAIPUR-2

Japan

Development of the Japanese economy during the Meiji Restoration Agricultural development A few important facts about principal modern industries Role of small scale industries Salient features of Japanese foreign trade Role of State in Economic development Factors causing Post World War II economic expansion

USSR

New Economic policy Economic conditions on the eve of the First Five Year Plan. Collectivisation Soviet agricultural development since 1954 Problems of rapid industrialisation Recent trends in planning and economic development

Published by College Book Depot Tripolia Bazar Jaipur 2
Printed at Oriental Printers Jaipur

भूमिका

राजनीतिक द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के अनुरूप ही आधुनिक आर्थिक जगत् मुख्यतः दो अर्थ-व्यवस्थाओं द्वारा शासित है—एक है पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था और दूसरी है समाजवादी अर्थ-व्यवस्था। साम्यवादी व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था का ही एक परिष्कृत रूप है। साध्य साम्यवाद है जिसे समाजवाद रूपी साधन के माध्यम से प्राप्त किया जाना है।

न केवल अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों वरन् सभी रुचियों और विषयों के पाठकों के लिए यह वांछनीय है कि वे इन दोनों महान् अर्थ-व्यवस्थाओं के प्रतिनिधि राष्ट्रों के आर्थिक विकास का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। इसी उद्देश्य से, प्रस्तुत पृष्ठ अपने कलेवर में ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस और जापान के आर्थिक विकास के इतिहास को समेटे हुए हैं। उपर्युक्त दोनों अर्थ-व्यवस्थाओं के प्रतिनिधि राष्ट्र होने के साथ ही ये अपनी कुछ और भी विशेषताएँ रखते हैं। ब्रिटेन औद्योगिक विकास का अग्रदूत रहा है, रूस नियोजन के चमत्कारिक परिणामों का नमूना है और जापान लघु-कुटीर-उद्योगों और वृहद् उद्योगों का सुन्दर तालमेल है। भारत ने अपनी मिश्रित अर्थ व्यवस्था में नियोजन, लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा वृहद् उद्योगों—सभी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वह पूंजीवादी और समाजवादी दोनों अर्थ-व्यवस्थाओं के तत्त्वों को लेकर चला है। अतः भारतीय छात्रों के लिए तो इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास के ज्ञान का विशेष महत्त्व है।

आशा है उपर्युक्त राष्ट्रों के आर्थिक विकास के प्रमुख मील-स्तम्भों को इंगित करने वाली यह पुस्तक छात्रों व सभी प्रबुद्ध पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखकगण

अनुक्रमणिका

इङ्गलैण्ड का आर्थिक विकास
(Economic Development of U. K)

जापान का आर्थिक विकास
(Economic Development of Japan)

सोवियत रूस का आर्थिक विकास
(Economic Development of USSR)

इंग्लैण्ड के आर्थिक-विकास में सीमा-चिन्ह

(LANDMARKS IN ECONOMIC DEVELOPMENT OF U. K.)

' ब्रिटेन के दो भौगोलिक गुण हैं—एक
ससार से पृथक्ता और दूसरा
पृथ्वी से सम्पर्क।"

—मैकिण्डर

सामान्यत अर्थ किसी रक्तरजित विद्रोह अथवा हिंसात्मक विस्फोट से लिया जाता है, जैसे 1789 की फ्रेन्च क्रान्ति अथवा 1917 की रूसी क्रान्ति। लेकिन आर्थिक परिवर्तनो के सम्बन्ध मे "क्रान्ति ' शब्द का यह अर्थ ग्राह्य नही है। इस क्षेत्र मे औद्योगिक क्रान्ति का आशय उद्योगो मे हुए उन परिवर्तनो से है जिनके फलस्वरूप दस्तकारी के स्थान पर शक्ति सचालित यत्रो से काम होने लगा और उत्पादन-विधियो मे आमूल-चूल परिवर्तन हो गए। दूसरे शब्दो मे औद्योगिक क्रान्ति का तात्पर्य है निर्माण-कार्य, खनिक कर्म परिवहन, सचार-साधन, कृषि आदि मे मशीनो और वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग और फलस्वरूप आर्थिक ढाँचे मे परिवर्तन।

जब औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पुरातन सीमित गृह उद्योगो की अपेक्षा वाष्प या विद्युत् यत्रो की सहायता से बडे-बडे कारखानो मे बहुत बडी मात्रा मे वस्तुओ का उत्पादन होने लगा तो न केवल ब्रिटेन ने बल्कि सम्पूर्ण विश्व ने आर्थिक विकास के एक नए युग मे प्रवेश किया। आर्थिक जगत मे परिवर्तन प्राय धीरे-धीरे होते हैं, किन्तु 18वी शताब्दी के परिवर्तन इतने शीघ्रतापूर्वक हुए और साथ ही वे इतने मौलिक थे कि उनसे उत्पादन विधियाँ पूर्णतया बदल गई व्यापार के स्वरूप मे परिवर्तन हो गया तथा अनेक नवीन व्यापारिक सस्थाएँ अस्तित्व मे आई। औद्योगिक क्षेत्र मे हुए इन परिवर्तनो के परिणाम इतने महत्वपूर्ण थे कि इग्लैण्ड के और तत्पश्चात् विश्व के अनेक देशो के आर्थिक क्षेत्र के प्रत्येक अग में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न हो गई। प्रोफेसर ए बर्नी के शब्दो में—' इसके (औद्योगिक क्रान्ति के) अन्तर्गत हुए परिवर्तन इतने व्यापक और गहन थे गुणो और दोषो के अनोखे सम्मिश्रण को अपने मे छिपाए इतन दुखदाई थे तथा एक ओर सामाजिक कष्टो एव दूसरी ओर भौतिक प्रगति के सयोग में इतने नाटकीय थे कि उन्हे क्रान्तिकारी परिवर्तन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।" वस्तुत आर्थिक क्षेत्र में हुए इन अभूतपूर्व परिवर्तनो से सामाजिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक सगठन क्रान्तिकारी ढग से बदल गए।

औद्योगिक क्रान्ति की निश्चित अवधि क्या थी कहना कठिन है। पर परिवर्तनो का क्रम 18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर 19वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक तेजी से चलता रहा। वैसे इस औद्योगिक क्रान्ति की अवधि 1760 से लेकर प्रथम महायुद्ध से पूर्व तक मानी जा सकती है, जिसमें न केवल ब्रिटेन ने बल्कि सम्पूर्ण विश्व ने आर्थिक समस्याओ के एक नए युग मे प्रवेश किया।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इग्लैण्ड की आर्थिक अवस्था
(Economic Condition of England before Industrial Revolution)

यहाँ हमारे अध्ययन का विषय औद्योगिक क्रान्ति के समय से इग्लैण्ड का आर्थिक विकास है, अत औद्योगिक क्रान्ति और उसके प्रभावो का विवेचन करने से पूर्व यह जान लेना अपेक्षित है कि इस महान क्रान्ति से पहले इग्लैण्ड की आर्थिक अवस्था क्या और कैसी थी ?

ग्रामीण जनसंख्या की बहुलता—19वीं शताब्दी के मध्य तक इग्लैण्ड मुख्यत एक कृषि-प्रधान देश था जिसकी अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण थी। ग्रेगरी किंग के अनुसार, 1696 में इग्लैंड की लगभग 77 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में और 5 प्रतिशत उद्योगों में लगी थी। लगभग 41 लाख व्यक्ति गाँवों में निवास करते थे और 14 लाख व्यक्ति नगरों में। गाँवों की तुलना में नगरों की संख्या बहुत कम थी। 1881 में अर्थात् औद्योगिक क्रान्ति के बाद इग्लैण्ड की शहरी और ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात क्रमश 66 7 तथा 33 3 हो गया और आज तो 80 प्रतिशत लोग नगर-निवासी हैं।

कृषि की प्रधानता—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इग्लैण्ड एक कृषि-प्रधान राष्ट्र था जिसके उद्योग अविकसित किन्तु विकासोन्मुख स्थिति में थे। कृषि-प्रधान देश होते हुए भी कृषि-कार्य के तरीके पुराने और घिसे-पिटे थे। कृषि का यन्त्रीकरण नहीं हुआ था। खेत छोटे-छोटे टुकडों में बिखरे थे। खुले-खेत-पद्धति (Open Field System) का प्रचलन था। त्रि-खेत पद्धति (Three-Field System) के आधार पर कृषि होती थी जिसमें प्रति 3 वर्ष में एक बार खेत को विश्राम दिया जाता था। भूमि की चकबन्दी और घेराबन्दी के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई थी, किन्तु कुल मिलाकर कृषि का संगठन प्राचीन और अविकसित था। फलस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति घटती जा रही थी और किसानों में निर्धनता और निराशा बढ़ रही थी।

कृषि के सहायक धन्धे के रूप में पशु-पालन-व्यवसाय भी बडा पिछडा हुआ था। चरागाहों की स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं थी। चरागाह सार्वजनिक होते थे जिन पर सभी लोगों को पशु चराने का अधिकार होता था। छोटे स्तर पर भेड-पालन का कार्य होता था, लेकिन भेडें निर्बल और मरियल-सी थीं।

उद्योग-धन्धे—औद्योगिक स्थिति भी उत्साहजनक नहीं थी। सूती-वस्त्र, ऊन, इस्पात, धातु और मिट्टी के बर्तन, काँच जैसे अधिकांश निर्माणकारी उद्योग प्रारम्भ नहीं हुए थे, और यदि हुए भी थे तो बडे छोटे पैमाने पर केवल गाँवों में ही पाए जाते थे। देश की जनसंख्या का लगभग 5 प्रतिशत ही उद्योगों में लगा हुआ था। सूती एवं ऊनी वस्त्र का उत्पादन-कार्य कुटीर उद्योग के रूप में किसानों द्वारा सहायक पेशे के रूप में किया जाता था। ऊन उद्योग की स्थिति अच्छी थी और वह उस समय इग्लैण्ड की समृद्धि का आधार बना हुआ था। कुछ अन्य उद्योग भी विकसित हो चुके थे, जैसे लोह-उद्योग, जहाज निर्माण उद्योग, शीशा एवं ताम्बा उद्योग, कागज उद्योग तथा छपाई उद्योग। औद्योगिक क्रान्ति के समय यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग महत्त्वपूर्ण नहीं था, तथापि इसका निर्यात-व्यापार बढ रहा था। फिर भी 1764 में सूती वस्त्र उद्योग का कुल निर्यात ऊन उद्योग के कुल निर्यात के 1/20 भाग से अधिक नहीं था। हौजरी उद्योग पनप चुका था, यद्यपि कार्य हाथों द्वारा ही किया जाता था। सिल्क उद्योग भी विकासोन्मुख था। लिनन (Linen) उद्योग इग्लैण्ड का प्राचीन उद्योग था। इग्लैण्ड के यार्कशायर, नारफोक तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग उद्योगों की दृष्टि से उन्नत और प्रसिद्ध थे। कुल मिलाकर स्थिति यह

थी कि इग्लैण्ड 1750 तक औद्योगिक दृष्टि से समृद्धि और विविधता की सीढियाँ चढने लगा था। अन्य यूरोपीय राष्ट्रो के मुकाबले ब्रिटिश उद्योग बहुरूपी और उन्नत थे।

औद्योगिक क्रान्ति के ठीक पूर्व ब्रिटिश उद्योगो की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ थी—

(1) उत्पादन-कार्य हस्तशिल्प-प्रणाली के आधार पर किया जाता था। उत्पाद-कार्य बडा सरल था और वाष्प शक्ति का प्रयोग नही था।

(2) औद्योगिक सगठन की इकाई के रूप मे परिवार ही प्रमुख था। परिवार ही उत्पादन की इकाई का कार्य करता था। कारखाना-पद्धति प्रचलन मे नही थी।

(3) श्रम-विभाजन एकदम सरल था। मजदूरी नकदी मे न चुकाकर प्राय वस्तुओ के रूप मे चुकाई जाती थी जिसे 'Truck System" कहते थे। इस पद्धति के फलस्वरूप श्रमिको का शोषण होता था।

(4) यातायात एव सचार साधनो के अभाव में बाजारो का विस्तृत होना सम्भव नही था और स्थानीय तौर पर ही कच्चे माल की पूर्ति की जाती थी।

(5) औद्योगिक व्यवस्था मे गिल्ड-प्रणाली का प्रचलन था। व्यापारियो के सगठन "Merchant Guilds" और शिल्पियो के सगठन 'Craft Guilds" कहे जाते थे।

व्यापार—व्यापार की मात्रा सीमित थी। आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार से अधिक था, तथापि विदेशी व्यापार में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही थी। विशेष बात यह थी कि फ्राँस, पुर्तगाल, हॉलैण्ड जैसे यूरोपीय देशो के साथ तो ब्रिटिश व्यापार घट रहा था, लेकिन उपनिवेशो के साथ व्यापार मे प्रगति हो रही थी। 17वी शताब्दी के आरम्भ में इग्लैण्ड का निर्यात व्यापार केवल 17 लाख पौण्ड था जो बढकर 1760 मे लगभग 145 लाख पौण्ड हो गया। निर्यात व्यापार में वृद्धि के फलस्वरूप जहाजरानी का भी विकास हो रहा था। ब्रिटेन की तत्कालीन व्यापार नीति "व्यापारवादी सिद्धान्तो' (Merchantilist Policy) पर आधारित थी। उस समय की परिस्थितियो की दृष्टि से इग्लैण्ड की यह नीति उचित ही थी।

यातायात—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व यातायात के साधन अविकसित थे। सडको की दशा शोचनीय थी। स्थल यातायात खर्चीला, धीमा और खतरे से भरा था। देश के एक भाग से दूसरे भाग मे जाने में काफी समय लगता था। आन्तरिक जल यातायात के विकास पर ध्यान अवश्य दिया गया था और नदियो को गहरा करने के लिए अधिनियम भी पारित किए गए थे तथा 1755 में लिवरपूल मे एक 10 मील लम्बी नहर भी बनाई जा चुकी थी, पर कुल मिलाकर कोई ठोस विकास नही हो पाया था। यात्राएँ बडी असुविधाजनक और असुरक्षित थी।

आर्थिक विकास के प्रति तत्कालीन सरकारी नीति—जैसा कि कहा जा चुका है, इग्लैण्ड में आर्थिक विकास के प्रति उस समय व्यापारवादी नीति की प्रमुखता थी

जिसका उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण "अनुकूल व्यापार सन्तुलन" (Favourable Balance of Trade) प्राप्त करना था। सरकार को विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करने का पूर्ण वैधानिक अधिकार प्राप्त था, लेकिन आर्थिक क्रियाओं की जटिलता के फलस्वरूप नियन्त्रण सम्बन्धी विधान लागू करना बड़ा कठिन था। श्रमिक निराश और हताश थे। कृषि क्षेत्र में सरकार द्वारा कोई सहायता नहीं दी जाती थी। वास्तव में 18वीं शताब्दी का इंग्लैंड पूँजीवादी प्रणाली से दूर था। गृह-प्रणाली का प्रचलन था जिसके अन्तर्गत कारीगर बहुधा अपने घरों में ही उत्पादन-कार्य करते थे।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व की अर्थ-व्यवस्था के इस विवेचन से स्पष्ट है कि तत्कालीन इंग्लैंड एक ऐसा देश था जो कृषि-प्रधान था, लेकिन जिसके उद्योग विकासोन्मुख थे। विदेशी व्यापार बढ़ रहा था और कृषि में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे थे। जहाजरानी उद्योग प्रगति पर था और देश खाद्यान्नों के मामले में लगभग आत्मनिर्भर था। बैंकिंग व्यवस्था भी विकसित हो रही थी। इस प्रकार सन् 1760 तक इग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के सर्वप्रथम आने के कारण

(Why the Industrial Revolution First came in England ?)

यद्यपि औद्योगिक क्रान्ति की प्रक्रिया, जो दो-तीन सौ वर्ष पहले आरम्भ हुई थी, अब भी जारी है क्योंकि अब भी नये-नये औद्योगिक आविष्कार हो रहे हैं, तथापि इंग्लैण्ड में सन् 1760 ई० के बाद लगभग आधी शताब्दी में और यूरोप में सन् 1815 ई० के बाद के वर्षों में इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए कि कृषि-प्रधान देश औद्योगिक देश हो गए और इसीलिए इन वर्षों को औद्योगिक क्रान्ति का युग कहते हैं। यह औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इग्लैण्ड में हुई और तब अन्य देशों में फैली। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से इग्लैण्ड तत्कालीन यूरोप में कोई विशेष शक्तिशाली देश नहीं था और फ्रांस ब्रिटेन की तुलना में अधिक समृद्ध था, फिर भी क्रान्ति का सूत्रपात सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में ही हुआ। अवश्य ही इसके कुछ विशेष कारण थे—

(1) अन्य देशों के मुकाबले आवश्यक पृष्ठभूमि का अस्तित्व—इग्लैण्ड में उस आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था जिसके आधार पर कोई भी औद्योगिक क्रान्ति सफल हो सकती थी। किसी भी देश में औद्योगिक क्रान्ति होने के लिए 4 बातें आवश्यक होती हैं—पूँजी और कुशलता, विस्तृत बाजार क्षेत्र, विकासोन्मुख उद्योग एवं आन्तरिक तथा राजनीतिक शान्ति। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के इग्लैण्ड में सौभाग्यवश ये सभी बातें उपलब्ध थीं। सूती और ऊनी वस्त्र उद्योग विकसित अवस्था में थे, पूँजीवाद की शुरुआत हो गई थी, यूरोपीय देशों तथा उपनिवेशों के साथ निर्यात व्यापार उन्नत था, बैंकिंग व्यवस्था पनप रही थी, ब्रिटिश व्यापारियों को विशाल उत्पादन तथा विदेशी व्यापार का अच्छा अनुभव था और

देश में राजनीतिक शान्ति विद्यमान थी। इन परिस्थितियो मे स्वाभाविक था कि इंग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश होता।

औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक उपर्युक्त परिस्थितियाँ फ्राँस, जर्मनी, रूस तथा यूरोप के अन्य राष्ट्रो में विद्यमान नही थी। फ्राँस 18वी शताब्दी मे एक शक्तिशाली और समृद्ध देश था, लेकिन वहाँ आन्तरिक शान्ति नही थी, बैंकिग व्यवस्था विकसित नही हो पाई थी विनियोग व्यवस्था भी ठीक नही थी, व्यापार सघो का सर्वथा अभाव था, फ्रेन्च सम्राट अपनी वशानुगत समस्याओ से इतने ग्रस्त थे कि देश के आर्थिक विकास की ओर उनका ध्यान केन्द्रित ही नही हो पाता था, सामन्तशाही का बोलबाला था, व्यापारिक क्षेत्र मे विविध नियन्त्रण थे, प्राकृतिक साधनो की दृष्टि से इग्लैण्ड जैसी समृद्धि नही थी और जनसख्या की अधिकता के फलस्वरूप आविष्कारों की तीव्र आवश्यकता भी अनुभव नही हुई थी। फ्राँस मे जो राज्य-क्रान्ति हुई उसने देश के औद्योगिक विकास को न केवल पीछे धकेल दिया बल्कि उसकी गति भी अवरुद्ध कर दी। श्रीमती नोल्स के शब्दो मे, "यदि फ्राँस की राज्य-क्रान्ति ने फ्राँस के औद्योगिक तथा आर्थिक जीवन को अस्त-व्यस्त न कर दिया होता, तो इग्लैण्ड की जगह फ्रास ही औद्योगिक क्रान्ति का प्रणेता होता।"

जर्मनी मे भी औद्योगिक क्रान्ति अपेक्षाकृत बहुत बाद मे आरम्भ हुई, क्योकि 1870 तक जर्मनी का पुनर्गठन ही नही हो पाया था। औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक पूँजी का भी जर्मनी मे अभाव था। जर्मनी एक कृषि-प्रधान देश था और वहाँ की बैंकिग व्यवस्था भी ठीक नही थी। इसके अतिरिक्त जर्मनी ने बड़े पैमाने पर सैनिकीकरण किया था, अत औद्योगिक विकास के लिए धन जुटाना उसके लिए प्राय असम्भव था। जर्मनी के पास औपनिवेशिक साम्राज्य भी नही था, अत औद्योगिक कच्चे माल और विस्तृत बाजारो की दृष्टि से इग्लैण्ड के मुकाबले वह बहुत कमजोर था।

रूस बहुत पिछड़ा हुआ और निर्धन राष्ट्र था, हॉलैण्ड के पास पर्याप्त पूँजी नही थी और बैंकिग तथा व्यापार-व्यवस्था भी क्षीण थी और स्पेन भी विभिन्न समस्याओ मे उलझा हुआ ऐसा राष्ट्र था जो औद्योगिक क्रान्ति की दिशा मे सोच भी नही सकता था। तत्कालीन भारत व्यापार और उद्योग मे उन्नति के शिखर पर था, अत यहाँ के लोगो को अपना माल बेचने के लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पडता था। कुटीर उद्योग पनपे हुए थे और भारतीय अपने वर्तमान से इतने सन्तुष्ट थे कि नई मशीनें आविष्कृत करने की ओर उनका ध्यान ही नही गया। भारतीयो मे यह विश्वास गहरा बैठा हुआ था कि परम्परागत विधियो से बनाई गई वस्तु अधिक अच्छी होती है।

इस प्रकार कुल मिलाकर इग्लैण्ड ही एक ऐसा देश था जहाँ औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ अन्य सभी देशो के मुकाबले अधिक अच्छी तरह विद्यमान थी। इग्लैण्ड निवासी भी अन्य देशवासियो की तुलना मे, औद्योगिक

(14) पूँजीपतियों के प्रभाव में वृद्धि—औद्योगीकरण के लिए भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता थी, अत पूँजीपति वर्ग के प्रभाव मे तेजी से वृद्धि हुई। उत्पादन और वितरण दोनो प्रक्रियाओ पर उद्योगपति छा गए। व्यापार का अधिकांश कार्य उद्योगपतियो के हाथो मे केन्द्रित होने लगा। उद्योगपति वर्ग सगठित भी होने लगा अत उसमे सरकारी नीति को प्रभावित करने की क्षमता आ गई।

(15) सरकारी नीति में परिवर्तन—क्रान्ति से पहले इग्लैण्ड मे व्यापारवादी नीति का महत्त्व था जिसके अन्तर्गत ब्रिटिश उद्योगो को पूर्ण सरक्षण दिया जाता था। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त इग्लैण्ड का व्यापारिक प्रभुत्व कायम हो गया और ब्रिटिश उद्योगपतियो को किसी भी देश से प्रतिस्पर्द्धा का सामना नही करना पडा। अत मुक्त व्यापार-नीति की माँग जोर पकडने लगी। सरकार ने अनुकूल रुख अपनाते हुए व्यापारवादी नीति का परित्याग करके स्वतन्त्र व्यापार नीति (Laissez Fair Policy) अपनाई।

(16) श्रमिक वर्ग पर प्रभाव—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग पर लाभकारी और हानिकारक दोनो ही प्रभाव विशेष रूप से पडे। औद्योगीकरण होने से अधिक श्रमिको को रोजगार मिलने लगा तथा श्रमिक परिवारो की आय मे वृद्धि हुई। वस्तुएँ सस्ती हो गई और श्रमिको की आर्थिक स्थिति पूर्वापेक्षा काफी सुधर गई। श्रमिक वर्ग अपने अधिकारो के लिए सगठित हुआ और उसे सामन्तवादी शोषण से मुक्ति मिली। घरेलू-प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिको को बडे ही अस्वास्थ्यकर वातावरण मे काम करना पडता था, लेकिन उद्योगो का आधुनिकीकरण होने पर उन्हे वातानुकूलित और सुविधापूर्ण कारखानो मे काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। पर दूसरी ओर अनेक दृष्टियो से श्रमिक वर्ग पर हानिकारक प्रभाव भी पडे। श्रमिको की उत्पादन-कार्य सम्बन्धी स्वतन्त्रता नष्ट हो गई, अत कलात्मक प्रदर्शन और रचनात्मक दृष्टिकोण को भारी क्षति पहुँची। नगरो मे अस्वास्थ्यकर बस्तियो मे श्रमिको को रहना पडा जिससे बीमारी और मृत्यु सख्या मे वृद्धि हुई। पूँजीपतियो के साथ उनके हित भी टकराने लगे।

सामाजिक प्रभाव

(1) वर्ग सघर्ष का जन्म—औद्योगिक क्रान्ति के कारण ब्रिटिश समाज दो विरोधी वर्गो मे विभाजित हो गया—श्रमिक वर्ग और पूँजीपति वर्ग। धन का असमान वितरण बढते जाने से दोनो वर्गो के बीच मतभेदो और सघर्ष की खाई चौडी होती गई। धनिक वर्ग द्वारा शोषण किए जाने से श्रमिक निर्धन होते गए जिससे उनमे असन्तोष की भावना पनपने लगी और मार्क्स द्वारा घोषित वर्ग सघर्ष को प्रोत्साहन मिला।

(2) मध्यम वर्ग का उदय—बडे-बडे उद्योगो के विकास के साथ ही सहायक और पूरक उद्योग-धन्धे पनपने से मध्यम वर्ग के लोगो को बडा लाभ हुआ। मध्यम वर्ग ने इन सहायक और पूरक धन्धो को अपनाया क्योकि वे न तो मजदूरो

कर सकते थे और न ही बडे उद्योग-धन्धो की स्थापना ही कर सकते थे। इसके अतिरिक्त दलाली, ठेकेदारी और इसी प्रकार के अन्य व्यापारिक कार्यों मे भी वृद्धि हुई। इस प्रकार के कार्य विशेषत. मध्यम वर्ग ने ही अपनाए।

(3) **श्रम के नियोजन की समस्या**—हाथो के स्थान पर मशीनो द्वारा उत्पादन-कार्य होने से श्रमिको का महत्त्व घटता गया और कालान्तर मे उनकी नियोजन की समस्या उठ खडी हुई।

(4) **जनसख्या मे वृद्धि**—औद्योगीकरण के फलस्वरूप इग्लैण्ड की जनसख्या तेजी से बढने लगी। जीविकोपार्जन के साधन बढने से और विदेशो से आयात किए गए खाद्यान्न उपलब्ध होन से जनसख्या इतनी तेजी से बढी कि 19वी शताब्दी के अन्त तक वह पिछले 100 वर्षों मे चार गुनी हो गई।

(5) **ग्रामीण जनसख्या मे कमी**—औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई और गाँवो के लोग शहरो तथा औद्योगिक केन्द्रो मे आकर बसने लगे। इससे जहाँ नगरो की जनसख्या बढी वहाँ गाँवो की जनसख्या घटी। आज तो स्थिति यह है कि इग्लैण्ड की कुल जनसख्या का केवल 20 प्रतिशत ही गाँवो मे रहता है।

(6) **स्वास्थ्य, आवास तथा नैतिकता की समस्या**—जनसख्या बढने से स्वास्थ्य की समस्या उपस्थित हो गई। अव्यवस्थित तरीके से विकसित होने के कारण नगर बीमारी और गदगी के केन्द्र बन गए। नगरो तथा औद्योगिक स्थानो का वातावरण गम्भीर रूप से दूषित हो गया। साथ ही व्याभिचार और अनैतिकता का भी प्रसार होने लगा। नगरो मे जनसख्या की अतिशय वृद्धि से मकानो को समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया।

(7) **सामाजिक उत्पीडन**—औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक उत्पीडन की स्थिति भी पैदा की। प्रारम्भिक वर्षों मे पूँजीपति वग ने समाज मे जन-साधारण को सिर उठाने का अवसर ही नही दिया। सरकार भी निरपेक्ष बनी रही, अत जन-साधारण की दशा अधिकाधिक शोचनीय हो गई। कारखानो मे श्रमिक वर्ग कडी मेहनत करता था, लेकिन उसे मजदूरी बहुत कम मिलती थी जिससे परिवार का भली प्रकार पेट पलना भी मुश्किल था। श्रमिक धीरे-धीरे पूरी तरह पूँजीपतियो के शिकजे मे कस गए और कारखाने से निकाले जाने का भय उन्हे हमेशा सताने लगा। लम्बे अर्से तक अपने अधिकारो के लिए सघर्ष करने के उपरान्त ही श्रमजीवी वर्ग की दशा सुधर सकी। औद्योगिक क्रान्ति के कारण स्त्री और बच्चो का सर्वाधिक शोषण हुआ। कारखानो मे उनसे भी काम लिया जाने लगा। 10 वर्ष से कम आयु के बच्चो को भी कारखानो मे प्रतिदिन 18-18 घण्टे कार्य करना पडता था और उन्हे खाना खाने तक की छुट्टी तक नही मिलती थी। काम करते-करते बच्चे थक कर सो जाते थे और कभी-कभी इस हालत मे मशीनो से उनके शरीर के अग कट जाते थे। मन्दी के दिनो मे कारखानो मे तालाबन्दी हो जाने पर भारी सख्या मे

बेकारी फैल जाती थी। कहने का आशय यह है कि औद्योगिक क्रान्ति ने अनेक विकट सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया जिनसे आज भी समाज का एक बड़ा वर्ग पीड़ित है।

(8) श्रमिकों की कुशलता पर प्रभाव—औद्योगिक क्रान्ति से बहुत से श्रमिकों की कुशलता में ह्रास हुआ। उनकी उत्पादन-शक्ति में कमी आई। पहले वे सम्पूर्ण वस्तु स्वयं बनाते थे, लेकिन अब श्रम-विभाजन के कारण वस्तु का एक भाग ही बनाने लगे। अतः उनकी कुशलता पहले जैसी नहीं रही।

(9) ट्रक-प्रथा—औद्योगिक क्रान्ति ने ट्रक-प्रथा (Truck System) को भी प्रोत्साहन दिया। प्रायः श्रमिकों को उनके वेतन का भुगतान वस्तुओं के रूप में किया जाने लगा जो कुछ बचता भी था उससे उन्हें उद्योगपतियों द्वारा खोली गई दूकानों से ही सामान खरीदना पड़ता था। पूँजीपतियों की नीति ऐसी थी जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की सम्पूर्ण आय व्यय हो जाती थी और उन पर कर्जा चढ़ जाता था। इस स्थिति में बहुत आगे चलकर सुधार होने लगा।

(10) पारिवारिक जीवन में ह्रास—औद्योगिक क्रान्ति ने श्रमिकों के पारिवारिक जीवन को नारकीय बना दिया। श्रमिक अधिकाँश समय कारखानों में बिताने लगे और इस प्रकार अपने परिवार से बहुत अधिक समय तक दूर रहने लगे। घर लौटने पर भी अतिशय थकान के कारण उन्हें सोने के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता था। इन सब बातों ने श्रमिकों का पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। कुछ लेखकों का मत है कि कारखाना-प्रणाली का पारिवारिक जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा क्योंकि श्रमिक नियमित रूप से काम करने के अभ्यस्त हो गए जिससे उनका नैतिक उत्थान हुआ।

(11) सामाजिक चेतना का विकास—श्रीमती नोल्स की मान्यता है कि "यदि फ्रैन्च राज्य क्रान्ति ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता और समानता का पाठ पढ़ाया तो ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता का क्रियात्मक उपयोग सम्भव बना दिया।" औद्योगिक क्रान्ति ने कालान्तर में श्रमिकों में संगठन-शक्ति का विकास किया जिससे अन्ततोगत्वा ऐसी सामाजिक चेतना पैदा हुई जिसने व्यक्ति के सम्मान और मूलभूत अधिकारों की सफलतापूर्वक माँग की।

राजनीतिक प्रभाव

इंग्लैण्ड के लिए औद्योगिक क्रान्ति के राजनीतिक प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण और दूरगामी हुए। 18वीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटिश संसद में केवल भूमिपतियों का ही प्रभाव था, लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के कारण छोटे नगरों और गाँवों द्वारा लोकसभा में प्रतिनिधि भेजने तथा बड़े नगरों को प्रतिनिधित्व देने की माँग जोर पकड़ने लगी। आगे चलकर संसदीय सुधार की इस माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकी।

औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया कि ब्रिटिश सरकार

को मुक्त व्यापार नीति अपनानी पडी और कारखाना-प्रणाली के दोषो को दूर करने के लिए विभिन्न कारखाना अधिनियम बनाने पडे। इस क्रान्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम यह निकला कि फ्रांस और नेपोलियन पर इग्लैण्ड को विजय प्राप्त हुई। क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन बढा और इग्लैण्ड ने विपुल धन कमाया। धन के बल पर वह लम्बे अर्से तक फ्रांस और नेपोलियन से लडकर अन्त मे उन्हे हराने मे सफल हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ही मध्य वर्ग का न केवल विकास हुआ बल्कि यह वर्ग बहुत प्रभावशाली बन गया। राजनीतिक शक्ति मध्य वर्ग के हाथो मे सिमटती गई। कॉर्न कानून (Corn Law) को रद्द करने तथा चार्टिस्ट आन्दोलन को दबाने मे मध्य वर्ग का ही हाथ था।

औद्योगिक क्रान्ति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम यह हुआ कि उद्योगो पर सैनिक शक्ति निर्भर करने लगी। उद्योग प्रधान देशो–इग्लैण्ड फ्रास, जर्मनी आदि की सैनिक शक्ति बहुत बढ गई।

इस सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्ति ने इग्लैण्ड के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। मेरीडिथ के अनुसार— 'यद्यपि औद्योगिक क्रान्ति मे अनेक बुराइयाँ थी फिर भी वे लाभप्रद थी इस क्रान्ति के कारण इग्लैण्ड की वित्त और आर्थिक व्यवस्था में काफी सुधार हुआ।' औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के थे, लेकिन बुराइयाँ सर्वथा औद्योगिक क्रान्ति की उपज नही थी क्योंकि वे तो पहले से ही चली आ रही थी। वास्तविकता यह थी कि कारखाना प्रणाली ने उन बुराइयो को अधिक उजागर कर दिया। औद्योगिक क्रान्ति का वस्तुत इस दृष्टि से सुपरिणाम ही निकला कि बुराइयो को दूर करने के प्रयत्न हुए और ऐसे कानून बने जिनसे श्रमिको के हितो की रक्षा सम्भव हुई और कारखानो की कार्य-प्रणाली पर नियन्त्रण रखा गया। क्रान्ति के फलस्वरूप औद्योगिक श्रमिको के श्रेष्ठ वर्ग का उदय हुआ जिसने अपने अधिकारो की सफल लडाई लडी। औद्योगिक क्रान्ति से राष्ट्र की आय मे वृद्धि हुई और व्यापारी, उद्योगपति आदि अधिक धनवान और सम्पन्न हो गए। इससे देश के बाह्य व्यापार मे आशातीत वृद्धि हुई और इग्लैण्ड एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक राष्ट्र बन गया। लेकिन साथ ही औद्योगिक क्रान्ति ने अनेक नई समस्याएँ भी पैदा की जैसे वर्ग-संघर्ष, नगरो मे जनसख्या की वृद्धि और उससे उत्पन्न कठिनाइयाँ आदि।

2

औपनिवेशिक विस्तार के आर्थिक पहलू

(Economic Aspects of Colonial Expansion)

"उपनिवेशों की स्थापना ने ब्रिटेन को वह साधन उपलब्ध किया जिससे विदेशी वस्तुएँ अपनी बन जाएँ। इसने आर्थिक सम्बन्धों से जुड़े हुए एक ऐसे साम्राज्य की कल्पना कराई जिसमें प्रत्येक अंग सम्पूर्ण साम्राज्य को समाले उसका पोषण करे तथा मातृ-राष्ट्र एवं उपनिवेश एक-दूसरे के पूरक बन जाएँ।"

—लिप्सन

इंग्लैण्ड का औपनिवेशिक वैभव एक परम्परागत नीति थी, किन्तु 19वीं सदी के प्रारम्भ में उसका महत्त्व अधिक बढ़ गया और शताब्दी के अन्त तक इंग्लैण्ड विश्व की महान औपनिवेशिक शक्ति बन गया जिसके साम्राज्य में "सूर्य कभी अस्त नहीं होता था।" इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक विस्तार के क्षेत्र में फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल डेनमार्क, हॉलैण्ड आदि विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों की तीव्र प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा और अनेक रक्त-रंजित लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, लेकिन वह सबसे आगे निकल गया। औपनिवेशिक विस्तार की प्रतिद्वन्द्विता का ही यह आवश्यक परिणाम निकला कि विश्व राजनीति का युग प्रारम्भ हुआ। अभी तक यूरोपीय राज्यों की प्रतियोगिता यूरोप तक ही सीमित थी लेकिन अब सम्पूर्ण संसार, मुख्यतः एशिया और अफ्रीका, उनका रंग-मंच बन गया। अफ्रीका, एशिया, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि में ब्रिटिश प्रभुत्व तथा औपनिवेशिक शक्ति का बोलबाला हो गया। भारत इंग्लैण्ड का सबसे बड़ा राज्य बना। उपनिवेशों के विस्तार के साथ-साथ ब्रिटिश आर्थिक पहलू परिवर्तित और विकसित होते गए जिन्होंने ब्रिटेन को धन-धान्य से भर दिया। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो ब्रिटेन उपनिवेशों को भार-स्वरूप मानता था वही उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते उन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति मानने लगा।

औपनिवेशिक विस्तार के कारण एवं उद्देश्य
(Causes and Objectives of Colonial Expansion)

इंग्लैण्ड विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कारणों तथा उद्देश्यों से प्रेरित होकर औपनिवेशिक विस्तार की ओर अग्रसर हुआ।

आर्थिक कारण एव उद्देश्य

(1) इग्लैण्ड के निवासियो मे प्रारम्भ से ही वाणिज्यवादी प्रवृत्ति प्रबल थी। वे अपने मन मे यह उद्देश्य सजोये हुए थे कि विदेशी व्यापार द्वारा अतुल सोना चाँदी कमा कर अपने देश को समृद्ध और शक्तिशाली बनाएँ। विदेशी व्यापार मे वृद्धि के लिए आवश्यक था कि इग्लैण्ड अपने उपनिवेशो की स्थापना करता।

(2) एक ओर तो इग्लैण्ड की जनसख्या बढ रही थी और दूसरी ओर खाद्यान्नो का अभाव तथा अकालो का प्रकोप था। खाद्यान्नो के अभाव की पूर्ति के लिए विदेशो मे इग्लैण्ड के प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक था। इसलिए इग्लैण्ड के लोग ऐसे क्षेत्रो मे अपने उपनिवेश स्थापित करने को आकर्षित हुए जहाँ से उन्हे खाद्यान्न तथा कच्ची सामग्री उपलब्ध हो सके।

(3) देश की आर्थिक समृद्धि के लिए इग्लैण्ड वालो ने यह उपयुक्त समझा कि दूसरे राष्ट्रो के प्राकृतिक साधनो के विदोहन का मार्ग प्रशस्त किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव थी जब इग्लैण्ड का अपना उपनिवेशीय विस्तार करे। प्राकृतिक साधनो और बहुमूल्य खनिज के शोषण के लिए ही इग्लैण्ड निवासी अमेरिका, अफ्रीका, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि मे अपने प्रभुत्व क्षेत्र कायम करने के लिए आगे बढे।

(4) अग्रेजो के मन मे यह बात घर कर गई कि उपनिवेशो मे जाकर वे बेशुमार धन कमा कर श्रेष्ठ जीवन-स्तर का आनन्द उठा सकेगे। केवल इग्लैण्ड मे ही रहते हुए यह सम्भव नही था। ब्रिटिश पूँजीपति अपनी पूँजी पर अधिक लाभ तभी कमा सकते थे जब वे उपनिवेशो मे पूँजी विनियोग करते।

उपर्युक्त आर्थिक उद्देश्यो से प्रेरित होकर ब्रिटन ने अपना औपनिवेशिक विस्तार किया और उपनिवेशो के पूर्ण शोषण अथवा विदोहन की नीति अपनाई। उपनिवेशो को ब्रिटिश हित-साधन का माध्यम बनाया गया तथा उनके साथ व्यापार करने का एकाधिकार केवल ब्रिटिश व्यापारिक कम्पनियो को दिया गया। विविध कानून बना कर उपनिवेशो से तथा अन्य देशो से उन वस्तुओ का आयात प्रतिबन्धित कर दिया गया जो ब्रिटिश कृषि एव उद्योगो से प्रतियोगिता करते थे। उपनिवेशो को ब्रिटिश कारखानो के लिए कच्चे माल की पूर्ति का साधन बनाया गया। ब्रिटेन अपना निर्मित माल को उपनिवेशो म खपाने लगा और वहाँ के कच्चे माल का अधिकाधिक आयात करके अपने औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार करने मे जुट गया। उपनिवेशो से खाद्यान्न तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओ को इग्लैण्ड मे सस्ते मूल्यो पर आयात करने की नीति अपनाई गई। उपनिवेशो का बहुमूल्य खनिज पदार्थ इग्लैण्ड की ओर प्रवाहित किया गया।

राजनीतिक कारण एव उद्देश्य

उपनिवेशो को बटाना उस युग मे राष्ट्रीय गौरव माना जाता था। जितने अधिक उपनिवेश एव राज्य के पास होते थे उतनी ही प्रतिष्ठा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उस राज्य की होती थी। फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड आदि यूरोपीय देश अपनी

राजनीतिक शक्ति के विस्तार के लिए उपनिवेशो की स्थापना कर रहे थे। स्वाभाविक था कि इग्लैण्ड भी इस दौड मे शामिल हो गया। इस कार्य मे यूरोपीय राज्यो मे आपस मे खुलकर होड चली और इग्लैण्ड को फ्रांस, पुर्तगाल आदि देशो से युद्ध भी करना पडा। स्थानीय जनता से भी सघर्ष करने पडे। लेकिन अपनी कुशल और शक्तिशाली सामुद्रिक सैन्य-शक्ति तथा व्यावहारिक कूटनीति के बल पर इग्लैण्ड ने औपनिवेशिक विस्तार मे सभी देशो को पीछे छोड दिया। नेपोलियन के युद्धो का अन्त होने के समय तक इग्लैण्ड सबसे बडी औपनिवेशिक शक्ति बन गया और अगली कुछ दशाब्दियो मे एशिया, अफ्रीका तथा विश्व के अन्य भागो मे ब्रिटेन के उपनिवेश स्थापित हो गए। बडे-बडे जल-मार्गों के महत्त्वपूर्ण केन्द्रो पर ब्रिटिश नाकाबन्दी करली गई। सैनिक महत्व के ठिकानो पर उसका राजनीतिक प्रभाव स्थापित हो गया। अटलाँटिक सागर, भूमध्य सागर, अरब सागर तथा हिन्द महासागर मे ब्रिटिश व्यापारिक जहाजरानी का आवागमन पूर्ण सुरक्षित हो गया। ब्रिटेन का उपनिवेशीय प्रसार का राजनीतिक उद्देश्य आर्थिक उद्देश्यो का पूरक सिद्ध हुआ।

धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य कारण एव उद्देश्य

(1) पन्द्रहवी तथा सोलहवी शताब्दी मे इग्लैण्ड निवासी धार्मिक उत्पीडन से परेशान हो गए और इससे छुटकारा पाने के लिए उपनिवेशो की ओर आकर्षित हुए। चर्च के दबाव से स्वतन्त्र रहने के आकाँक्षी अग्रेजो ने उपनिवेशो म शरण लेना अधिक उपयुक्त समझा।

(2) इग्लैण्ड का पादरी वर्ग धार्मिक "जेहाद" के जोश से प्रेरित होकर उपनिवेशो मे धर्म-प्रचार मे जुट गया। इग्लैण्ड के पादरी एशिया, अफ्रीका और विश्व के कुछ दूसरे भागो मे दूर-दूर तक जाकर ईसाई धर्म की ध्वजा फहराने लगे। उन्होंने दूरस्थ तथा पिछड प्रदेशों मे जनता पर अपना प्रभाव जमा कर ब्रिटिश राजनीतिज्ञो और सैन्य विशारदो के लिए औपनिवेशिक विस्तार की पृष्ठभूमि तैयार करदी।

(3) अग्रेज यह समझने लगे कि उपनिवेशो के आधार पर वे अपनी सस्कृति और अपने साहित्य का विश्व व्यापी प्रसार कर सकेंगे।

(4) नवीन साहसिक कार्यों का प्रलोभन भी औपनिवेशिक विस्तार के लिए उत्तरदायी बना। अपराधियो तथा दोषी व्यक्तियो को उपनिवेशो मे भेजने अथवा उनके बाहर भाग जाने की प्रवृत्ति से भी कुछ उपनिवेशो का विस्तार सम्भव हुआ।

उपर्युक्त विभिन्न कारणो एव उद्देश्यो से प्रेरित होकर इग्लैण्ड ने भरपूर शक्ति से अपना औपनिवेशिक विस्तार किया और अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, एशिया तथा अफ्रीका के विभिन्न भागो मे इग्लैण्ड के उपनिवेश स्थापित हो गए। इग्लैण्ड का सबसे बडा राज्य भारतवर्ष बना जो लम्बे सघर्ष के बाद 1947 मे जाकर ब्रिटिश शासन से मुक्ति पा सका। 19वी शताब्दी के अन्त तक इग्लैण्ड का साम्राज्य ससार के विभिन्न भागो में इतना फैल गया कि यह कहावत चरितार्थ हो गई कि ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज कभी नही डूबता।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का इतिहास तथा उसके आर्थिक पहलू
(History of British Colonialism and its Economic Aspects)

ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार के साथ साथ जो विभिन्न आर्थिक पहलू प्रकट हुए, उनके क्रमानुसार अध्ययन के लिए यह उचित होगा कि हम ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इतिहास के साथ-साथ आर्थिक पहलुओं को लेकर आगे बढें। इस दृष्टि से ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार अथवा इतिहास को हम मुख्यत निम्नलिखित चार भागो मे बांट सकते हैं—

(1) 1603 से 1776 तक पुरातन औपनिवेशिक पद्धति का काल,
(2) 1776 से 1870 तक औपनिवेशिक निर्बाध व्यापार का काल,
(3) 1870 से 1895 तक विदेशी प्रतिस्पर्द्धा की प्रतिक्रिया का काल,
(4) 1895 से 1920 तक रचनात्मक साम्राज्यवाद का काल।

1603 से 1776 तक पुरातन औपनिवेशिक पद्धति का काल

17वी व 18वी शताब्दी को ब्रिटिश इतिहास मे मुख्यत पुरातन औपनिवेशिक पद्धति का युग कहा जाता है। इस समय उपनिवेशो के सम्बन्ध मे, आर्थिक दृष्टिकोण से ब्रिटेन की नीति यह रही—

(1) उपनिवेशो को ब्रिटेन ने अपनी निजी सम्पत्ति मानते हुए उनका उपयोग ब्रिटिश हितो की पूर्ति के लिए किया। मूल उद्देश्य यही रहा कि उपनिवेशो के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य को आत्म निर्भर बनाया जाए।

(2) यह प्रयास किया गया कि उपनिवेश ब्रिटिश फैक्ट्रियो के लिए औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति के साधन बने। इस दृष्टि से उपनिवेशो को कपास, रेशम, टिम्बर, फ्लेक्स तथा अन्य माल उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित किया गया तथा इसके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता भी दी गई।

(3) ब्रिटेन ने यह सदैव ध्यान रखा कि उपनिवेश कही अपना औद्योगिक विकास करके ब्रिटिश उद्योगो के प्रतिस्पर्द्धी न बन जाएँ। अत उसने उपनिवेशो को ऐसी किसी वस्तु का निर्माण नही करने दिया जिससे ब्रिटिश उद्योगो को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुँचने की सम्भावना हो।

(4) उपनिवेशो पर यह भार डाला गया कि वे ब्रिटेन के औद्योगिक संस्थानों के लिए न केवल कच्चे माल व कृषि वस्तुओ का उत्पादन करें बल्कि उन उद्योगो द्वारा निर्मित माल की खरीद भी करें।

(5) ब्रिटेन ने उपनिवेशो पर यह पूर्ण प्रतिबन्ध लगाए रखा कि वे अन्य राष्ट्रो से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखें। ब्रिटेन को भय था कि अन्य देश इन उपनिवेशो में अपना माल बेचने की और इन उपनिवेशो से आवश्यक कच्चा माल खरीदने की कोशिश करेंगे। इस तरह ब्रिटेन को विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा और साथ ही उसके राजनीतिक प्रभुत्व को भी खतरा पैदा हो जाएगा। यही सब कुछ समझते हुए ब्रिटेन ने उपनिवेशो को पूर्ण नियन्त्रण मे रखा। उपनिवेशो को व्यापार ब्रिटिश जहाजो से और इंग्लैण्ड के माध्यम से ही करना पड़ता था।

स्पष्ट है कि ब्रिटिश नीति उपनिवेशो का हर प्रकार से आर्थिक शोषण करने की थी। इस पुरातन पद्धति मे मुख्यत दो प्रकार के उपनिवेश थे। भारत, पश्चिमी अफ्रीका तथा कुछ वेस्ट इडीज-द्वीप ऐसे उपनिवेश थे जो व्यापारिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के थे। वर्जीनिया, पश्चिमी अफ्रीका आदि उपनिवेश ऐसे थे जिनका आर्थिक विदोहन अभी पूरी तरह नही होने लगा था वरन् इनकी स्थापना नए व निर्जीव क्षेत्रों में अपने लोगो का विस्तार करने के लिए हुई थी।

1776 से 1870 तक औपनिवेशिक निर्बाध व्यापार का काल

कोलम्बस द्वारा अमेरिका महाद्वीप की खोज की जाने के बाद यूरोप की जातियों ने इस नई दुनिया में अपने उपनिवेश स्थापित करना आरम्भ कर दिया था जिसमे सर्वाधिक और निर्णायक सफलता ब्रिटेन को ही मिल सकी थी। सन् 1776 तक अमेरिका मे अलग अलग 13 उपनिवेशो की स्थापना हो चुकी थी जो आन्तरिक मामलो में स्वशासित होते हुए भी इग्लैण्ड के आधिपत्य मे थे। व्यापारवाद की नीति पर चलते हुए इग्लैण्ड अपने उपनिवेशो का प्रयोग अपने लाभ के लिए कर रहा था, अत उपनिवेशो के आर्थिक हितो को ब्रिटेन के हितो के बाद द्वितीय स्थान दिया जाता था। उन उद्योगो को, जो ब्रिटेन के उद्योगो के साथ प्रतियोगिता कर सकते थे, उपनिवेशों में हतोत्साहित किया जाता था और जिन वस्तुओं की इग्लैण्ड में मांग होती थी उन्हें प्रोत्साहित किया जाता था। वस्तुत उपनिवेशो के व्यापार का सम्पूर्ण ढांचा ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक हित में ही तैयार किया जाता था।

औपनिवेशिक विस्तार और अन्य राजनीतिक मतभेद के कारण इग्लैण्ड और फ्रांस मे लम्बे अर्से से शत्रुता चली आ रही थी। 1763 मे इग्लैण्ड और फ्रांस के बीच सप्तवर्षीय युद्ध में विजयी होने के बाद इग्लैण्ड की सरकार ने इस बात का प्रयत्न किया कि अधीनस्थ उपनिवेश होने के कारण अमेरिका के उपनिवेश भी इस युद्ध के व्यय का भार वहन करें। ब्रिटिश सरकार की इच्छा थी कि उपनिवेशो की रक्षा और शासन-प्रबन्ध पर होने वाले व्यय का कुछ भाग उन्हें (उपनिवेशो को) स्वय उठाना चाहिए। अत ब्रिटिश सरकार ने अमेरिकन उपनिवेशो पर व्यापार सम्बन्धी कानूनो को कठोर कर दिया और ब्रिटिश व्यापारियो के हितो की दृष्टि से उपनिवेशवासियों पर नए-नए कर थोपे। परिणाम यह हुआ कि उपनिवेश निवासियो में विद्रोह की भावना भडक उठी। उन्होंने ब्रिटिश ससद द्वारा लगाए गए करो को देना अस्वीकार कर दिया।

जब उपनिवेशों ने इग्लैण्ड द्वारा आरोपित कानूनो व आज्ञाओं का खुला उल्लघन करना शुरू कर दिया तो ब्रिटिश सरकार ने अधिकाधिक दमनकारी उपायो का आश्रय लिया। अन्त में सभी 13 उपनिवेशो ने ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की शुरुआत करते हुए जुलाई, 1776 में ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी स्वामी-भक्ति समाप्त कर दी। स्वाधीनता सग्राम में उपनिवेश विजयी हुए। 1783 में एक सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए जिसमें यह बात मानली गई कि सभी 13 उपनिवेश पूर्णत स्वतन्त्र और प्रभुतासम्पन्न राज्य होगे।

अमेरिका के इन उपनिवेशो के सफल विद्रोह ने ब्रिटिश सरकार को अपनी औपनिवेशिक नीति पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। उपनिवेशो के प्रति अब ब्रिटेन में अविश्वास की भावना पैदा हो गई। ऐसे विचार भी पनपने लगे कि इग्लैण्ड उपनिवेशो के बिना ही अधिक अच्छा है और अपनी एकाधिकारी शक्ति के बल पर वह बिना उपनिवेशो के समृद्धि की ओर बढ सकेगा। दास-प्रथा की समाप्ति के लिए होने वाले आन्दोलनो से पश्चिमी अफ्रीका भी निराशा पैदा करने लगा और दक्षिणी अफ्रीका के उपनिवेश भी ब्रिटेन के लिए सिर-दर्द बन गए। 1807 मे दास-व्यापार तथा 1833 मे दास-प्रथा के समाप्त होने से उपनिवेशो के लोगो के विरोध को बल मिला। 1865 में रॉयल कमीशन ने यह सिफारिश की कि पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशो का विस्तार करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। पर जहाँ एक ओर उपनिवेशो के समापन की विचारधारा पनप रही थी वहाँ दूसरी ओर अनेक प्रमुख राजनीतिक उपनिवेशो के महत्त्व मे अटूट विश्वास रखे हुए थे।

इस असमजसपूर्ण स्थिति मे यह विचार बल पकडने लगा कि उपनिवेशवाद की सकीर्ण सीमाओ में वरीयता (Preference) की नीति का परित्याग कर देना चाहिए। धीरे-धीरे ये वरीयताएँ एक-एक करके मिटती गईं और निर्बाध व्यापार की नीति का अनुसरण औपनिवेशिक नीति का मुख्य आधार बन गया। 1842 से 1870 तक ब्रिटेन मे स्वतन्त्र अथवा निर्बाध व्यापार नीति का ही बोलबाला रहा। इस अवधि मे उपनिवेश भार स्वरूप गिने जाने लगे। उन्हें स्वशासन का अधिकार दिया जाने लगा ताकि वे अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए आधार-भूमि बना सके।

यद्यपि स्वतन्त्र व्यापार नीति के अन्तर्गत वाणिज्य के क्षेत्र मे ब्रिटेन और उपनिवेशो मे समानता की नीति पर बल दिया गया, तथापि इस बात पर पूरा ध्यान रखा गया कि उपनिवेशों के हितो की कीमत पर ब्रिटेन के हितो की बलि न चढ जाए। छोटे पिट (Pitt the Younger) का दृष्टिकोण था कि सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की दशा में सुधार और वाणिज्य के क्षेत्र में इग्लैंड व उपनिवेशो मे समानता की नीति अपनाई जाए, लेकिन ब्रिटिश ससद को यह विचार पसन्द नही आया। फिर भी पिट ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति को आगे बढाने का प्रयत्न जारी रखा। पिट के बाद विलियम हसक्सिन ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति को प्रभावशाली ढग से स्थापित किया। 1825 में नौवहन कानून (Navigation Act) में सशोधन किया गया। इसके अनुसार ब्रिटेन को यद्यपि अपने उपनिवेशो व यूरोप के बाहर के देशो के साथ व्यापार मे अधिकार रहा, तथापि उन देशो को अधिक सुविधाएँ प्रदान की गई जो ब्रिटेन को बदले में समान सुविधाएँ देते थे। साम्राज्य अधिमान या वरीयता (Imperial Preference) की नीति मे भी सुधार किया गया। इसे अधिक उदारवादी बनाया गया जिससे उपनिवेशो को लाभ पहुँचा। इग्लैंड ने उपनिवेशो को भी अधिमान स्वीकृत किया। उपनिवेशो से आने वाली विभिन्न वस्तुओ पर, जैसे—चीनी, तम्बाकू, स्प्रिट, शराब आदि पर आयात कर हटा दिया गया। अब उपनिवेशों

मे अन्य देशो से भी आयात करने की छूट दी गई, तथापि ब्रिटिश हितो का पूरा ध्यान रखा गया। विलियम हसक्सिन के बाद सर रॉबर्ट पील तथा ग्लेडस्टन के समय औपनिवेशिक निर्बाध व्यापार को और अधिक प्रोत्साहन मिला। उपनिवेशो से आने वाली चीनी पर से अधिमान समाप्त कर दिया गया। सैकडो वस्तुओ पर से तट कर हटा लिया गया। उन वस्तुओ के सम्बन्ध से जिन पर उपनिवेशो को अधिमान दिया जाता था, ग्लेडस्टन ने यह नीति निश्चित की कि अन्य देशो की वस्तुओ पर भी उतना ही तट कर लगाया जाए जितना उपनिवेशो पर आयात कर लगाया जाता है। सन् 1854 में विदेशो व उपनिवेशो से आने वाली चीनी पर तट कर की दर समान करदी गई।

1870 से 1895 तक विदेशी प्रतिस्पर्द्धा की प्रतिक्रिया का काल

स्वतन्त्र व्यापार की नीति के कारण इग्लैण्ड की समृद्धि मे आशातीत वृद्धि हुई, किन्तु 19वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे इसके विरुद्ध एक भयकर प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई जिसने अन्त मे इस नीति को दफना दिया। 1870 के बाद से ही सरक्षणवादियो का पक्ष प्रबल होता गया। इस वर्ग ने साम्राज्य-अधिमान (Imperial Preference) लगाए जाने की नीति का प्रतिपादन किया। जोसफ चेम्बरलैण्ड ने यह मत प्रकट किया कि एक 'ब्रिटिश साम्राज्य चु गी सघ' (British Imperial Customs Union) सगठित किया जाए तथा ब्रिटेन और उसके सभी उपनिवेशो को एक इकाई समझा जाए। अन्य देशो की वस्तुओ पर सरक्षण कर लगाए जाएँ। सरक्षणवादियो ने कहा कि ऐसा करने से ब्रिटेन और उसके उपनिवेशो में एकता बढ़ेगी तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकेगा। स्वतन्त्र व्यापार-नीति के आकर्षण और सरक्षणवाद की मांग के तर्क-वितर्क के बीच 1870 से 1895 की अवधि मे उपनिवेशवाद के प्रति निराशाजनक मनोवृत्ति का ह्रास होता गया।

स्वतन्त्र व्यापार-नीति के विरुद्ध जो तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उसके फलस्वरूप यद्यपि सरक्षणवादी नीति को पूरी तरह अपनाया नही गया तथापि उपचारात्मक उपाय अवश्य किए गए। इस दृष्टि से निम्नलिखित कदम उठाए गए—

(1) सन् 1886 के बाद इग्लैण्ड ने साम्राज्य अधिमान (Imperial Preference) की नीति को आगे बढाने का प्रयत्न किया। 1887 मे उपनिवेशो का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया ताकि ब्रिटेन व उपनिवेशो के मध्य चु गीसघ बनाकर वरीयता के आधार पर सरक्षणवादी राष्ट्रो के विरुद्ध मोर्चा तैयार किया जा सके।

(2) उपनिवेशो का विकास करने के लिए विभिन्न कम्पनियो का निर्माण किया गया। उदाहरणार्थ, सन् 1881 में ब्रिटिश नार्थ-बोर्नियो कम्पनी, 1886 में रायल नाइजर कम्पनी, 1888 मे ब्रिटिश अफ्रीका कम्पनी तथा 1889 मे ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी की स्थापना की गई। इन कम्पनियों के निर्माण से रचनात्मक साम्राज्यवाद (Constructive Imperialism) का मार्ग प्रशस्त हुआ। जिस समय

अमेरिका के इन उपनिवेशो के सफल विद्रोह ने ब्रिटिश सरकार को अपनी औपनिवेशिक नीति पर पुर्नविचार करने के लिए बाध्य कर दिया। उपनिवेशो के प्रति अब ब्रिटेन में अविश्वास की भावना पैदा हो गई। ऐसे विचार भी पनपने लगे कि इग्लैण्ड उपनिवेशो के बिना ही अधिक अच्छा है और अपनी एकाधिकारी शक्ति के बल पर वह बिना उपनिवेशो के समृद्धि की ओर बढ सकेगा। दास-प्रथा की समाप्ति के लिए होने वाले आन्दोलनो से पश्चिमी अफ्रीका भी निराशा पैदा करने लगा और दक्षिणी अफ्रीका के उपनिवेश भी ब्रिटेन के लिए सिर-दर्द बन गए। 1807 मे दास-व्यापार तथा 1833 मे दास-प्रथा के समाप्त होने से उपनिवेशो के लोगो के विरोध को बल मिला। 1865 में रॉयल कमीशन ने यह सिफारिश की कि पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशो का विस्तार करना बुद्धिमत्तापूर्ण नही होगा। पर जहाँ एक ओर उपनिवेशों के समापन की विचारधारा पनप रही थी वहाँ दूसरी ओर अनेक प्रमुख राजनीतिक उपनिवेशो के महत्त्व मे अटूट विश्वास रखे हुए थे।

इस असमजसपूर्ण स्थिति मे यह विचार बल पकडने लगा कि उपनिवेशवाद की सकीर्ण सीमाओ मे वरीयता (Preference) की नीति का परित्याग कर देना चाहिए। धीरे-धीरे ये वरीयताएँ एक-एक करके मिटती गईं और निर्बाध व्यापार की नीति का अनुसरण औपनिवेशिक नीति का मुख्य आधार बन गया। 1842 से 1870 तक ब्रिटेन मे स्वतन्त्र अथवा निर्बाध व्यापार नीति का ही बोलबाला रहा। इस अवधि मे उपनिवेश भार-स्वरूप गिने जाने लगे। उन्हे स्वशासन का अधिकार दिया जाने लगा ताकि वे अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए आधार-भूमि बना सके।

यद्यपि स्वतन्त्र व्यापार नीति के अन्तर्गत वाणिज्य के क्षेत्र मे ब्रिटेन और उपनिवेशो मे समानता की नीति पर बल दिया गया, तथापि इस बात पर पूरा ध्यान रखा गया कि उपनिवेशों के हितो की कीमत पर ब्रिटेन के हितों की बलि न चढ जाए। छोटे पिट (Pitt the Younger) का दृष्टिकोण था कि सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की दशा में सुधार और वाणिज्य के क्षेत्र मे इग्लैंड व उपनिवेशो मे समानता की नीति अपनाई जाए, लेकिन ब्रिटिश ससद को यह विचार पसन्द नही आया। फिर भी पिट ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति को आगे बढाने का प्रयत्न जारी रखा। पिट के बाद विलियन हसक्सिन ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति को प्रभावशाली ढग से स्थापित किया। 1825 में नौवहन कानून (Navigation Act) में सशोधन किया गया। इसके अनुसार ब्रिटेन को यद्यपि अपने उपनिवेशो व यूरोप के बाहर के देशो के साथ व्यापार मे अधिकार रहा, तथापि उन देशो को अधिक सुविधाएँ प्रदान की गईं जो ब्रिटेन को बदले में समान सुविधाएँ देते थे। साम्राज्य-अधिमान या वरीयता (Imperial Preference) की नीति में भी सुधार किया गया। इसे अधिक उदारवादी बनाया गया जिससे उपनिवेशो को लाभ पहुँचा। इग्लैंड ने उपनिवेशो को भी अधिमान स्वीकृत किया। उपनिवेशो से आने वाली विभिन्न वस्तुओ पर, जैसे—चीनी, तम्बाकू, स्प्रिट, शराब आदि पर आयात कर हटा दिया गया। अब उपनिवेशों

मे अन्य देशो से भी आयात करने की छूट दी गई, तथापि ब्रिटिश हितो का पूरा ध्यान रखा गया। विलियम हसकिसन के बाद सर रॉबर्ट पील तथा ग्लेडस्टन के समय औपनिवेशिक निर्बाध व्यापार को और अधिक प्रोत्साहन मिला। उपनिवेशो से आने वाली चीनी पर से अधिमान समाप्त कर दिया गया। सैकडो वस्तुओ पर से तट कर हटा लिया गया। उन वस्तुओ के सम्बन्ध से जिन पर उपनिवेशो को अधिमान दिया जाता था, ग्लेडस्टन ने यह नीति निश्चित की कि अन्य देशो की वस्तुओ पर भी उतना ही तट कर लगाया जाए जितना उपनिवेशो पर आयात कर लगाया जाता है। सन् 1854 मे विदेशो व उपनिवेशों से आने वाली चीनी पर तट कर की दर समान करदी गई।

1870 से 1895 तक विदेशी प्रतिस्पर्द्धा की प्रतिक्रिया का काल

स्वतन्त्र व्यापार की नीति के कारण इग्लैण्ड की समृद्धि मे आशातीत वृद्धि हुई, किन्तु 19वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे इसके विरुद्ध एक भयकर प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई जिसने अन्त मे इस नीति को दफना दिया। 1870 के बाद से ही सरक्षणवादियो का पक्ष प्रबल होता गया। इस वर्ग ने साम्राज्य-अधिमान (Imperial Preference) लगाए जाने की नीति का प्रतिपादन किया। जोसफ चेम्बरलैण्ड ने यह मत प्रकट किया कि एक 'ब्रिटिश साम्राज्य चुगी सघ' (British Imperial Customs Union) सगठित किया जाए तथा ब्रिटेन और उसके सभी उपनिवेशो को एक इकाई समझा जाए। अन्य देशो की वस्तुओ पर सरक्षण कर लगाए जाएँ। सरक्षणवादियो ने कहा कि ऐसा करने से ब्रिटेन और उसके उपनिवेशो मे एकता बढेगी तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकेगा। स्वतन्त्र व्यापार-नीति के आकर्षण और सरक्षणवाद की मॉग के तर्क वितर्क के बीच 1870 से 1895 की अवधि में उपनिवेशवाद के प्रति निराशाजनक मनोवृत्ति का ह्रास होता गया।

स्वतन्त्र व्यापार-नीति के विरुद्ध जो तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उसके फलस्वरूप यद्यपि सरक्षणवादी नीति को पूरी तरह अपनाया नही गया तथापि उपचारात्मक उपाय अवश्य किए गए। इस दृष्टि से निम्नलिखित कदम उठाए गए—

(1) सन् 1886 के बाद इग्लैण्ड ने साम्राज्य अधिमान (Imperial Preference) की नीति को आगे बढाने का प्रयत्न किया। 1887 में उपनिवेशो का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया ताकि ब्रिटेन व उपनिवेशो के मध्य चुगीसघ बनाकर वरीयता के आधार पर सरक्षणवादी राष्ट्रो के विरुद्ध मोर्चा तैयार किया जा सके।

(2) उपनिवेशो का विकास करने के लिए विभिन्न कम्पनियो का निर्माण किया गया। उदाहरणार्थ, सन् 1881 मे ब्रिटिश नार्थ-बोर्नियो कम्पनी, 1886 में रॉयल नाइजर कम्पनी, 1888 मे ब्रिटिश अफ्रीका कम्पनी तथा 1889 मे ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी की स्थापना की गई। इन कम्पनियो के निर्माण से रचनात्मक साम्राज्यवाद (Constructive Imperialism) का मार्ग प्रशस्त हुआ। जिस समय

ब्रिटिश सरकार उपनिवेशवाद की नीति के बारे मे असमजसपूर्ण स्थिति मे थी, उस समय इन कम्पनियो ने विभिन्न क्षेत्रो मे इग्लैण्ड के प्रभुत्व की स्थापना करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इन कम्पनियो के कारण ही ये क्षेत्र ब्रिटेन के आर्थिक हितो का पोषण करने के साधन बने रहे और विदेशियो के एकाधिकार मे नही जा सके।

(3) औपनिवेशिक व्यापार की उन्नति के लिए उपनिवेशो मे रेलो, सडको और बन्दरगाहो के विकास के प्रयास किए गए। रेलो तथा सामुद्रिक जहाजो ने ब्रिटन को उसके उपनिवेशो के अधिक नजदीक ला दिया। इनके कारण निर्मित माल के लिए बाजार के रूप मे उपनिवेशो का महत्त्व बढता गया।

(4) उपनिवेशो मे फैल रही विभिन्न प्रकार की बीमारियो को रोकने के लिए चिकित्सालय खोले गए जिनका अपरोक्ष रूप मे उपनिवेशो के साथ ब्रिटेन के आर्थिक सम्बन्धो पर अनुकूल प्रभाव पडा।

ब्रिटेन की इस औपनिवेशिक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसे बहुत ही कम लागत पर आर्थिक विदोहन के लिए विशाल बाजार और कच्चे माल तथा खाद्यान्न के भण्डार प्राप्त हो गए। जो व्यापारिक कम्पनियाँ अस्तित्व मे आई वे नए-नए उपनिवेश स्थापित करने और उनका विस्तार करने तथा ब्रिटेन के आर्थिक हितो को आगे बढाने की दिशा मे अमूल्य सेवा करती रही। साथ ही ब्रिटिश सरकार पर प्रशासन सम्बन्धी कोई विशेष आर्थिक बोझा भी नही पडता था। ये कम्पनियाँ महाद्वीपो के भीतरी भागो में पहुँचने और उपनिवेशो से अधिकाधिक आर्थिक लाभ कमाने के लिए रेलो और सडको के निर्माण मे सलग्न रही। इन कम्पनियो के योग्य सचालको ने अफ्रीका मे ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ करने का सराहनीय प्रयत्न किया।

1895 से 1920 तक रचनात्मक साम्राज्यवाद का काल

सन् 1895 मे जोसफ चेम्बरलैण्ड उपनिवेश सचिव नियुक्त हुए। तभी से ब्रिटेन ने विस्तारवादी नीति के स्थान पर जिस नई औपनिवेशिक नीति को अपनाया उसे नया रचनात्मक साम्राज्यवाद (New Constructive Imperialism) कहा जाता है। यह नीति मुख्यत इसलिए अपनाई गई कि औपनिवेशिक व्यापार की उन्नति की जाए तथा साम्राज्य के साधनो का विकास करके उसके देशो में एकता लाई जाए। 1895 से 1920 की इस अवधि मे ब्रिटेन और उपनिवेशो के आर्थिक सम्बन्धो को विकसित करने की दृष्टि से ये कदम विशेष उल्लेखनीय रहे हैं—

(1) 1887 में प्रथम औपनिवेशिक सम्मेलन के बाद 1894, 1897, 1907, 1911, 1917 और 1920 मे औपनिवेशिक सम्मेलन आयोजित किए गए। 1907 के सम्मेलन मे औपनिवेशिक अधिमान (Colonial Preference) का नाम बदल कर स्थाई रूप से साम्राज्य अधिमान (Imperial Preference) रख दिया गया तथा यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक सदस्य देश को दूसरे सदस्य देश के निर्मित माल को प्राथमिकता देनी चाहिए। इन सम्मेलनो से ब्रिटेन तथा उपनिवेशो के बीच आर्थिक सम्पर्क का बहुत अधिक विकास हुआ।

(2) सन् 1899 में एक औपनिवेशिक ऋण विधान स्वीकृत किया गया। ब्रिटिश कोष को यह अधिकार मिला कि कुछ उपनिवेशों को उसमें से ऋण दिया जा सके। ऋण को 50 वर्षों में लौटाने की व्यवस्था की गई। उपनिवेशों को यह भी छूट दी गई कि वे लंदन के खुले बाजार में भी ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

(3) उपनिवेशों में व्यापार सम्बन्धी सूचनाओं के प्रसार की योजना बनाई गई। इसके लिए बोर्ड ऑफ ट्रेड के प्रयत्नों से एक विशेष समिति नियुक्त की गई जिसकी सिफारिश पर बोर्ड ऑफ ट्रेड की 'व्यापार सूचना विभाग' नामक एक विशेष शाखा अस्तित्व में आई। सन् 1908 में दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में ब्रिटिश व्यापार आयुक्त नियुक्त किए गए। प्रथम महायुद्ध काल में भारत वैस्ट इंडीज आदि में भी वाणिज्य दूतों की नियुक्ति हुई।

(4) सन् 1918 में एक खनिज पदार्थ ब्यूरो खोला गया जिसका कार्य खनिज पदार्थ सम्बन्धी सूचना देना था। उपनिवेशों में कृषि विभाग खोलने की ओर भी ध्यान दिया गया क्योंकि उपनिवेशों के कच्चे माल की ब्रिटेन को बहुत जरूरत थी। वेस्ट इंडीज में सर्वप्रथम उष्ण प्रदेशीय कृषि विभाग स्थापित किया गया।

(5) उपनिवेशों में यातायात के साधनों के विकास को प्रोत्साहन दिया गया था। औपनिवेशिक व्यापार व अन्य विदेशी व्यापार की वृद्धि के लिए जहाजरानी को अधिक विकसित किया गया।

व्यापारिक क्षेत्र में विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करने के लिए ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों से निकट सम्पर्क स्थापित कर उन्हें एकता के सूत्र में बाँधने की जो नीति अपनाई वह पर्याप्त सफल रही। इससे ब्रिटेन के आर्थिक हित अधिक सुरक्षित और सुदृढ़ हुए। रचनात्मक साम्राज्यवाद की नीति के कारण सामुद्रिक मनोवृत्ति (Sea Psychology) के स्थान पर भूमि-मनोवृत्ति (Land Psychology) ने प्रमुखता ग्रहण की।

ब्रिटेन की यह नई औपनिवेशिक नीति पुरातन औपनिवेशिक नीति से बहुत भिन्न थी। इस समय उपनिवेशों में भेद-भाव करने की नीति अपनाई गई। अत यह उचित होगा कि हम रचनात्मक साम्राज्यवाद के काल का वर्णन उपनिवेशों के सम्बन्ध में अपनाई गई इस भेद-नीति के आधार पर भी करें। इनसे इस युग के औपनिवेशिक विस्तार के आर्थिक पहलुओं पर ज्यादा अच्छा प्रकाश डाला जा सकेगा।

नई औपनिवेशिक नीति के क्रियान्वयन के अनुरूप कुछ समय के लिए उपनिवेश मुख्यत दो वर्गों में विभाजित किए गए—

(क) एम्पायर इन ट्रस्ट (Empire in Trust), तथा

(ख) एम्पायर इन अलायेन्स (Empire in Alliance)।

(क) एम्पायर इन ट्रस्ट (Empire in Trust)

"एम्पायर इन ट्रस्ट" के अन्तर्गत वे ब्रिटिश उपनिवेश शामिल थे जिनमें अश्वेत लोग (Coloured People) रहते थे। अफ्रीका और एशिया के उपनिवेश

ऐसे ही थे। इन उपनिवेशो मे जनसख्या घनी थी। उपनिवेश-वासियो को स्वशासन का अधिकार प्राप्त न था। शासन सूत्र ब्रिटेन के हाथ मे था। 'एम्पायर इन ट्रस्ट' को इसलिए 'दी एम्पायर ऑफ रूल' (The Empire of Rule) भी कहा जाता था। चेम्बरलेन के अनुसार ये उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य की अविकसित सम्पत्ति (Undeveloped Estates) थे जिनके विकास के लिए पूँजी विनियोग आवश्यक था।

ब्रिटिश सरकार ने इन सब उपनिवेशो के विकास की ऐसी नीति अपनाई जिससे ब्रिटेन के हितो को पूरा सरक्षण मिलता, ब्रिटिश व्यापारिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उपनिवेशो का आर्थिक विदोहन अधिक सुगम हो जाता और उपनिवेशो मे वे ही उद्योग पनपते जो ब्रिटेन के लिए किसी भी रूप में प्रतियोगी सिद्ध न होते। दूसरे शब्दो मे यह कहा जाना चाहिए कि विकास के नाम पर उपनिवेशो के अविकास की नीति पर ही चला गया। उपनिवेशो मे औद्योगिक प्रगति को कुण्ठित रखा गया। इन्हे कृषि प्रधान बनाए रखने का प्रयत्न किया गया ताकि ये ब्रिटेन के लिए कच्चे माल की पूर्ति का साधन बने रहे। उद्योगो को इसलिए नही पनपने दिया गया कि ब्रिटिश उद्योगो द्वारा निर्मित माल उपनिवेशो के बाजारो मे खप सके। ब्रिटेन की यह नीति भी रही कि ब्रिटिश उद्योगो के लिए उपनिवेश खनिज-उत्पादन में लगे रहे। जब कभी ब्रिटेन को यह महसूस हुआ कि उपनिवेशो का किसी क्षेत्र में विकास ब्रिटिश उद्योगो के लिए हानिकारक सिद्ध होगा, तो उसे अविलम्ब रोक दिया गया।

एम्पायर इन ट्रस्ट' (Empire in Trust) वाले उपनिवेशो के विकास की ऐसी नीति अपनाई गई जिससे उनका आर्थिक अवशोषण हो सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित उपाय किए गए—

(1) यातायात के साधनो का विकास किया गया। रेलो के विकास में प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता दी गई। बन्दरगाह आदि के निर्माण के लिए भी धन व्यय किया गया। उपनिवेशों में रेलो के विकास, बन्दरगाहो के निर्माण से व्यापारिक गतिविधियाँ बढी तथा निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, जहाँ 1891 में गोल्डकोस्ट से कोको (Cocoa) का निर्यात केवल 4 लाख पौण्ड होता था वहाँ 1916 में यह लगभग 38 लाख पौण्ड होने लगा। यातायात के साधनो के विकास से ग्रामीण क्षेत्रो में भी आर्थिक गतिशीलता बढी। पश्चिमी अफ्रीका ब्रिटेन को कोको, मूगफली आदि का निर्यात करने लगा तथा ब्रिटिश माल का प्रमुख आयातक बन गया। उपनिवेशो मे रेलो का विकास करने से ब्रिटिश सरकार को भारी आर्थिक लाभ हुआ।

(2) स्वास्थ्य सेवाओ और स्वास्थ्य सस्थाओ का विस्तार किया गया ताकि उपनिवेश महामारियो के प्रकोप से बच सकें और उनमें श्वेत लोगो को अधिकाधिक बसाया जा सके जो वहाँ अर्थ-तन्त्र पर अपना पूरा कब्जा जमा लें।

(3) उपनिवेशो मे कृषि के वैज्ञानीकरण को प्रोत्साहन दिया गया। कृषि-क्षेत्र और कृषि ज्ञान के विस्तार के प्रयास किए गए ताकि अधिकाधिक कच्चा माल उत्पादित किया जाकर ब्रिटेन को भेजा जा सके। कृषि शिक्षा के प्रसार से किसानो को

अधिकाधिक लाभ उठाने के अवसर दिए जाने लगे। फसलों को नष्ट करने वाले रोगों और जीव जन्तुओं पर नियन्त्रण की नीति अपनाई गई। उपनिवेशों में कृषि विभाग खोले जाने लगे जिनसे नई-नई कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहन मिला। उदाहरणार्थ, वेस्ट इंडीज में कृषि विभाग खोला गया जिसने नई पद्धति से गन्ना-उत्पादन बढ़ाया। नई पद्धति के कारण गन्ने के उत्पादन में पूर्वापेक्षा 10 से 15 प्रतिशत तक की वृद्धि हो गई। इंग्लैंड के सूती वस्त्र उद्योग के लिए कपास के आयात की बहुत अधिक आवश्यकता थी। अतः उपनिवेशों में कपास की फसलों को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया गया। ब्रिटिश-माँग की पूर्ति के लिए कपास की उत्तम-कोटि की फसलें उगाई जाने लगीं। मिस्र और अमेरिका में कपास का लगभग एक तिहाई भाग कीड़ों व रोगों से नष्ट हो जाता था, अतः इस दिशा में सुधार के आवश्यक कदम उठाए गए। ब्रिटिश सरकार ने इस क्षति को रोकने के लिए काफी धन-राशि व्यय की। कपास से उत्पादन के विकास के लिए उपनिवेशों में रेलों और सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि की गई। फलस्वरूप कपास का उत्पादन काफी बढ़ गया। उदाहरणार्थ—नाइजीरिया में जहाँ प्रथम महायुद्ध के विस्फोट के समय अर्थात् 1914 में कपास का उत्पादन केवल 11 गाँठ होता था वहाँ 1921 में यह उत्पादन लगभग 31,500 गाँठ होने लगा। कपास की भाँति ही गेहूँ, गन्ना, जूट, रेशम, सरसों, तम्बाकू आदि में भी वृद्धि के लिए वैज्ञानिक प्रयास किए जाने लगे।

अपने आर्थिक हितों की दृष्टि से ब्रिटेन ने उपनिवेशों में यातायात के साधनों, बन्दरगाहों, स्वास्थ्य सेवाओं, कृषि संस्थाओं आदि का जो विकास किया उसके फलस्वरूप उपनिवेशों की अविकसित सम्पत्तियों का तेजी से विदोहन किया जाने लगा। यद्यपि उपनिवेशों को भी लाभ हुआ क्योंकि उनमें उद्योग व कृषि के वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार हुआ और आधुनिक यातायात के साधन विकसित हुए, तथापि ब्रिटेन की आर्थिक समृद्धि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी। ब्रिटेन के सम्पर्क से उपनिवेशों में धनैः-शनैः जागरण की लहर पैदा होने लगी और अन्त में एक दिन वह आया जब उपनिवेशों की सम्पत्ति लूटने के दरवाजे बन्द हो गए।

उल्लेखनीय है कि 'एम्पायर इन ट्रस्ट' में भी स्वयं की अधिमान पद्धति (Preference System) का विकास हुआ। उदाहरणार्थ, *1919* में ब्रिटेन द्वारा अधिमान अपनाए जाने पर माल्टा व साइप्रस ने ब्रिटिश माल के आयात में अधिमान-नीति का अनुसरण किया। इसी प्रकार जामियाका ने भी साम्राज्य में उत्पादित सूती माल पर अधिमान देने की नीति अपनाई।

(ख) एम्पायर इन अलायेन्स (Empire in Alliance)

"एम्पायर इन अलायेन्स" के अन्तर्गत वे उपनिवेश सम्मिलित थे जिनमें श्वेत लोग रहते थे अथवा जहाँ श्वेत लोग बस-कर उन्हें अधिकाधिक आबाद कर सकते थे। 'इनमें कनाडा' आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका आदि थे। इन देशों को स्वशासन का अधिकार प्राप्त था और उन्हें कुछ आर्थिक स्वतन्त्रताएँ मिली हुई थीं। इन उपनिवेशों को "डोमिनियन्स" (Dominions) कहा जाता था।

ब्रिटिश सरकार ने इन डोमिनियनों के साथ आर्थिक सहयोग की नीति अपनाई और उन्हें परस्पर एक-दूसरे के साथ व्यवहार के सम्बन्धो मे विभिन्न व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन उपनिवेशों के प्रति अपनाई गई यह नीति ही वास्तव में "साम्राज्य अधिमान" (Imperial Preference) की नीति के आविर्भाव का कारण थी।

'एम्पायर इन अलायेन्स' के उपनिवेशो को आन्तरिक स्वतन्त्रता 1875 तक मिल चुकी थी। इन्हे "एम्पायर ऑफ सेटलमैंट" (Empire of Settlement) अथवा "ब्रिटिश कामनवैल्थ ऑफ नेशन्स" (British Commonwealth of Nations) भी कहा जाता था। ब्रिटिश सरकार के प्रयासो ने इन उपनिवेशो अथवा डोमिनियनो मे यातायात के साधनो का बहुत अधिक विकास हुआ जिससे इनके आपसी सम्बन्ध विकसित हुए तथा "साम्राज्यीय सघ" (Imperial Federation) की धारणा बल पकडने लगी।

डोमिनियनो मे "साम्राज्यीय सघ" की विचारधारा के जोर पकडने पर ब्रिटेन ने सन् 1887 मे एक उपनिवेशीय सम्मेलन का आयोजन किया ताकि प्रदेशो के साथ राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से निकटतम सम्पर्क बनाए रखने का मार्ग प्रशस्त हो। अगले सम्मेलन क्रमश 1894, 1897, 1907, 1911, 1917, तथा 1920 मे आयोजित हुए। 1917 मे आयोजित सम्मेलन मे भारत के प्रतिनिधि को आमन्त्रित किया गया। यह निश्चय भी हुआ कि भविष्य मे होने वाले सभी सम्मेलनो मे भारत को प्रतिनिधित्व मिलेगा। यह वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण निश्चय था क्योकि इसके फलस्वरूप "एम्पायर इन अलायेन्स" की श्वेत लोगो की बपौती समाप्त हो गई। 1918 में साम्राज्यीय युद्ध कैबिनेट (Imperial War Cabinet) द्वारा यह भी निर्णय लिया गया कि साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेश कच्चे माल को बेचने के सम्बन्ध में साम्राज्यीय देशो को प्राथमिकता देंगे।

साराँशत. ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति मे समयानुसार परिवर्तन होता गया और 19वीं शताब्दी के अन्त में इस बात पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा कि परस्पर व्यापार में वृद्धि की जाए। जैसा कि कहा जा चुका है, साम्राज्य अधिमान इसी परिवर्तित नीति का परिणाम था। यद्यपि इसकी अर्थात् साम्राज्य अधिमान की चर्चा पूर्व पंक्तियो में जगह-जगह की जा चुकी है, तथापि विषय की स्पष्टता की दृष्टि से यह उचित होगा कि अलग से इस पर कुछ लिख दिया जाए।

साम्राज्य अधिमान का इतिहास

साम्राज्य अधिमान के अन्तर्गत उपनिवेश ब्रिटेन को विभिन्न व्यापारिक सुविधाएँ देते थे और ब्रिटेन भी उन्हें आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करता था। ये देश आपस में एक-दूसरे की वस्तुओ पर या तो तटकर लगाते ही नहीं थे अथवा तटकर की दर घटा देते थे। इसके विपरीत ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर के देशो की वस्तुओ पर प्राय ऊँची दर से तटकर लगाया जाता था।

साम्राज्य अधिमान का आरम्भ 1897 में तब हुआ जब कनाडा में ब्रिटिश वस्तुओ पर करो में $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत की छूट दी गई। 1918 में यह अधिमान बढाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया। यह अधिमान केवल ब्रिटिश वस्तुओ पर ही दिया जाता था। अन्य उपनिवेशो की वस्तुओ को यह अधिमान तभी मिल सकता था जब कनाडा की वस्तुओ को भी उन उपनिवेशो में अधिमान दिया जाता।

सन् 1902 में जो औपनिवेशिक सम्मेलन हुआ, उसमें साम्राज्य अधिमान की विस्तृत रूपरेखा तैयार की गई। यद्यपि रूपरेखा साम्राज्य के अधिकांश देशो में लागू की गई तथापि ब्रिटेन इसे पूरी तरह अपना नही सका। क्योकि अभी तक वह स्वतन्त्र व्यापार नीति और सरक्षणवाद के तर्क वितर्क में बुरी तरह फँसा हुआ था। व्यवहारत अभी स्वतन्त्र व्यापार-नीति की ही प्रधानता थी। चूँकि उपनिवेशो को यह आशा थी कि ब्रिटेन निकट भविष्य में अधिमान देगा, अत उन्होने इस नीति को जारी रखा तथा 1922 तक कुल 26 देशो ने इस नीति को अपना लिया। फलस्वरूप ब्रिटेन को काफी आर्थिक लाभ पहुँचा। सन् 1915 के बाद ब्रिटेन सरक्षणवाद की ओर अग्रसर हुआ। अब उपनिवेशो को कुछ अशो में अधिमान दिया जाने लगा। सन् 1919 में साम्राज्यीय देशो से आयातित वस्तुओ पर कर की दर भी कम की गई। 1921 में एक अधिनियम के अन्तर्गत यद्यपि कुछ ब्रिटिश उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया, किन्तु उपनिवेशो की वस्तुओ पर तटकर में छूट दी गई।

वास्तव में 1915 से सन् 1931 तक ब्रिटेन पूरी तरह सरक्षणवाद नही अपना सका। व्यवहार में काफी सीमा तक आयात पर प्रतिबन्ध और कर लगाए जाने से स्वतन्त्र व्यापार नीति में बाधा पडने लगी थी और सरक्षणवाद को अपनाया जा चुका था, तो भी सैद्धान्तिक रूप से ब्रिटेन अभी स्वतन्त्र व्यापारवादी राष्ट्रो की श्रेणी में बने रहना चाहता था। लेकिन अन्तत परिस्थितियो ने बाध्य कर दिया कि ब्रिटेन स्वतन्त्र व्यापार नीति का पूर्ण परित्याग कर दे। अक्तूबर, 1931 में ब्रिटेन में ऐसी सरकार बनी जो सरक्षणवादी नीति की समर्थक थी। इस नई सरकार के सत्तारूढ होते ही ब्रिटिश आर्थिक नीतियो मे आमूल परिवर्तन किए गए और इग्लैंड पूर्ण रूप से एक सरक्षणवादी राष्ट्र बन गया।

सन् 1932 में ओटावा (Ottawa) में साम्राज्यीय देशो का एक आर्थिक सम्मेलन (Economic Conference) हुआ जिसमे साम्राज्यवादी देशो के साथ व्यापार बढाने के उद्देश्य से ब्रिटेन ने उनके आयात पर निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान की—

(1) सभी साम्राज्य के देशो की वस्तुओ पर ब्रिटेन मे कोई तटकर नही लगाया जाएगा।

(2) कुछ ब्रिटिश विदेशी वस्तुओं पर तत्कालीन अधिमान की सीमा 10 प्रतिशत रखी गई, तथा

(3) साम्राज्य के देशो की अन्य वस्तुओ पर अधिक अधिमान की सुविधा दी गई। इन सुविधाओ के बदले मे साम्राज्यीय देशो ने भी रासायनिक पदार्थ, सूती वस्त्र तथा ऊन आदि की निर्मित वस्तुओ को अधिमान देना स्वीकार किया।

साम्राज्यीय अधिमान (Imperial Preference) के उक्त समझौते से ब्रिटिश व्यापार मे तो वृद्धि हुई, लेकिन उपनिवेशो को विशेष लाभ नही हुआ। इसी कारण भारत आदि देशो मे ओटावा समझौते का विरोध किया गया, लेकिन फिर भी साम्राज्य अधिमान की नीति जारी रखी गई। वर्तमान समय मे भी अपने परिवर्तित रूप मे यह नीति जारी है, किन्तु अब इसे साम्राज्यीय (साम्राज्यीय अधिमान) न कह कर राष्ट्र-मण्डलीय अधिमान कहते है।

ब्रिटेन द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक सरक्षण नीति (Protection Policy) के मार्ग पर चलता रहा और साम्राज्य अधिमान की शर्तों को भी मानता रहा फिर भी आवश्यकतानुसार समय समय पर सन् 1932 से 1939 के मध्य कई देशो से द्विपक्षीय समझौते करके सरक्षण नीति मे सुधार किया जाता रहा। उदाहरणार्थ, सन 1938 में सयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा के बीच द्विपक्षीय व्यापारिक समझौता किया गया।

1939 से 1945 तक द्वितीय महायुद्ध चलता रहा। इस युद्ध ने ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था को बिलकुल अस्त-व्यस्त कर दिया। उसके विदेशी बाजार सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे औद्योगिक देश के हाथो मे खिसकने लगे। एक-एक करके उसके रहे सहे उपनिवेश भी हाथ से निकल गए और आज उसका साम्राज्य एक अतीत की कहानी बन चुका है।

औपनिवेशिक-विस्तार से ब्रिटेन व उपनिवेशों को आर्थिक हानि-लाभ

अथवा

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के आर्थिक परिणाम

औपनिवेशिक नीति के कारण ब्रिटेन को कितने विस्तृत आर्थिक लाभ हुए और उपनिवेशो की क्या दशा रही, इसका विस्तृत चित्र पूर्ववर्ती पृष्ठो मे मिल जाता है, तथापि सक्षेप में इन आर्थिक परिणामो को एक-एक करके गिनाना अधिक उचित होगा—

(1) ब्रिटेन ने उपनिवेशो को ब्रिटिश उद्योगो के लिए कच्चे माल की पूर्ति का साधन बनाया। उपनिवेशो को प्रोत्साहित किया गया कि वे कपास, रेशम, टिम्बर फ्लेक्स आदि का अधिकाधिक उत्पादन करके इन वस्तुओ का ब्रिटेन को निर्यात करें। उपनिवेशो को किसी भी ऐसी वस्तु का निर्माण करने से यथा-साध्य रोका गया जो ब्रिटिश उद्योगों के लिए प्रतिस्पर्द्धा का कारण बन सकती थी।

(2) उपनिवेशो को ब्रिटिश उद्योगो द्वारा निर्मित माल के विक्रय का बाजार बनाया गया। उन्हे किसी भी अन्य राष्ट्र से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखने का अधिकार नहीं दिया गया। उपनिवेशो के औद्योगिक विकास पर अकुश रखा गया। उनकी अर्थ-व्यवस्था को इस तरह विखडित करने का प्रयत्न किया गया कि ब्रिटिश उद्योगों को वहाँ निर्बाध व्यापार मिल सके।

(3) उपनिवेशो के कुटीर और लघु उद्योगो के विकास की तरफ भी कोई

ध्यान नही दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशो के पुराने घरेलू उद्योग-धन्धो को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर आधुनिक ढग के कारखानो का भी विकास नही किया। फलस्वरूप उपनिवेशो मे बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप में हमेशा बनी रही। यदि आगे चलकर कुछ उद्योगों को स्थापित भी किया गया तो भी इस तरह किया गया कि ब्रिटिश हितो को कोई भी गम्भीर खतरा पैदा न हो सके।

(4) ब्रिटिश सरकार की नीति मूलत यही बनी रही कि उपनिवेश आर्थिक जडता की स्थिति मे फँसे रहे।

(5) कच्चे माल की प्राप्ति के लिए उपनिवेशो मे कृषि को प्रोत्साहित करने की नीति अपनाई गई, लेकिन ब्रिटिश सरकार का प्रयत्न सदा यही रहा कि उपनिवेशो की कृषि केवल इतनी ही उन्नत बने जिससे ब्रिटेन की आवश्यकताओं की पूर्ति को सहारा मिले। इसीलिए कृषि विकास के लिए आधुनिकतम सिंचाई व्यवस्था और यान्त्रिक साज-सज्जा की पूर्ति नहीं की गई। फलस्वरूप उपनिवेशो की कृषि मानसून का जुआ बन गई। वहाँ की अस्थिर कृषि देश के औद्योगिक विकास का कोई सहयोग प्रदान नही कर सकी।

(6) उपनिवेशो मे यातायात के साधनो का विकास किया गया, किन्तु इसके मूल में भी ब्रिटिश सरकार का इरादा अपने आर्थिक हितो की पूर्ति का था। उपनिवेशो के भीतरी भागो मे ब्रिटेन में निर्मित माल को पहुँचाने के लिए तथा वहाँ से कच्चे माल को बन्दरगाहो पर लाने के लिए ही मुख्यत रेलो व सडको का विकास किया गया। ब्रिटिश सरकार की इस नीति से उपनिवेशो द्वारा निर्मित वस्तुओ की मांग समाप्त हो गई। वास्तव में ब्रिटिश नीति इग्लैण्ड के औद्योगिक हित में उपनिवेशो की अर्थ-व्यवस्था का विशिष्टीकरण करने की रही। ज्यो-ज्यों ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग विकसित होता गया, ब्रिटिश-नीति कपास के कृषि क्षेत्र का विस्तार करने मे हो गई। जिन उपनिवेशो की धरती कपास के उत्पादन के लिए उपयुक्त थी, वहाँ कपास की खेती को अधिकाधिक बढाया गया।

(7) उपनिवेशो की परम्परागत अर्थ-व्यवस्था तहस-नहस हो गई। स्वदेशी शिल्पकारो ने बिना सोचे-समझे पश्चिमी पेटर्न की नकल की जिससे स्वदेशी वस्तुओ की ख्याति को धक्का पहुँचा। स्वदेशी कारीगरो को वृहत स्तरीय निर्माणी-उत्पादन मे प्रशिक्षण पाने से वचित रखा गया। आगे चलकर जब भारत जैसे उपनिवेशो में बडे-बडे उद्योगो के विकास की ओर पूँजीपतियो ने ध्यान देना प्रारम्भ किया तो घरेलू छोटे उद्योगो की अवनति एकदम चरम सीमा पर पहुँच गई।

(8) ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशो मे रेलो के विकास के माध्यम से विदेशी पूँजी के विनियोग को प्रोत्साहन दिया जिससे वहाँ अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गई। देश के उद्योगो मे विदेशी पूँजी का विनियोग होने से स्वार्थी तत्त्व पनपने लगे और उपनिवेशों की राजनीतिक उन्नति मे बडी बाधा पहुँची। वस्तुत ब्रिटिश शासन मे रेल-व्यवस्था का एक बडा उद्देश्य उपनिवेशो का आर्थिक शोषण करना ही था। यदि उस समय उपनिवेशो के घरेलू उद्योगो और अन्य उत्पादन स्रोतो का साथ-साथ

ही विकास किया जाता तो रेलवे निर्माण और विस्तार से उन्हें काफी लाभ हो सकता था। लेकिन ब्रिटेन की नीति तो हर प्रकार से उपनिवेशो का आर्थिक शोषण करने की थी। अत रेलो द्वारा उपनिवेशो के कच्चे माल और खाद्यान्नो का निर्यात किया गया। रेलो के निर्माण पर जो व्यय किया गया उसका भार भी उपनिवेशो की जनता पर करो के रूप मे डाला गया।

(9) ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति का मूल उद्देश्य यही रहा कि उपनिवेशो से ब्रिटेन की ओर सम्पत्ति का निष्कासन (Economic Drain) रहे। सम्पत्ति के निष्कासन से उपनिवेशो का कितना शोषण हुआ, इसका अनुमान हम अकेले भारत के उदाहरण से ही लगा सकते हैं। सन् 1867 मे दादाभाई नौरोजी ने कहा कि "भारत मे एकत्र की गई आय का लगभग ¼ भाग भारत मे शासन करने का मूल्य है जो देश के बाहर चला जाता है और इग्लैण्ड के साधनो मे जोड दिया जाता है।" सन् 1872 मे जस्टिस रानाडे ने बताया कि—"भारतीय राष्ट्रीय आय का एक तिहाई से भी अधिक भाग किसी न किसी रूप मे ब्रिटिश सरकार द्वारा ले जाया जाता है।" विदेशी राजनीतिज्ञो और अर्थ-शास्त्रियो ने इस बात से सहमति प्रकट की है कि सम्पत्ति-निष्कासन भारत की तथा अन्य उपनिवेशो की दरिद्रता का एक प्रमुख कारण था।

(10) ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशो के उद्योगो के प्रति घातक नीति अपनाकर वहाँ आर्थिक जडता की प्रत्येक स्थिति पैदा करदी है। उदाहरणार्थ, भारत मे बडे-बडे उद्योगो पर ब्रिटिश पूँजीपतियो ने ही अधिकार रखा। बड़े पैमाने पर स्थापित किए गए अन्य उद्योगो पर सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण रहा। भारतीय वस्त्र उद्योग को हर सम्भव उपाय से हतोत्साहित किया गया। ब्रिटेन को भेजे जाने वाले भारतीय सूत और रेशमी माल पर 40 से 60 प्रतिशत आय-कर लगाया गया जबकि ब्रिटिश सूती माल पर भारत मे मूल्यानुसार केवल 3½ प्रतिशत आयात-कर आरोपित किया गया। वास्तव मे ब्रिटेन की कपडा मिलें भारतीय हितो की बलि देकर चलाई गई। भारतीय जहाजरानी उद्योग को भी इसी तरह की भेदपूर्ण नीति अपनाकर नष्ट कर दिया गया। भारत और इग्लैण्ड के बीच होने वाले व्यापार मे भारतीय जहाजो के उपयोग को निरुत्साहित किया गया। भारत मे कच्चे लोहे की बहुलता रही, लेकिन अग्रेजो ने देश के लोहा उत्पादन पर कोई ध्यान नहीं दिया। भारत में ब्रिटिश शासन की यही नीति रही कि भारतीय उद्योगो के विस्तार के लिए आवश्यक पूँजी, कच्चे माल, तकनीकी सहायता, कल-पुर्जे व मशीन आदि की सुविधाएँ ब्रिटिश पूँजीपतियो के सहयोग से व सचालन पर उनके एकाधिकार देने पर ही प्राप्त की जा सकती थी। सन् 1923 से देश के उद्योगो के विकास में विभेदात्मक सरक्षण नीति अपनाई गई, किन्तु बहुत देर से और अपर्याप्त ढंग से अपनाई जाने के कारण यह भारतीय हितो को आगे बढाने मे अधिक समर्थ न हो सकी।

(11) ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों में वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का

आवश्यक प्रसार नहीं किया। फलस्वरूप विदेशों की तरह यहाँ आधुनिक उद्योग-धन्धे स्थापित नहीं किए जा सके।

(12) उपनिवेशो के श्रमिको की कुशलता बढाने के कोई प्रयास नही किए गए जिससे उनकी उत्पादकता में वृद्धि नही हुई और न ही उनके जीवन-स्तर मे सुधार हो सका। ब्रिटिश नीति केवल श्रमिको का शोषण करने की ही रही।

(13) रचनात्मक साम्राज्यवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत साम्राज्यीय अधिमान की जो नीति विकसित की गई वह ब्रिटेन के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई क्योकि इसके आधार पर वह विश्व में अपनी व्यापारिक स्थिति कायम रख सका। पर दूसरी ओर विकासशील उपनिवेशो को भी इससे लाभ हुआ क्योकि वे अपने माल के निर्यात को ब्रिटेन मे बढा सके। उदाहरणार्थ भारत उस नीति के कारण ही ब्रिटेन मे अपने कपड़े का निर्यात बाजार बढ़ा सका।

(14) ब्रिटेन ने उपनिवेशो का आर्थिक विदोहन करने के लिए जिन विभिन्न साधनो का विकास किया, उनसे कालान्तर मे उपनिवेशो को काफी लाभ भी पहुँचा। उपनिवेशो में वैज्ञानिक साधनो के विकास की आधार-भूमि तैयार हो गई। फलस्वरूप राजनीतिक चेतना के विकास के साथ-साथ उनमे अपने आर्थिक साधनो का खुद ही उपभोग करने और लाभ उठाने की बलवती भावना जाग्रत हुई। कालान्तर में यह स्थिति पैदा हो गई कि ब्रिटेन लेन-देन की भावना से काम करे और भी आगे चलकर उपनिवेश अपने आर्थिक हितो की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गए। कृषि, खनिज, उद्योग आदि सभी क्षेत्रो में विकास की जो आधारशिला ब्रिटिश प्रयासो से बन चुकी थी, उसके बल पर वे अपने भावी औद्योगिक प्रगति का महल खडा करने मे अपने आपको समर्थ महसूस करने लगे। इसी कारण स्वतन्त्र होने के उपरान्त उनकी प्रगति जारी रह सकी।

स्पष्ट है कि ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति के कारण जहाँ प्रारम्भ मे केवल ब्रिटेन ही लाभान्वित हुआ वहाँ आगे चलकर उपनिवेशों को भी लाभ पहुँचा। फिर भी ब्रिटेन द्वारा उपनिवेशो का आर्थिक शोषण पहले ही इतना कर लिया गया कि बाद मे उपनिवेशो को भारी मुसीबतो का सामना करना पडा और आज भी वे अपनी आर्थिक प्रगति के लिए सघर्ष कर रहे हैं।

3

तीसा में आर्थिक स्थिरता की नीतियाँ

(Policies for Economic Stabilization During 1930s)

प्रथम महायुद्ध के बाद का काल यूरोप के देशो के लिए आर्थिक-पुनर्निर्माण का काल था। यूरोप के सभी क्षतिग्रस्त राष्ट्रो ने तेजी से आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम अपनाए और 1925 तक वहाँ परिस्थितियाँ प्राय सामान्य हो गईं। दुर्भाग्य-वश ब्रिटेन इस क्षेत्र मे विभिन्न कारणोवश पिछड़ा रहा। 1929 से पूर्व तक सभी राष्ट्रो ने भारी आर्थिक प्रगति की पर ब्रिटेन की दशा मे विशेष सुधार नही हुआ। इसके बाद ही 1929 मे प्रारम्भ होने वाली महान आर्थिक मन्दी ने सभी देशो को अचानक ही धराशाही कर दिया। सम्पूर्ण विश्व घोर आर्थिक सकटो मे फस गया। ब्रिटेन ने अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए जो भी प्रयत्न किए थे, वे आर्थिक मन्दी की एक ही चपेट मे अस्त-व्यस्त हो गए। इसके बाद आर्थिक मन्दी के भयानक दुष्प्रभावो को दूर करने के लिए 1930 वाले दशक मे ब्रिटेन ने अनेक उपाय किए और महत्त्वपूर्ण आर्थिक नीतियाँ अपनाईं। इन विभिन्न नीतियो और उपायो के फलस्वरूप 1935 के बाद आर्थिक पुनरुत्थान के लक्षण दिखाई पड़ने लगे, किन्तु 1937 मे ब्रिटेन पुन मन्दी के चक्कर मे आने लगा और इसके बाद ही द्वितीय महायुद्ध सम्बन्धी तैयारियो तथा महायुद्ध के विस्फोट ने ब्रिटेन के पुनरुत्थान को रोक दिया।

महान मन्दी से पूर्व ब्रिटेन की आर्थिक दशा का एक चित्र

प्रथम महायुद्ध काल के बाद ब्रिटेन ने अपने आर्थिक पुनर्निर्माण के जो भी प्रयत्न किए वे विशेष सफल नही हुए। तब 1925 में ब्रिटेन ने अपनी आर्थिक दशा सुधारने और व्यापारिक परिस्थितियो को अपने अनुकूल करने के लिए स्वर्णमान अपनाया, लेकिन आशाजनक परिणाम नही निकला। अन्य देशो के मुकाबले ब्रिटिश उत्पादन मे बहुत कम वृद्धि हुई। दूसरी ओर बेरोजगारी बहुत ही अधिक बढ गई। ब्रिटेन का औद्योगिक उत्पादन अनेक कारणो,से निराशाजनक रहा, जैसे निर्माण व्यय मे वृद्धि, दोषपूर्ण सगठन, पुरानी मशीनें, नियोजको का परम्परागत दृष्टिकोण, औद्योगिक झगडे व श्रमिको का असहयोग, सरकार की मौद्रिक नीति आदि। ब्रिटेन का निर्यात-व्यापार काफी कम हो गया। उदाहरणार्थ 1913 से 1929 के बीच सूती-वस्त्र के निर्यात में 37 प्रतिशत की, लोहा व इस्पात के निर्यात मे 12 प्रतिशत की, कोयले के निर्यात में 18 प्रतिशत की और जहाज निर्यात उद्योगो के निर्माण मे 19 प्रतिशत की कमी हुई। इसी तरह जहाँ 1860 मे इन उद्योगो मे कुल श्रम शक्ति

का लगभग 44 प्रतिशत भाग लगा था वहाँ 1929 तक यह 25 प्रतिशत के आस-पास रह गया। 1925 से 1929 के बीच जहाँ सोवियत रूस के अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन मे औसत वृद्धि लगभग 26 प्रतिशत रही वहाँ ब्रिटेन मे यह 16 प्रतिशत से भी कम रही। जहाँ सयुक्त राज्य अमेरिका मे 1929 तक बेरोजगारी केवल 2 प्रतिशत थी वहाँ ब्रिटेन मे लगभग 11 प्रतिशत थी।

साराशत ब्रिटेन की आर्थिक दशा महान आर्थिक मन्दी से पूर्व विशेष अच्छी न थी। अन्य अनेक यूरोपीयन देशो तथा सयुक्त राज्य अमेरिका आदि के मुकाबले *ब्रिटेन की दशा गिरी हुई थी।*

महान् आर्थिक मन्दी के दुष्प्रभाव और तीसा मे अपनाई गई ब्रिटिश नीतियाँ

सन् 1929 मे अमेरिका के वाल स्ट्रीट के महान आर्थिक विस्फोट के साथ ही जो भयानक आर्थिक मन्दी चारो ओर फैली उसने ब्रिटेन की आर्थिक दशा को सम्भलने का मौका नही दिया। आर्थिक मन्दी ने सभी देशो मे औद्योगिक उत्पादन, रोजगार, विनियोग स्तर, विदेशी व्यापार आदि को भारी आघात पहुँचाया। ब्रिटेन पर भी इस मन्दी का बहुत ही बुरा प्रभाव पडा। जहा 1929 के मध्य तक ब्रिटेन में बेरोजगारी 11 प्रतिशत के आस-पास थी वहाँ 1932 मे कार्यशील जनसख्या का 22 प्रतिशत से भी अधिक भाग बेकार हो गया, औद्योगिक उत्पादन तेजी से गिर गया। मूल्य-स्तर, निर्यात-व्यापार, रोजगार आदि सभी मे तीव्र गति से ह्रास हुआ। 1931 में ब्रिटेन की आर्थिक दुरावस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। इस समय तक ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था का जो पतन हुआ उसका आभास ब्रिटेन के प्रमुख आर्थिक तत्वो में निम्नाकित निर्देशाको से मिलता है—

ब्रिटेन मे प्रमुख आर्थिक तत्वों के निर्देशांक (1923=100)

	1929	1930	1931
औद्योगिक उत्पादन	106	98	89
रोजगार	102	98	94
थोक मूल्य-स्तर	97	85	74
निर्यात-मूल्य	103	89	74

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महान मन्दी के समय ब्रिटेन के आर्थिक क्षेत्र के सभी पक्षो की दुर्गति हुई। ब्रिटेन का भुगतान सन्तुलन भी बहुत बिगड गया। यह 1926 मे 10 3 करोड पौण्ड पक्ष में था जो 1930 मे 5 6 करोड पौण्ड विपक्ष में हो गया। विश्व-व्यापार मे भी ब्रिटेन का भाग 11 प्रतिशत से घटकर 1930 मे 10 प्रतिशत ही रह गया। बैंक ऑफ इग्लैण्ड को स्वर्ण-भुगतान की विकट समस्या का सामना करना पडा और पौण्ड के गिरते हुए मूल्य के फलस्वरूप स्वर्णमान का परित्याग करना पड़ा। पौण्ड का अवमूल्यन भी किया गया। ब्रिटिश-कृषि की दशा भी गिरती गई और सन् 1931 तक वह मन्दी के चक्कर मे बुरी तरह फस गई।

तीसा मे अपनाई गई ब्रिटिश नीतियाँ
(British Policies Adopted during 1930s)

मन्दी के भीषण दुष्प्रभावो को दूर करने और आर्थिक स्थिरता लाने के लिए ब्रिटेन ने 1930 के दशक मे विभिन्न प्रभावशाली उपाय किए जो संक्षेप मे निम्नलिखित थे—

(1) स्वर्णमान का परित्याग और पौण्ड-स्टर्लिंग का अवमूल्यन

ब्रिटिश सरकार ने सन् 1931 मे स्वर्णमान का परित्याग कर दिया। फलस्वरूप पौण्ड के मूल्य मे शीघ्र ही 20 प्रतिशत की कमी आ गई। वर्ष के अन्त तक पौण्ड का मूल्य लगभग 10 प्रतिशत और गिर गया। स्वर्णमान के परित्याग तथा पौण्ड के अवमूल्यन के कारण ब्रिटेन को प्रारम्भ में लाभ हुआ, लेकिन जब कुछ ही समय बाद अधिकांश देशो ने भी इस नीति को अपनाया तो ब्रिटेन के तुलनात्मक लाभ शनै शनै कम अथवा समाप्त हो गए। इस प्रकार स्वर्णमान के परित्याग और पौण्ड के अवमूल्यन की नीति विशेष फलदायक सिद्ध नही हुई।

(2) संरक्षणवादी नीति

सन् 1875 के बाद से ही ब्रिटेन की स्वतन्त्र व्यापार-नीति का विरोध बढ़ता जा रहा था। फिर भी सन् 1931 तक ब्रिटेन मे यह नीति प्रचलित रही। 1931 में ब्रिटेन को स्वर्णमान का परित्याग करना पडा। इस समय ब्रिटेन का भुगतान शेष अत्यधिक प्रतिकूल हो गया और इन परिस्थितियो मे संरक्षण की तीव्र आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। संरक्षणवादियो ने इस बात का जोरदार प्रचार किया कि आयात-कर लगाकर भुगतान-शेष की समस्या सुधारी जा सकती है और इस नीति पर चलने से ही ब्रिटिश उद्योगो का विकास तथा बेरोजगारी की समाप्ति सम्भव है। साथ ही अन्य देशो से भी सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

इस वातावरण मे अक्तूबर, सन् 1931 मे ऐसी सरकार बनी जो संरक्षणवादी नीति की समर्थक थी। इस नई सरकार ने सत्तारूढ होते ही आर्थिक नीतियो में आमूल परिवर्तन किए। सितम्बर 1931 में स्वर्णमान के परित्याग के लगभग 6 माह के अन्दर ही मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग कर दिया गया और संरक्षण व साम्राज्यीय अधिमान की नीति को अपना लिया गया।

मन्दी के कुप्रभाव को दूर करने के लिए विदेशी व्यापार पर तरह-तरह के नियन्त्रण की नीति अपनाई गई। सन् 1931 में इसी उद्देश्य से "Abnormal Importations (Customs Duties) Act" पारित किया गया जिसके अनुसार 6 माह के लिए आयात की जाने वाली वस्तुओ पर एक आयात कर लगाया गया। बाद में 1931 मे "Horticultural Products (Emergency Customs Duties) Act" स्वीकृत हुआ जो 12 माह के लिए बनाया गया। इन दोनो विधानो मे कुछ वस्तुओ पर 100 प्रतिशत तक आयात कर लगाने की व्यवस्था की गई।

उक्त दोनों ही अल्पकालीन विधान सन् 1932 में समाप्त कर दिए गए जबकि आयात कर अधिनियम 1932 (Import Duties Act, 1932) स्वीकृत हुआ।

इस अधिनियम के अनुसार, जो मार्च, 1932 से लागू हुआ, सभी विदेशी वस्तुओं पर 10 प्रतिशत आयात कर लगाया गया जिसे बाद में बढाकर 20 प्रतिशत कर दिया गया। कुछ खाद्य पदार्थों और कच्चे माल पर आयात कर नहीं लगाया गया। आयात कर के सम्बन्ध मे परामर्श देने के लिए एक 'आयात कर परामर्शदाता समिति' (Import Duties Advisory Committee) बनाई गई। इस समिति के सुझावो पर कई वस्तुओ पर कर बढाए गए। सरक्षण प्रदान करने के लिए एक स्थाई प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission) सगठित किया गया।

अप्रेल, 1932 में आयातकर परामर्शदाता समिति को किसी भी वस्तु को कर मुक्त वस्तुओ की सूची मे से सरक्षित वस्तुओ की सूची मे सम्मिलित करने तथा उस पर कर लगाने का अधिकार दिया गया।

(3) साम्राज्य अधिमान की नीति

सन् 1932 मे ओटावा (Ottawa) में साम्राज्यीय देशों का एक आर्थिक सम्मेलन (Economic Conference) हुआ जिसमे साम्राज्य के देशो के साथ व्यापार बढाने के उद्देश्य से ब्रिटेन ने उनके आयात पर निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान की—

(1) सभी साम्राज्य के देशो की वस्तुओ पर ब्रिटेन मे कोई तटकर नहीं लगाया जाएगा,

(2) कुछ विशिष्ट विदेशी वस्तुओं पर तत्कालीन अधिमान की सीमा 10 प्रतिशत रखी गई, तथा

(3) साम्राज्यीय देशो को अन्य वस्तुओं पर अधिक अधिमान की सुविधा दी गई। इन सुविधाओ के बदले मे साम्राज्यीय देशो ने भी रासायनिक पदार्थ, सूती वस्त्र तथा ऊन आदि की निर्मित वस्तुओ को अधिमान देना स्वीकार किया।

साम्राज्यीय अधिमान (Imperial Preference) के उक्त समझौते से ब्रिटिश व्यापार मे तो वृद्धि हुई, लेकिन उपनिवेशो को विशेष लाभ नहीं हुआ। इसी कारण भारत आदि देशो में ओटावा समझौते का विरोध किया गया, लेकिन फिर भी साम्राज्यीय अधिमान की नीति जारी रखी गई। वर्तमान समय में भी अपने परिवर्तित रूप मे यह नीति जारी है, किन्तु अब इसे साम्राज्यीय अधिमान (Imperial Preference) न कह कर राष्ट्र-मण्डलीय अधिमान कहते हैं।

ब्रिटेन द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक सरक्षण नीति (Protection Policy) के मार्ग पर चलता रहा और साम्राज्य अधिमान की शर्तों को भी मानता रहा। फिर भी आवश्यकतानुसार समय-समय पर सन् 1932 से 1939 के मध्य कई देशो में द्विपक्षीय समझौते करके सरक्षण नीति में सुधार किया जाता रहा। उदाहरणार्थ, सन 1938 मे सयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा के बीच द्विपक्षीय व्यापारिक समझौता किया गया।

(4) मौद्रिक नीति में परिवर्तन

ब्रिटिश सरकार ने आर्थिक मन्दी के कुप्रभावों को दूर करने के लिए अपनी

मौद्रिक नीति मे भी कुछ परिवर्तन किए। राजकीय व्यय और घाटे की वित्त व्यवस्था को महत्त्व देते हुए सरकार ने सर्वप्रथम 'सस्ती मुद्रा नीति' (Cheap Money Policy) अपनाई। इस नीति के अनुपालन में बैंक दर घटा कर 2½ प्रतिशत कर दी गई। युद्ध सम्बन्धी ऋण की ब्याज दर भी 5 प्रतिशत से कम करके 3½ प्रतिशत कर दी गई। इस कदम से दीर्घकालीन विनियोगो पर ब्याज-दर कम हो गई।

सस्ती मुद्रा नीति अपनाने और बैंक दर में इतनी कमी कर देने के बावजूद व्यक्तिगत विनियोग मे कोई उल्लेखनीय वृद्धि नही हुई। फिर भी निम्न ब्याज दर के कारण राष्ट्रीय ऋण के ब्याज मे भारी कमी हो गई। सरकार ने कुछ करो में भी कमी की और महत्त्वपूर्ण उद्योगो को आर्थिक सहायता देना शुरू किया। फलस्वरूप सूती वस्त्र, कोयला, जलपोत निर्माण आदि के उद्योगो के पुनर्निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

(5) विनिमय समानीकरण कोष की स्थापना

विदेशी विनिमय की स्थिरता की मात्रा को न्यूनतम बनाए रखने के लिए सन् 1932 मे एक विनिमय समानीकरण कोष की स्थापना की गई। साउथगेट के अनुसार—"इस कोष का कार्य अस्थाई परिवतनो मे स्थिरता लाने तक सीमित था वृहत्तर परिवर्तनो से सम्बद्ध कार्य का दायित्व इस पर नही था।" सन् 1933 में इस कोष की धनराशि 3,500 लाख पौण्ड तक और 1937 मे 5,500 लाख पौण्ड तक बढा दी गई। 1938 मे कोष को भारी हानि उठानी पडी। सन् 1939 में बैंक ऑफ इंग्लैण्ड के सचय से 2,000 लाख पौण्ड स्वर्ण की वृद्धि करके इसकी स्थिति सुदृढ़ की गई।

(6) कृषि नीति

प्रथम महायुद्ध के बाद ब्रिटिश कृषि क्षेत्र मे मन्दी आ गई। कृषि की दशा बिगडने लगी। स्थिति को सुधारने के लिए सन् 1923 में लगान मे कमी करदी गई। सन् 1924 मे कृषि मजदूरी नियमन अधिनियम (Agricultural Wages Act, 1964) पारित किया गया जिसका उद्देश्य कृषि श्रमिको का वेतन निश्चित करना था। सन् 1925 से सरकार गन्ना उत्पादन पर भी वित्तीय सहायता देने लगी, लेकिन यह सभी सरकारी कदम कृषि क्षेत्र मे विशेष सहायक नही हो सके। सन् 1928 में एक दूसरा कृषि साख नियम पास हुआ जिसके द्वारा उचित ब्याज पर लम्बी अवधि के लिए ऋण देने की व्यवस्था की गई। कृषि उपज के लिए विपणन (Marketing) की समुचित व्यवस्था के लिए भी अनेक कदम उठाए गए, किन्तु ब्रिटिश कृषि की दशा गिरती गई और सन् 1931 मे तो वह विश्व-व्यापी मन्दी के चक्कर में बुरी तरह फस गई।

सरकार द्वारा सन् 1931 मे कृषि विपणन अधिनियम (Agricultural Marketing Act, 1931) बनाया गया जिसके अनुसार विभिन्न पदार्थों के क्रय-विक्रय, उत्पादन और मूल्य निश्चित करने के लिए विपणन बोर्डों के स्थापित किए जाने की व्यवस्था की गई। कृषि अवस्था को समालने के लिए सन् 1931 से ही सरकार ने स्वतन्त्र व्यापार नीति का परित्याग करके संरक्षण की नीति ग्रहण की।

संरक्षणात्मक नीति के अन्तर्गत दो प्रकार के अधिनियम स्वीकार किए गए— विशिष्ट प्रकार की एव साधारण कृषि उत्पादन से सम्बन्धित। विशिष्ट अधिनियमों में 1932 का गेहूँ अधिनियम (Wheat Act 1932) उल्लेखनीय है। इसके अनुसार गेहूँ आयोग की नियुक्ति की गई। गेहूँ को सरक्षण देने के लिए आटे पर कर लगाकर रकम प्राप्त की जाने लगी। यह अधिनियम अत्यधिक आलोचना का पात्र बना। साधारण नियमो के अन्तर्गत 1931 का कृषि बाजार अधिनियम उल्लेखनीय है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। 1931 के इस अधिनियम को 1933 मे पुन सशोधित किया गया।

इन दोनो विपणन अथवा बाजार अधिनियमो (Marketing Acts) ने जो सरक्षण किसानों को प्रदान किया वह 1932 के आयात कर अधिनियम द्वारा पुष्ट किया गया। इस आयात कर अधिनियम द्वारा—(क) आयातों पर प्रतिबन्ध लगाया गया (ख) विदेशो द्वारा ब्रिटिश माल के प्रति भेदभाव करने का समाधान बताया गया, एव (ग) सरकारी आय में वृद्धि करदी गई। इस अधिनियम से किसानो को यद्यपि बहुत अधिक लाभ हुआ तथापि उन्हे कृषि यन्त्र और रासायनिक खाद पर अधिक कर भी देने पडे।

कृषि पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए कृषको को सरकार द्वारा धन के रूप मे सहायता भी दी जाने लगी। सन 1937 में एक कृषि अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार आर्थिक सहायता प्राप्त गेहूँ की राशि को 27 मि० क्वार्टर से बढाकर 36 मि० क्वार्टर कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत जौ के उत्पादन को भी एक प्रामाणिक मूल्य की सहायता का आश्वासन दिया गया।

उपरोक्त सभी प्रयत्नो के फलस्वरूप ब्रिटिश कृषि की दशा मे पर्याप्त सुधार हो गए और कृषि पदार्थों के मूल्य कुछ बढ गए बेकार पडी जमीन भी पर्याप्त रूप से कृषि के अन्तर्गत आ गई।

(7) औद्योगिक नीति

सरक्षणवादी नीति द्वारा तो उद्योगों को कुछ राहत दी ही गई, निर्यात-उद्योगो को भी सरकार ने प्रत्यक्ष अनुदान देकर तथा उनके कच्चे माल की पूर्ति की समुचित व्यवस्था करके प्रोत्साहित किया। छोटी छोटी औद्योगिक इकाइयो के सयोगीकरण (Combination) की नीति अपनाई गई। 1927 में फ्रांस जर्मनी, बेल्जियम और लक्जमबर्ग ने एक अन्तर्राष्ट्रीय इस्पात कार्टेल (International Steel Cartel) की स्थापना करके ब्रिटिश इस्पात उद्योग को सकट मे डाल दिया। अत 1932 मे ब्रिटिश लोहा एव इस्पात उद्योग को संरक्षण देना पडा। लोहे के आयात पर कर लगाया गया तथा छोटे-छोटे इस्पात-उत्पादको को मिलाकर 12 बडे निगम स्थापित किए गए। इन प्रयत्नो का उद्देश्य इस्पात उद्योगो का पुनर्संगठन करके उसके हितों की रक्षा करना था। लेकिन कोई विशेष सफलता न मिलने पर 1935 में यूरोपीय इस्पात कार्टेल से समझौता करना पडा ताकि कठोर प्रतियोगिता से बचाव का रास्ता निकाला जा सके। कोयला उद्योग की दशा सुधारने के लिए 1930 में

एक अधिनियम के अन्तर्गत इसके पुनर्सगठन का मार्ग प्रशस्त किया गया। छोटी-छोटी खानो को मिलाकर बडे आकार की कोयला कम्पनियाँ स्थापित करने के उद्देश्य से एक विशेष आयोग की भी स्थापना की गई जिसे विरोध के कारण 1935 मे अपना काम बन्द कर देना पडा। 1937 मे द्वितीय कोयला खान अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के आधार पर ही कोयला उद्योग का पुनर्गठन सम्भव हुआ। एक हजार से भी अधिक कोयला उत्पादक इकाइयो को लगभग 159 इकाइयो में सगठित कर दिया गया। कोयला खानो मे तकनीकी सुधार लाने के भी प्रयत्न किए गए। वस्त्रो के उत्पादन मे ब्रिटेन विशिष्टीकरण प्राप्त करके उत्तम किस्म के वस्त्रो के निर्यात मे वृद्धि के प्रयत्नो मे जुट गया जिसके सुपरिणाम भी निकले।

(8) यातायात-नीति

महान आर्थिक मन्दी के दौरान यातायात के सभी साधनो को घाटे और सकट का सामना करना पडा। केवल रेलो की आय मे ही 1931-32 में लगभग 142 लाख पौण्ड की कमी हुई। रेल-सडक प्रतिस्पर्द्धा के कारण रेलो को नुकसान पहुँचने लगा। अत 1933 मे सडक एव रेल ट्रैफिक एक्ट पास किया गया जिससे उचित किराया दर-निर्धारण सम्भव हुआ। एक अन्य कानून द्वारा सडक-माल-परिवहन के साधनो पर प्रतिबन्ध लगाया गया। फलस्वरूप रेलो और सडको के बीच प्रतियोगिता कुछ कम हुई। 1936 मे ट्रक-रोड-अधिनियम के अन्तर्गत प्रमुख सडक मार्गों को सरकारी नियन्त्रण मे ले लिया गया। इन सब उपायो से यातायात की स्थिति में सुधार होने लगा। आर्थिक मन्दी के कारण जहाजी कम्पनियो की आय गिर गई और जहाज-निर्माण-उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पडने से इसमे लगे मजदूरो की छँटनी की जाने लगी जिससे बेरोजगारी बढी। अत इस स्थिति को समाप्त करने के लिए 1935 में सरकार ने जहाजी कम्पनियो को आर्थिक अनुदान देने की नीति अपनाई।

(9) बेरोजगारी बीमा-योजना

ब्रिटेन में बेरोजगारी के सम्बन्ध में विचार 1873 के बाद मन्दी के समय से ही होता रहा था। पर इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम 1911 मे उठाया गया जब कि राष्ट्रीय बीमा अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य और बेकारी सम्बन्धी योजनाएँ लागू की गई। इस बेरोजगारी बीमा योजना के अन्तर्गत श्रमिको और नियोक्ताओ को समान रूप से दान देना पडता था और राज्य कुल व्यय का $\frac{1}{4}$ भाग वहन करता था। प्रथम महायुद्ध काल मे बेकारी घटने से इस योजना को काफी सफलता मिली और बीमा-कोष में पर्याप्त धन-राशि जमा हो गई। बेकारी बीमा-योजना के क्षेत्र को धीरे-धीरे विस्तृत कर दिया गया और आश्रित लोगो पर भी इसे लागू किया गया। लाभ की मात्रा भी बढ़ा दी गई।

महान आर्थिक मन्दी के समय इस योजना की प्रगति रुक गई और बेकारी बढने से लाभ प्राप्त करने वालों की सख्या बढती गई। फलस्वरूप आर्थिक सहायता ऋण लेकर दी गई। साथ ही अतिरिक्त चन्दे की दरें बढा दी गई और लाभ की मात्रा घटा दी गई। सन् 1931 मे योजना की जांच के लिए एक शाही आयोग

(Royal Commission) नियुक्त किया गया। इस आयोग की सिफारिशो पर सन् 1934 में इस योजना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। सहायता देने के लिए एक "बेरोजगार सहायता मण्डल" (Unemployment Assistance Board) संगठित किया गया जिसका आर्थिक दायित्व सरकार पर था। लाभ की कमी को पूरा किया गया और चन्दे की दरें भी घटा कर पहले के समान कर दी गईं। सन् 1936 में इस योजना को कृषि श्रमिको पर भी लागू कर दिया गया। 1939 मे बीमाकृत व्यक्तियों की संख्या बढ कर लगभग 140 लाख हो गई। अगले वर्ष वृद्धावस्था पेंशन और विधवा पेंशन बेकार व्यक्तियो के क्षेत्र तक बढ़ा दी गई। द्वितीय महायुद्ध काल मे *बेरोजगारी सहायता मण्डल (Unemployment Assistance Board)* का नाम बदल कर *'सहायता मण्डल'* कर दिया गया।

आर्थिक मन्दी से उद्धार पाने और पुनरुत्थान की दिशा मे तेजी से आगे बढने के लिए ब्रिटेन ने और भी अनेक छोटे-मोटे उपायो का सहारा लिया। देश की भीतरी परिस्थितियाँ भी अनुकूल सिद्ध हुईं। फलस्वरूप ब्रिटेन मे धीरे-धीरे मन्दी समाप्त होने लगी।

आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियों के प्रभाव
(Effects of the Policies of Economic Stabilization)

ब्रिटिश सरकार ने 1930 की भीषण आर्थिक मन्दी के दुष्प्रभावो को मिटाने के लिए आर्थिक स्थिरता सम्बन्धी जो नीति अपनाई, वे 1935 के बाद अपना वांछित फल दिखाने लगी। ब्रिटेन में आर्थिक पुनरुद्धार के लक्षण प्रकट होने लगे। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 1932 मे 88 से बढकर 1935 में 112, निर्यात के सूचकांक 50 से बढकर लगभग 59, रोजगार के सूचकांक 94 से बढकर 104, थोक मूल्यो मे सूचकांक 72 से बढकर 76 और सामान्य लाभ के सूचकांक 65 2 से बढकर 81 4 हो गए। 1936 मे इन सबके सूचकांक क्रमशः 121, 69, 108, 80, 98·8 हो गए। इन चुने हुए आर्थिक तत्वो के ये सूचकांक अग्रलिखित तालिका से अधिक स्पष्ट हो सकेंगे।

चुने हुए आर्थिक तत्त्वों के सूचकांक (1928=100)

	1932	1933	1934	1935	1936
औद्योगिक उत्पादन	88	94	115	112	121
रोजगार	94	97	100	~104	108
शुद्ध निर्यात	50	51	55	59	69
थोक मूल्य	72	72	75	76	80
सामान्य लाभ	56 2	60 9	68·2	81·4	98 8

इन सूचकांकों से प्रकट है कि ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति मे निश्चित रूप से सुधार हुआ। औद्योगिक उत्पादन और रोजगार की स्थिति तो मंदी-पूर्व के स्तर पर पहुँच गई। निर्यात के क्षेत्र मे वांछित वृद्धि नहीं हुई और पहले की अपेक्षा 1936 मे

भी निर्यात लगभग 21 प्रतिशत कम रहा। इसी प्रकार थोक मूल्य भी 1928 के मुकाबले लगभग 18 से 20 प्रतिशत कम रहे। सन् 1937 मे ब्रिटेन में आर्थिक गतिविधियाँ बहुत बढ गई। प्रति व्यक्ति उत्पादन बढा और गृहो का काफी निर्माण हुआ। बिजली उद्योग भी तेजी से पनपा तथा अनेक नये उद्योगो का विकास हुआ। किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी ब्रिटेन की पुनरुत्थान प्रक्रिया पूर्ण नही हुई। 1937 मे पुन मदी के लक्षण प्रकट होने लगे। इसके बाद ही द्वितीय महायुद्ध से सम्बन्धित तैयारियाँ की ओर तब द्वितीय महायुद्ध के विस्फोट ने ब्रिटेन को दबोच लिया।

यद्यपि तीसा के दशक में अपनाई गई आर्थिक नीतियो से ब्रिटेन का पुनरुत्थान पूर्ण नही हो सका, फिर भी अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे सुधार निश्चित रूप से हुआ। सुधार की स्थिति का अनुमान उपर्युक्त सूचकांको से लग जाता है, तथापि अधिक खुलासा रूप मे इसे हम यो प्रकट कर सकते हैं—

औद्योगिक क्षेत्रों में सुधार—आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियो के फलस्वरूप ब्रिटेन की औद्योगिक स्थिति मे पर्याप्त सुधार हुआ। आधारभूत उद्योगों का विकास हुआ और मूल्यों मे वृद्धि होने से उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। 1928 मे उत्पादन-सूचकांक को 100 मानते हुए 1932 मे जो सूचकांक केवल 84 रह गया था वह 1934 मे अपने आधार वर्ष को पार कर गया और 1936 में 121 तक जा पहुँचा। इस प्रकार केवल चार वर्ष की अल्प अवधि में ही कुल औद्योगिक उत्पादन मे लगभग 37 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

निर्यात व्यापार का विकास—स्वर्णमान के परित्याग, पौंड-स्टर्लिंग के अवमूल्यन, सरक्षण और साम्राज्यीय अधिमान की नीति अपनाने के फलस्वरूप ब्रिटिश निर्यात मे सुधार हुआ। ब्रिटेन राष्ट्र मडलीय देशों और उपनिवेशों में विदेशी प्रतियोगिता को दूर करने मे बहुत कुछ सफल हुआ जिससे ब्रिटेन का व्यापारिक संतुलन उसके पक्ष मे होने लगा। 1928 के आधार वर्ष पर 1932 में जहाँ शुद्ध निर्यात का सूचकांक 50 तक पहुँच गया था, वहाँ यह बढकर 1934 में 55, 1935 में 59 मे और 1936 69 हो गया। यद्यपि मंदी-पूर्व स्थिति की तुलना मे निर्यात लगभग 31 प्रतिशत कम था, तो भी मदी के उपरान्त की गई यह वृद्धि निराशाजनक नहीं थी।

रोजगार की स्थिति में सुधार—मदी के दुष्प्रभावो दूर करने के लिए जो कदम उठाए गए उनसे रोजगार के अवसरो में पर्याप्त वृद्धि हुई। नए उद्योगो के विकसित होने और पुराने उद्योगो के पुन समृद्ध होने से बेरोजगारो को बढी सख्या मे काम मिला। फलस्वरूप 1932 मे रोजगार का सूचकांक 94 से बढकर 1936 मे 108 हो गया अर्थात् 1928 के आधार-वर्ष से भी 8 ऊँचा पहुँच गया। रोजगार की स्थिति में यह सुधार उत्साहजनक था। प्राविधिक सुधारो के कारण श्रम की कुशलता भी बढी। राष्ट्रीय उत्पादन और रोजगार को बढाने के उद्देश्य से जो सस्ती मुद्रा नीति अपनाई गई, उसका वस्तुत बडा अच्छा परिणाम निकला।

कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन—कृषि क्षेत्र में भी सुधार हुआ तथा कृषि उत्पादन बढा। किसानो की दशा सुधारने के लिए सरकार द्वारा कृषि उत्पादनों के लिए

न्यूनतम मूल्य की गारटी दी गई जिसके अन्तर्गत विदेशी आयात के कारण बाजार मूल्य कम होने पर किसानो को क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था की गई । इस कदम से ब्रिटिश कृषि-उत्पादन को प्रोत्साहन मिला।

मूल्य-स्तर मे सुधार—आर्थिक नीतिया मूल्य स्तर के क्षेत्र मे भी सुपरिणाम लाई । 1928 के आधार-वर्ष पर 1932 मे थोक मूल्यो का सूचकांक केवल 72 रह गया था जो सुधरते हुए 1934 में 75, 1935 मे 76, और 1936 मे 80 पर आ पहुंचा। यद्यपि मूल्य-स्तर पर यह प्रभाव बहुत मद था, तथापि इससे अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे सुधार की गति को बल अवश्य मिला।

सामान्य लाभ का ऊँचा होना—आर्थिक मन्दी मे व्यापारियो उद्योगपतियो आदि को भारी हानि उठानी पडी क्योकि उत्पादित वस्तुओ के मूल्य बहुत गिर गए। 1928 के आधार वर्ष पर ब्रिटेन मे सामान्य लाभ का सूचकांक केवल 65 रह गया। यह स्थिति बहुत चिन्ताजनक थी। 1933 मे हालत तब और बिगड गई जब यह सूचकांक निम्नतम स्तर 60 9 पर आ गया। सरकार द्वारा मौद्रिक नीति मे परिवतन के फलस्वरूप और अन्य अनुकूल परिस्थितियो के प्रभाव-स्वरूप लाभ के सूचकांको मे वृद्धि होने लगी। 1934 मे सामान्य लाभ का सूचकांक 68 2, 1935 में 81 4 और 1936 में 98 8 पर पहुंच गया। इस प्रकार सामान्य लाभ का स्तर लगभग वही हो गया जो मन्दी से पहले था।

अन्य प्रभाव—मन्दी काल में अपनाई गई नवीन नीतियो के कुछ और भी अनुकूल प्रभाव पडे—(1) ब्रिटिश कारखानो के उत्पादनो को प्राथमिकता मिलने से उनकी दशा मे सुधार हुआ, (2) ब्रिटिश सार्वजनिक क्षेत्र को कुछ मान्यता मिली क्योंकि 1926 के बाद केन्द्रीय विद्युत बोर्ड, दी लन्दन ट्रांसपोर्ट बोर्ड और ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन का सार्वजनिक क्षेत्र में गठन किया गया, (3) लगभग 30 लाख भवनों और आवास गृहो का निर्माण-कार्य चलाया गया जिससे श्रमिको को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए, (4) उद्योगो के एकीकरण और संयोगीकरण की नीति से एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ प्रोत्साहित हुई, (5) राजकीय सरक्षण तथा उचित नियन्त्रण एव हस्तक्षेप की नीति की उपयोगिता बढ गई (6) कार्यशील जनसंख्या की क्षेत्रीय गतिशीलता बढी, एव (7) कुछ नवीन उद्योग अस्तित्व में आए, जैसे विद्युत उपकरण, कृत्रिम रेशा उद्योग, स्टेशनरी-वस्तु उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग आदि।

आर्थिक मन्दी के दुष्प्रभावो को दूर करने और देश में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए सरकार ने जिन विभिन्न नीतियों का आश्रय लिया उनसे ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था पतन के गढ्ढे से ऊपर निकल आई। यदि द्वितीय महायुद्ध की तैयारियो में ब्रिटेन को न फँसना पडता और बाद में महायुद्ध के काल में जर्मनी की पलायनकारी बम वर्षा से हुए भीषण विनाश को न झेलना पडता तो ब्रिटेन आर्थिक विकास के क्षेत्र में बहुत तेजी से आगे बढ जाता। दुर्भाग्यवश महायुद्ध के विस्फोट ने ब्रिटेन की आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियो के प्रभाव को धूमिल बना दिया।

4

पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन

(Planning for Full Employment)

"युद्धोत्तर अवधि मे उच्च एव स्थायी रोजगार-स्तर कायम रखना सरकार का प्राथमिक उद्देश्य और उत्तरदायित्व है।"

—ब्रिटिश व्हाइट पेपर

बेरोजगार पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का एक बहुत बडा अभिशाप है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था शान्तिकाल मे प्राय सभी व्यक्तियो को रोजगार प्रदान करने मे असमर्थ रहती है जबकि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था शान्ति पूर्ण समय में भी सभी लोगो को रोजगार प्रदान कर सकती है। मुख्यत द्वितीय महायुद्ध के बाद से ब्रिटेन, अमेरिका आदि पूँजीवादी देशो मे भी इसलिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया जाने लगा है ताकि पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त की जा सके।

पूर्ण रोजगार का अर्थ

प्रश्न उठता है कि पूर्ण रोजगार से वास्तविक आशय क्या है? पूर्ण रोजगार का अभिप्राय उस अवस्था से नही होता जिसमें देश के सभी स्वस्थ और क्षमतावान व्यक्तियो को रोजगार मिल जाए। पूर्ण रोजगार का आशय देश मे अनैच्छिक बेरोजगारी के अभाव से होता है, क्योकि स्वेच्छिक बेरोजगारी तो कुछ अश में रहती ही है। प्रत्येक देश मे कुछ न कुछ ऐसे लोग होते हैं जो स्वेच्छा या आलस्य के कारण प्रचलित मजदूरी की दरो पर काम करना पसन्द नही करते। इसके अतिरिक्त कुछ अश तक सघर्षात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment) भी सम्भव है। अर्थ-शास्त्रियो का विचार है कि प्राय हर एक अर्थ व्यवस्था मे 3 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक सघर्षात्मक बेरोजगारी अवश्य होती है।

अभिप्राय यह हुआ कि पूर्ण रोजगार का मतलब देशवासियो को शतप्रतिशत रोजगार से नही होता। पूर्ण रोजगार की दशा में भी 95 से 97 प्रतिशत लोगो को ही रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओ मे पूर्ण रोजगार के लिए आर्थिक नियोजन का उद्देश्य रोजगार के क्षेत्र में इसी लक्ष्य को प्राप्त करना है। पूर्ण रोजगार की दशा प्राप्त करने के लिए देश में प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि करना आवश्यक माना गया है। इसके लिए मुख्यत दो उपायो का आश्रम लिया जाता है—देश के उपभोग को प्रोत्साहित किया जाय तथा देश के निवेश की मात्रा को बढाया जाए।

पूर्ण रोजगार का अर्थ समझने के उपरान्त अब हम ब्रिटेन मे पूर्ण रोजगार के लिए जो नियोजन अपनाया गया है उसकी चर्चा करेगे।

ब्रिटेन में पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन
(Planning for Full Employment in Britain)

ब्रिटेन मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है। वहाँ सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनो का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही ब्रिटेन मे यह अनुभव किया जाने लगा है कि देश की आर्थिक प्रगति का सही मूल्यांकन करने, आर्थिक विकास की दर को बढाने तथा पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त करने के उद्देश्य से आर्थिक नियोजन का सहारा लेना देश के लिए हितकर होगा। यह अनुभूति विशेषत ब्रिटेन के श्रमिक दल मे हुई, किन्तु अब ब्रिटेन के अधिकांश राजनीतिक क्षेत्रो मे इस विचार ने अपनी जड जमा ली है।

ब्रिटिश आर्थिक नियोजन का वर्णन करने से पूर्व यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन किन्ही गम्भीर सिद्धान्तो पर आधारित नही है बल्कि युद्धोत्तर आर्थिक कठिनाइयो का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के लिए इसे अपनाया गया है। अभी इसका उपयोग अधिकांशत. प्रयोगात्मक ही है। प्रो० लेविस के अनुसार—"विभिन्नता, विरोधाभास, सशय, कठोरता अन्धकार आदि के रूप मे यह ब्रिटिश नियोजन अमेरिका के न्यू डील से मेल खाता है। यहाँ समाजवादी रूपरेखा की कोई सुविचारित और सुनिर्मित योजना नही है बल्कि यह नियोजन तो एक प्रकार से उच्च-स्तर का प्रजातान्त्रिक तालमेल है।" युद्ध की विषम आर्थिक परिस्थितियो ने ही ब्रिटेन मे सरकार द्वारा नियन्त्रण और नियमन की नीति को प्रोत्साहित किया है। 70988

इंगलैण्ड में पूर्ण रोजगार नीति का सूत्रपात और रोजगार नीति पर श्वेत पत्र (1944) की मुख्य विशेषताएं

यद्यपि अमेरिका के समान ही इग्लैण्ड मे भी तीसा की आर्थिक मन्दी के समय से ही बेरोजगार व्यक्तियो को रोजगार देने के लिए कदम उठाए जाने लगे, लेकिन रोजगार नीति का वास्तविक सूत्रपात द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के लगभग ही हुआ। युद्धोत्तरकालीन मन्दी और गम्भीर बेरोजगारी के खतरे का सामना करने के लिए तत्कालीन सयुक्त सरकार (Coalition Govt) ने 1944 में ही एक रोजगार नीति सम्बन्धी श्वेत पत्र (White Paper on Employment Policy 1944) जारी किया, जिसमे इस बात का सकेत दिया गया कि सरकार सम्भावित बेरोजगारी और मन्दी की समस्या का समाधान करने के लिए तथा दीर्घकालीन रोजगार-स्थायित्व के लिए किन नीतियो और प्रयत्नो का आश्रय लेगी। इस प्रकार वास्तव मे रोजगार सम्बन्धी आर्थिक नियोजन की शुरूआत तो इस श्वेत-पत्र से ही हो गई, यद्यपि क्रियान्वयन आगे चलकर हुआ।

रोजगार नीति पर जो श्वेत पत्र 1944 मे प्रकाशित किया गया उसमें रोजगार-नीति के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यो पर बल दिया गया—

(1) युद्धोत्तरकालीन बेरोजगारी की समस्या का समाधान,
(2) उत्पादन तथा उत्पादकता के उच्चस्तर की प्राप्ति के लिए सगठन और साधनो मे समन्वयात्मक कुशलता की वृद्धि,
(3) आर्थिक मन्दी के दुष्प्रभावो से छुटकारा पाने के लिए समाज मे व्याप्त आर्थिक विषमताओ को दूर करने की दिशा मे प्रयत्न और आर्थिक समानता के मार्ग को प्रशस्त करना,
(4) राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से आर्थिक एव राजनीतिक सुदृढता और स्थिरता की समुचित व्यवस्था, एव
(5) दीर्घकालीन रोजगार-स्थायित्व तथा आर्थिक स्थायित्व के लिए प्रयत्न करना ताकि कल्याणकारी राज्य के निर्माण की दिशा मे आगे बढा जा सके।

ब्रिटिश सरकार ने रोजगार-नीति के उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए श्वेत पत्र मे रोजगार नीति के कुछ मूल तत्त्वो का समावेश किया। ये मूल तत्त्व सक्षेप मे इस प्रकार थे--

(1) च कि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था काफी सीमा तक निर्यात व्यापार पर निर्भर है अत रोजगार के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए देश की आन्तरिक माँग के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय माँग मे वृद्धि वा प्रयत्न किया जावे। निर्यात के नये बाजार खोजे जाएँ, विदेशी व्यापार का विकास किया जाए और विभिन्न देशो से सक्रिय आर्थिक सहयोग बढाया जाए।

(2) रोजगार के उच्च एव स्थाई स्तर को बनाए रखने के लिए सुदृढ औद्योगिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया जाए। इसके लिए उद्योगो का तेजी से विकास किया जाए और उत्पादन मे विविधता लाई जाए। उत्पादन को इस रूप मे सुधारा जाए कि विदेशी बाजारो मे खपत बढे, देश की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति का विकास हो। श्रमिको की उत्पादकता और कुशलता को बढाया जाए। देश की आन्तरिक माँग मे वृद्धि द्वारा रोजगार के स्तर को उठाने का प्रयत्न किया जाए।

(3) उद्योगो और श्रमिको का सन्तुलित वितरण हो सके--इस दिशा में प्रयास किए जाएँ। इसके लिए श्रमिको की गतिशीलता मे वृद्धि की जाए उनकी गतिशीलता मे बाधक तत्त्वो को दूर किया जाए, श्रमिको के प्रशिक्षण सुविधाओ मे सुधार और विस्तार किया जाए, क्षेत्रीय विषमताओ को दूर किया जाए और नये उद्योगो की स्थापना इस रूप मे की जाए कि अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे औद्योगिक सरचना का विविधीकरण हो सके।

(4) रोजगार मे उच्च और स्थाई स्तर की सामान्य शर्तों की पूर्ति के प्रयास किए जाएँ। इस दृष्टि से कुल व्यय का उच्च-स्तर कायम रखा जाए, मूल्य और मजदूरी मे स्थायित्व लाया जाए, श्रम को अधिकाधिक गतिशील बनाया जाए और इसी प्रकार के अन्य आवश्यक कदम उठाए जाएँ।

युद्धोत्तरकाल में रोजगार नीति आर्थिक नियोजन को अपनाना

1945 में युद्ध समाप्त होने पर इंगलैण्ड में मन्दी और बेरोजगारी की समस्याएं तो पैदा नहीं हुई बल्कि आशा के विपरीत मुद्रा-स्फीति, मूल्य-वृद्धि और वस्तुओं की असाधारण कमी देश को परेशान करने लगी। इन समस्याओं से अर्थ-व्यवस्था में गम्भीर संकट पैदा हो गया। ऐसे समय ब्रिटन में मजदूर दल की सरकार बनी जिनसे ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में नियोजन के तत्त्वों को सक्रिय होने का मौका मिला। प्रारम्भ में मजदूर दलीय सरकार ने प्रभावी नियन्त्रणों की नीति अपनाई। लेकिन 1946 तथा 1947 के प्रारम्भ तक उपर्युक्त आर्थिक समस्याओं का प्रयोग बढ़ता ही गया।

नियन्त्रणों की नीति का कोई वांछित फल न निकलते देखकर मजदूर दलीय सरकार ने देश की आर्थिक समृद्धि सीमित साधनों के समुचित उपयोग, बाजार तन्त्र पर नियन्त्रण तथा आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया। 1947 में प्रथम आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey) जारी किया जिसके अनुसार आर्थिक नियोजन का उद्देश्य ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में विभिन्न उपायों से संतुलन स्थापित करना रखा गया। यह कहा गया कि सरकार ऐसी व्यवस्था करेगी जिससे उपलब्ध साधनों को राष्ट्र के अधिकतम हित के लिए उपयोग में लाया जा सके तथा साधनों व आवश्यकताओं के अन्तराल को पाटा जा सके। यह भी निश्चय किया गया कि साधनों के वितरण को बाजार तन्त्र पर न छोड़कर उनके उपयोग में साम्य लाया जाए। इसके अतिरिक्त नियोजन का उद्देश्य उत्पादन में वृद्धि, पूर्ण रोजगार, आर्थिक स्थायित्व तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करना था।

सन् 1951 तक मजदूर दलीय सरकार ने पूर्ण आर्थिक नियोजन न अपनाकर आंशिक नियोजन-पद्धति को ही अपनाया। इस प्रकार ब्रिटिश नियोजन साम्यवादी रूस के नियोजन की तरह नहीं बरन् एक प्रकार से मौद्रिक, प्रशासनिक तथा राजकोषीय नियन्त्रण मात्र था जिसमें कुछ आर्थिक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप बढ़ गया था। आंशिक नियोजन के मार्ग पर चलते हुए 1946 व 1947 में कुछ उद्योगों और सेवाओं का राष्ट्रीयकरण भी किया गया। वास्तव में यह कहना उपयुक्त होगा कि ब्रिटन में प्रोत्साहन नियोजन (Planning by Inducement) अपनाया गया। 1945 से 1951 के बीच सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया तथा मौद्रिक और राजकोषीय नियन्त्रण की अधिक प्रभावशाली स्थापना की गई। सामाजिक सुरक्षा कार्यों को अधिक प्रोत्साहन दिया गया।

आलोचकों के अनुसार श्रम-दलीय सरकार द्वारा अपनाया गया यह नियोजन वास्तव में कोई नियोजन न होकर एक दिखावा था। यह नियोजन का एक बहाना मात्र था। जो भी नियन्त्रण स्थापित किया गया वह सीमित और असम्भावित था तथा अल्पकालीन उद्देश्यों से प्रेरित था। सरकारी हस्तक्षेप का रूप और उद्देश्य इस प्रकार का था कि अर्थ-व्यवस्था को वांछित दिशाओं में प्रभावित करने में राज्य निजी व्यक्तियों को प्रोत्साहित कर सके। सर्वे (Survey) एक प्रकार का अनुमान पत्रक था जिसमें

वाँछित कठोरता और परिपालन की अनिवार्यता का अभाव था। कोई निश्चित और सुनियोजित नीति नहीं थी और सरकार आंशिक नियोजन के क्षेत्र में भी शिथिल थी। सर्वे कोई ब्ल्यू-प्रिन्ट नहीं था बल्कि सरकार और निजी उद्योगों के भावी विकास का मार्ग-निर्देशक पट्ट मात्र था। इस नियोजन के कार्यक्रम सन्दिग्ध थे जिनमे निश्चयता और दृढता नहीं थी। कुछ आशाएँ की गई थी जिनकी पूर्ति का ठोस निश्चय नहीं था।

अनुदार दल (1951-64) द्वारा नियोजन के प्रति उपेक्षा

सन् 1951 के चुनावों मे श्रमिक दल पराजित हुआ और नवम्बर मे अनुदार दल (Conservative Party) ने सत्ता सम्भाली। नई सरकार ने आर्थिक नियोजन को तिलाजलि दे दी। अर्थ व्यवस्था मन्द गति से आगे बढती रही और आगे चलकर विभिन्न आर्थिक समस्याओ ने सम्पूर्ण ब्रिटिश अर्थतन्त्र को बिगाड दिया। भुगतान-सन्तुलन की समस्या विकट हो गई। औद्योगिक प्रबन्ध मे नये दोष घुस गए। श्रमिक-सघो की सरचना दोषपूर्ण होती गई, मूल्यों में काफी वृद्धि हो गई और क्षेत्रीय बेरोजगारी की समस्या विषम होती गई। 1963 में इंग्लैण्ड मे लगभग 4½ प्रतिशत से लेकर 7 प्रतिशत तक व्यक्ति बेरोजगारी से पीडित हो गए। कुछ स्थानो मे तो बेरोजगारी का प्रतिशत सम्भवत और भी अधिक था।

देश की बिगडती हुई आर्थिक परिस्थितियो ने अनुदार दलीय सरकार को चिन्तित कर दिया और अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अङ्गों के विकास के लिए अल्पकालीन विभागीय योजनाएँ बनाई जाने लगी।

राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् (National Economic Deve opment Council)—सर्वप्रथम जुलाई, 1961 मे सरकारी स्तर पर अर्थ मन्त्री लॉयड ने एक केन्द्रीय नियोजन सगठन बनाने का सुझाव दिया। अत फरवरी सन् 1962 मे राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् की स्थापना की गई जिसकी प्रथम बैठक 7 मार्च, 1962 को हुई। स्थापना के समय परिषद् के निम्नलिखित उद्देश्य घोषित किए गए—

(i) राष्ट्र के आर्थिक विकास की प्रगति का निरीक्षण करना

(ii) निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के भावी विकास मे बाधक तत्त्वो पर विचार करना तथा कार्य क्षमता वृद्धि और प्राकृतिक साधनो के समुचित उपयोग के लिए सुझाव देना।

(iii) आर्थिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करना।

राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् आज भी सक्रिय है। इसमें सरकार के, श्रमिक सघो के, उद्योगपतियो के और राष्ट्रीयकरण किए हुए उद्योगो के प्रतिनिधियो व अर्थ-शास्त्रियो को सदस्यता दी गई है। इस प्रकार वह वास्तव मे एक राष्ट्रीय परिषद् है। यह परिषद समय-समय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करती रहती हैं। जिसके अन्तर्गत ब्रिटेन की विभिन्न आर्थिक समस्याओ पर प्रकाश डाला जाता है। 1963 मे इसने एक प्रतिवेदन ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था के 1966 तक के विकास के सम्बन्ध मे और दूसरा प्रतिवेदन तीव्र-विकास की अनुकूल दशाओ के सम्बन्ध में प्रकाशित किया था। प्रथम प्रतिवेदन मे 17 प्रमुख ब्रिटिश उद्योगो के 1966 तक के लक्ष्य निर्धारित

किए गए थे और यह निश्चय व्यक्त किया गया था कि ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था 4% वार्षिक दर से विकास की ओर अग्रसर हो। द्वितीय प्रतिवेदन मे ब्रिटेन की विभिन्न समस्याओ के अध्ययन तथा सुधार के सुझावो का उल्लेख था।

पुन श्रमिक सरकार (1964) और आर्थिक नियोजन

लगभग 13 वर्षों के बाद अक्तूबर, 1964 में ब्रिटेन मे मजदूर दल की सरकार पुन बनी। मजदूर दलीय सरकार ने पुन आर्थिक नियोजन की नीति अपनाई और 1964–65 से 1969–70 तक की ब्रिटेन की प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया। मजदूर सरकार ने सत्तारूढ होने के 15 दिन बाद ही आयात को हतोत्साहित करने की दृष्टि से 15% का अतिरिक्त कर लगा दिया। इसके अलावा निर्यात बढाने के लिए विभिन्न कदम उठाए जाने लगे। दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था की गई तथा विदेशी बाजारो के अनुसन्धान के लिए एव व्यापारिक प्रतिनिधि मण्डलो को भेजने के लिए वित्तीय सहायता का प्रबन्ध किया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक रोजगार व्यवस्था

मजदूर सरकार के अधीन राष्ट्रीय विकास परिषद् ने ब्रिटेन की प्रथम पचवर्षीय योजना तैयार की जिसे सरकार द्वारा 16 सितम्बर, 1965 को श्वेत-पत्र के रूप मे प्रकाशित किया गया। इसमे राष्ट्रीय योजना के विभिन्न कार्यक्रमो, उद्देश्यो आदि का उल्लेख किया गया। यह लक्ष्य निर्धारित किया गया कि भावी पांच वर्षों मे राष्ट्रीय आय में 25% की वृद्धि की जाएगी तथा प्रति व्यक्ति आय में वार्षिक वृद्धि की दर 30% होगी। योजना का प्रमुख लक्ष्य पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त करना था। अत यह प्रावधान किया गया कि योजना की समाप्ति तक देश में बेरोजगारी की समस्या का पूरी तरह समाधान कर दिया जाएगा। इससे भी आगे बढकर यह आशका व्यक्त की गई कि योजना के अन्त तक सम्भवत दो लाख कुशल श्रमिको की कमी पड जाएगी।

यह अनुमान लगाया गया कि योजना के आर्थिक लक्ष्यो की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण योजना काल मे लगभग 8 लाख श्रमिको की माँग होगी जिसमें से 4 लाख श्रमिक तो जनसख्या की सामान्य वृद्धि से उपलब्ध हो जाएँगे, 2 लाख बेरोजगारो को काम देना होगा और शेष दो लाख की पूर्ति उत्पादकता मे वृद्धि करके की जाएगी।

ब्रिटेन की प्रथम पचवर्षीय योजना यद्यपि काफी सफल रही और बेरोजगारी औसत रूप में कुल कार्यशील जनसख्या के 2–3 प्रतिशत भाग से भी कम हो गई, तथापि ब्रिटेन आर्थिक सकटो मे मुक्त नहीं हो सका। मुद्रा स्फीति, भुगतान-असन्तुलन, औद्योगिक क्षेत्रो के पूर्ण आधुनिकीकरण आदि की समस्याएँ ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था की गतिशीलता मे बाधक बने रहे।

प्रश्नावली

(University Questions)

अध्याय 1

1 "इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति ने इसके आर्थिक जीवन के हर पहलू को दूर तक प्रभावित किया।" समीक्षा कीजिए। (1978)

'The Industrial Revolution in England had far reaching effects on every aspect of her economic life Discuss

2 औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य विशेषताओ का वर्णन कीजिए और बताइए कि यह क्रान्ति सर्वप्रथम इग्लैण्ड मे ही क्या हुई ? 1980 (1977)

Describe the main features of Industrial Pevolution and discuss why did it occur first in England

3 19वी शताब्दी मे इग्लैण्ड की औद्योगिक और व्यापारिक सर्वोच्चता के क्या कारण थे ? (1978)

What were the reasons resp nsible for the industrial and commercial supermacy of Great Britain during 19th century ?

4 "औद्योगिक क्रान्ति शब्द का उपयोग इसलिए नही किया जाता कि इन परिवर्तनो की प्रक्रिया तीव्र थी, अपितु इसलिए किया जाता है कि यह परिवर्तन सम्पन्न होने के बाद मौलिक थे।' समझाइए और क्रान्ति के कारणो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1977)

"The term Industrial Revolution is used, not become the process of change was quick, but because when accomplished, the change was fundamental ' Explain and briefly discuss the causes of Industrial Revolution

5 इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति सर्व प्रथम क्या हुई? इससे वहा की जनता के आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्या परिवतन हुए ? (1978)

Why did Industrial Revolution first take place in England ? Describe the changes in the social and economic life of Great Britain which took place as a result of this

6 "ग्रेट ब्रिटेन मे उद्योग क्रान्ति ने आर्थिक समृद्धि तथा व्यापारिक वृद्धि का द्वार खोला और आर्थिक क्षेत्र मे नए युग का सूत्रपात किया।' इस कथन को स्पष्ट करते हुए उद्योग क्रान्ति के आर्थिक एव राजनैतिक प्रभावो का विवचन कीजिए। (1977)

"Industrial Revolution in U K. opened the flood gates of economic prosperity and commercial development and in augurated a new age in the economic field " Explaining the statement discuss the economic and political effects of Industrial Revolution

7 ग्रेट ब्रिटेन मे हुई उद्योग क्रान्ति के कारणो का विवेचन कीजिए और बताइए कि यह क्रान्ति ग्रेट ब्रिटेन मे ही पहले क्यो हुई ? (1977)
Discuss the Causes of Industrial 1 evolution in U K and show why did this revolution came about in U K first

अध्याय 2

8 ग्रेट ब्रिटेन की उपनिवेशिय विस्तार नीति के उद्देश्यो का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए । (1978)
Critically discuss the objectives of the policy of Colonial expansion of Great Britain

9 इग्लैण्ड मे उपनिवेशिय विस्तार की मुख्य विशेषताओ तथा उनके ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर प्रभावो का परीक्षण कीजिए । (1978)
Examine the main characteristics of Colonial expansion by England and its effect on British economy

10 ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति मे किस प्रकार से ब्रिटिश आर्थिक हितो के अनुरूप परिवर्तन हुए ? (1977)
How the Colonial Policy of Britain underwent changes to suit the British economic interest ?

11 ब्रिटिश उपनिवेशवाद के आर्थिक पहलू क्या थे ? विवेचना कीजिए । (1977)
What were the economic aspects of British Colonialism ? Explain

12 आग्ल औपनिवेशीय विस्तार के कारणो का परीक्षण कीजिए एव औपनिवेशिक नीति पर अपने विचार प्रकट कीजिए । (1978)
Examine the causes of colonial expansion and give your vie regarding the British Colonial Policy

13 ग्रेट ब्रिटेन के औपनिवेशिक विस्तार के आर्थिक पहलुओ का उल्लेख कीजिए उपनिवेशो पर पडने वाले दुष्प्रभावो का विवेचन कीजिए । (1977)
Explain the economic aspect of the Colonial expansion of U K and discuss its bad effects on Colonies

14 औपनिवेशिक नीति के कारणो को बताकर उसके दोषो (आलोचनाओ) विवेचन कीजिए तथा आधुनिक आर्थिक साम्राज्यवाद का स्वरूप बताइए । (1977
Explain the causes of Colonial policy and discuss the demerits c this policy Also throw light on the forms of Modern Econ Imperialism

अध्याय 3

15 सन् 1930 की महान् मन्दी के दौरान ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को जिन उ कठिनाइयो का सामना करना पडा उनकी समीक्षा कीजिए । (1978

Discuss the main difficulties of the British economy had to face during the Great Depression of 1930s

16 ग्रेट ब्रिटेन में 1930 की महान मन्दी के समय आर्थिक स्थिरीकरण के लिए अपनाई गई नीतियों का विश्लेषण करते हुए उनके प्रभावों का विवेचन कीजिए। (1977)
Analysing the policies adopted for the economic stability in U K during Great Depression of 1930s, discuss their effects

17 इंग्लैण्ड द्वारा महान मन्दी काल मे अपनाई गई आर्थिक नीति का मूल्यांकन कीजिए। यह अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने मे कहाँ तक सफल रही ? (1978)
Evaluate the economic policy adopted by England during the Great Depression How far was it successful in its objectives ?

18 तीसा की विश्वव्यापी मन्दी का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाए गए उपायों का सक्षेप मे वर्णन कीजिए। क्या ये नीतियाँ अपने उद्देश्यो मे सफल रही ? (1977)
Describe in brief the steps taken by British Government to counter the effects of the world wide Economic Depression of thirties Did the policies succeed in their object ?

अध्याय 4

19 ब्रिटेन मे पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन नीति के उद्देश्य एव मूल तत्वों को बताकर इस नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (1977)
Critically examine the objects and main features of Planning for full employment in U K

20 ब्रिटेन मे पूर्ण रोजगार नीति अपनाने के लिए क्या प्रयास किए गए। (1978)
What efforts were made for adopting full employment policy in England ?

21 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड की पूर्ण रोजगार की नीति की विवेचना कीजिए। (1977)
Discuss critically the full employment policy of England after the Second World War

जापान के आर्थिक विकास में सीमा-चिन्ह

(Landmarks in Economic Development of Japan)

1 मेजीपुनर्संस्थापन के दौरान जापानी अर्थ-व्यवस्था
(Development of the Japanese Economy during the Meiji Restoration)

2 कृषि विकास
(Agricultural Development)

3 मुख्य आधुनिक उद्योगो के बारे मे कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य
(A few important facts about Principal Modern Industries)

4 लघु-स्तरीय उद्योगो की भूमिका
(Role of Small Scale Industries)

5 जापान के विदेशी व्यापार की विशेषतायें
(Salient Features of Japanese Foreign Trade)

6 आर्थिक विकास मे राज्य का योगदान
(Role of State in Economic Development)

7 द्वितीय महायुद्धोत्तर काल मे आर्थिक विस्तार के कारक
(Factors causing Post-World War II Economic Expansion)

"द्वितीय महायुद्ध के दौरान और बाद मे अमेरिकन सैनिक प्रशासन के अन्तर्गत कुचल कर रख दिया गया जापान आज अमेरिका और सोवियत सघ के बाद बड़ी ताकतो मे नाम लिखाने का हकदार बन चुका है। यह आशा की जाती है कि 1980 तक वह रूस व अमेरिका के बाद दुनिया का तीसरा सम्पन्न देश बन जायेगा। 10 करोड की आबादी का टापुओं पर बसा यह देश दुनिया के आधे तेलवाहक जहाज बनाता है, ब्रिटेन से प्रति-व्यक्ति ज्यादा इस्पात तैयार करता है और सगणको के उपयोग मे यह केवल अमेरिका के पीछे है।"

—डॉ एम एल शर्मा

1

मेजी पुनर्संस्थापन के दौरान जापानी अर्थ-व्यवस्था का विकास

(Development of the Japanese Economy During the Meiji Restoration)

"मेजी-काल (1867–1912) विश्व-इतिहास के सबसे उल्लेखनीय युगों में से है। सम्राट मेजी के शासन काल में देश ने कुछ ही दशकों में वह सब-कुछ पाने का प्रयत्न किया जिसे पाने में पश्चिम को सदियाँ लगी थीं।"

—सार्वजनिक सूचना ब्यूरो, जापान

जापान प्रशान्त सागर में स्थित एक द्वीप-समूह है जिसमें चार प्रमुख द्वीप होकैडो, होशू, शिकोकू तथा क्यूशू और लगभग तीन हजार छोटे द्वीप सम्मिलित हैं। इन सबकी कुल लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक लगभग 1,400 मील है। जापान का वर्तमान क्षेत्रफल लगभग 1,35,000 वर्ग मील है और यहाँ की जनसंख्या अनुमानतः 10 करोड है। पर्वतीय प्रदेश होने के कारण यहाँ कृषि योग्य भूमि कम है, लेकिन व्यापक वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से कृषि को इतना उन्नत बना दिया गया है कि प्रति एकड पैदावार की दृष्टि से जापान का स्थान विश्व मे अग्रणीय है। जल-शक्ति ने जापान को औद्योगिक विकास में महान् सहायता दी है। खनिज पदार्थों और प्राकृतिक साधनों का यहाँ अभाव-सा है। व्यापारिक मार्गों की दृष्टि से यह देश महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। इसके बन्दरगाह सदैव खुले रहते हैं। ज्वालामुखियों का तो यह घर ही है। वर्ष मे लगभग 500 ज्वालामुखी और 1500 भूकम्प जापानी जीवन को अस्थिर बनाए रखते हैं। जापान की वर्तमान शासन पद्धति संसदीय है, लेकिन औपचारिक रूप मे सम्राट की सत्ता भी है।

राजनीतिक, आर्थिक क्रांति की दृष्टि से जापान का अध्ययन मेजी पुनर्संस्थापन (The Meiji Restoration) के समय से महत्त्वपूर्ण है। इसके पूर्व जापान में लगभग 1600 से 1867 तक तोकुगावा घराने का शासन था। 1868 में, विभिन्न कारणोंवश, तोकुगावा घराने के विरुद्ध विद्रोह हुआ और उसे समाप्त करके पुनः

सम्राट को जापान के राज्य सिंहासन पर पदारूढ किया गया। जापान के इतिहास में यह एक महानतम घटना थी क्योंकि लगभग 800 वर्षों के बाद जापान में पुन. सम्राट के हाथो मे वास्तविक सत्ता आई थी। मेजी पुनर्संस्थापन के समय से ही जापान मे सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक सभी क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए और सदियो से एकत्र शक्ति का प्रवाह खुल गया। तभी से जापान कभी धीरे और कभी तेजी से प्रगति की दिशा मे छलागें भरता हुआ आज दुनिया का तीसरा सम्पन्न देश बनने के निकट है।

मेजी पुनर्संस्थापन
(The Meiji Restoration)

सन् 1868 में मेजी पुनर्संस्थापन ने जापान की सोई हुई शक्तियो को जगा दिया। केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण प्रत्यक्ष रूप से सम्राट के हाथो मे आ गया। तोकुगावा शासन की समाप्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उठने वाले छोटे-मोटे विद्रोहो को 1877 तक समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार जापान की राजनीतिक क्रान्ति वस्तुत 1877 में पूर्ण हुई और अब जापानी प्रगति के द्वार खुल गए।

सम्राट मेजी और उसका शासन प्रगतिशील था। नये शासन के नेतृत्व मे जापान की आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था की नीव पडी। प्रो. जी. सी एलन के अनुसार, "नये शासन को यह पता लग गया कि जापान की सैनिक कमजोरी और उसका आर्थिक पिछडापन उसे पश्चिमी शक्तियो के लिए सहज ही लूट का सामान बना सकते हैं, अत उसने निर्णय लिया कि युद्ध और उद्योग में पश्चिमी प्रणालियो को शीघ्रता से अपनाया जाना ही एकमात्र ऐसा उपाय है जिससे जापान अपनी स्वतन्त्रता बनाए रख सकता है।" कहने का आशय यह हुआ कि मेजी पुनर्संस्थापन के बाद जापानी नेताओ ने पश्चिमी प्रणालियो को अपनाते हुए (क) सैनिक शक्ति मे वृद्धि, तथा (ख) तीव्र आर्थिक विकास का निश्चय किया। जापानियो ने 'समृद्ध राष्ट्र, सुदृढ सेना' (Rich Nation, Strong Army) का नारा बुलन्द कर दिया।

मेजी पुनर्संस्थापन काल मे जापानी अर्थ-व्यवस्था ने जो बहुमुखी विकास किया, उसका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षको मे करना उपयुक्त होगा—

(1) आर्थिक परिवर्तन और प्रगति, तथा
(2) वित्तीय परिवर्तन व प्रगति

आर्थिक परिवर्तन व प्रगति
(Economic Changes and Development)

तोकुगावा शासन की समाप्ति के बाद यद्यपि सत्ता सम्राट के हाथो मे आ गई, तथापि राजनीतिक सघर्षों का अन्त नही हुआ। 1870 मे जाकर नये शासन का विरोध अन्तिम रूप से शान्त किया जा सका। 1874 मे और फिर 1877 मे जो विद्रोह हुए, जिसे एलन के अनुसार, "दम तोडती हुई सामन्तशाही की अन्तिम लडाई थी" इन विद्रोहो को दबा दिये जाने पर 1868 की राजनीतिक क्रान्ति पूर्ण हो गई।

राजनीतिक सघर्षों के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक क्षमता और उसके वित्तीय ससाधनों पर काफी बोझा पडा। नई आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई। पर इन सब परिस्थितियों के बावजूद नये शासन ने आर्थिक व वित्तीय क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की और देश को राजनीतिक स्थिरता प्रदान की। उदार और महत्त्वाकांक्षी सम्राट मेजी ने 1868 से 1911 तक शासन किया और इस अवधि मे जापान के आर्थिक जीवन व इतिहास मे एक नया अध्याय खोल दिया। लगभग 44-45 वर्षों की यह अवधि जापान के लिए 'विक्टोरिया युग' था। इस समय जापानी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पुनर्निर्माण और सुधारों का प्रकाश फैला। आर्थिक क्षेत्र म जो प्रगति हुई और जो परिवर्तन किए गए, वे इस प्रकार थे—

1 सामन्तशाही की समाप्ति

नए शासन ने 1869 मे सामन्त-शाही प्रथा को समाप्त कर दिया। इस प्रथा ने तोकुगावा शासन काल मे जापान के आर्थिक विकास को एकदम अवरुद्ध कर दिया था। नयी सरकार ने सामन्तशाही के प्रति कोई रियायत नही बरती। सरदारों ने अपने अधिकार सरकार के हाथ यह कहते हुए सुपुर्द कर दिए कि "सारी भूमि सम्राट की है, अत सम्पूर्ण अधिकारों को लौटाते हैं।" बिना किसी रक्तपात के शान्तिपूर्ण ढंग से सामन्तशाही की यह समाप्ति बहुत ही आश्चर्यजनक और प्रशसनीय थी। नई सरकार ने सामन्तो को उदारतापूर्वक पेन्शन देने की व्यवस्था की। सन् 1871 मे हान (Han) की जगह मांडलिको (Prefectures) की स्थापना की गई। एलन के शब्दो मे, "सामन्तशाही से सम्बद्ध प्राचीन वित्तीय तथा शासकीय प्रणाली का लोप हो गया।" सन् 1878 मे मांडलिको (Prefectures) के लिए असेम्बली की व्यवस्था की गई। अक्तूबर 1881 मे यह प्रशासकीय घोषणा निकाली गई कि 1890 से राष्ट्र के लिए एक प्रतिनिधि एसेम्बली की स्थापना की जाएगी।

सामन्तशाही प्रथा की समाप्ति के फलस्वरूप भूमि की नई व्यवस्था हुई। इस नई व्यवस्था मे खेत जोतने वाले किसान भूमि के स्वामी हो गए और किसानो को फसल बोने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। यह स्वतन्त्रता उन्हे पहले नही थी।

2. आवागमन, व्यापार व उद्योग एव कृषि की स्वतन्त्रता

मेजी युग में अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताऐं प्रदान की गई जिनसे आर्थिक विकास का वातावरण बना। आवागमन और व्यापार व उद्योग की स्वतन्त्रता पर लगाए गए अधिकांश प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए गए। पहले व्यापार व उद्योग के द्वार केवल गिल्डो (Guilds) के सदस्यो के लिए ही खुले थे और यह सदस्यता कुछ ही विशेष सुविधा प्राप्त लोगो को उपलब्ध थी, लेकिन मेजी पुनर्संस्थापना से इस प्रकार का पक्षपात दूर हो गया। अब प्रत्येक वर्ग के सदस्य व्यापार और उद्योग के क्षेत्र मे कदम बढा सकते थे। 1869 में कानूनी रूप से विभिन्न सामाजिक वर्गों की समानता घोषित कर दी गई और लोगो को किसी भी व्यापार मे प्रवेश

करने की छूट दे दी गई। ससार की स्थानीय अड़चनें समाप्त कर दी गई। कृषि क्षेत्र मे भी फसले काटने तथा बोने की स्वतन्त्रता दे दी गई और जैसा कि कहा जा चुका है, व्यक्तियो को भूमि के स्वामित्व-विषयक अधिकार प्राप्त करने की इजाजत दे दी गई।

3. विदेशी व्यापार व औद्योगिक उपक्रमो को प्रोत्साहन

मेजी शासन मे विदेशी व्यापार पर से सभी प्रकार के प्रतिबन्धो को समाप्त कर दिया गया। सरकार ने विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे विशेष रुचि लेना शुरू कर दिया तथा जापान ने पश्चिमीकरण का मार्ग अपनाया। पश्चिमीकरण के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए व्यापारी जहाजो, युद्ध-पोतो, मशीनो आदि उपकरणो का आयात जरूरी हो गया जिनके बदले मे जापान को विदेशी मुद्रा मे बडे-बडे भुगतान करने पडे। इस विदेशी भुगतान की समस्या को सुलझाने के लिए मेजी शासन ने निर्यात को हर प्रकार से प्रोत्साहित किया। कई बार स्वय सरकार ने देशवासियो से चावल, चाय, रेशम आदि खरीद कर विदेशो मे इन वस्तुओ को स्वय ने बेचा। विदेशी व्यापार को अपने अनुकूल बनाने के लिए अनावश्यक वस्तुओ के आयात को हतोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त सीमेन्ट, ग्लास व अन्य प्रकार के कारखानो की स्थापना के लिए राज्य ने सक्रिय कदम उठाये। सरकार को आशा थी कि वह ये कारखाने खोलकर देश मे बनाये गए माल के सभरण से आयात बन्द कर सकेगी।

उपर्युक्त विभिन्न प्रयासो के फलस्वरूप, जापान के विदेशी व्यापार मे आशातीत वृद्धि होती गई और 75 वर्षो के अल्प समय मे ही जापान ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे प्रमुखता प्राप्त कर ली। 1880 से 1913 के मध्य जापान के विदेशी व्यापार मे लगभग आठ गुनी वृद्धि हुई। इसके पूर्व 1868 मे विदेशी व्यापार लगभग 260 लाख येन (चाँदी का तत्कालीन जापानी सिक्का) का होता था जो 1873 तक बढकर लगभग 500 लाख येन और 1881 तक 620 लाख येन का हो गया किन्तु इस वृद्धि के बावजूद भी विदेशी व्यापार मे 1868 से 1881 के बीच जापान को लगभग 790 लाख का घाटा उठाना पडा क्योकि देश के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया मे उसे आयातित मशीनो आदि के लिए और विदेशी व्यापारियो व बैंको की वित्तीय सेवाओ के लिए काफी बडी रकमें विदेश भेजनी पडी। 1881 के बाद यह असतुलन कम होता गया। 19वी शताब्दी के अन्त तक आयात और निर्यात कुल राष्ट्रीय उपज का लगभग 10 प्रतिशत भाग हो गया और आगे चलकर दोनो महायुद्धो की बीच की अवधि मे यह कुल राष्ट्रीय उपज के 15 से 20 प्रतिशत के बीच रहने लगा। यदि डॉलरो में नापें तो 1910 मे जापान का कुल निर्यात 2,230 लाख डॉलर का हुआ जबकि 1870 मे 75 लाख डॉलर से भी कुछ कम था। 1920 मे यह निर्यात बढकर 9 450 लाख डॉलर तक जा पहुँचा। 1900 से 1913 के बीच सूती वस्त्र और रेशम उद्योग के विकास के

कारण इनके निर्यात मे बहुत अधिक वृद्धि हुई । दूसरी ओर निर्मित वस्तुओ के आयात मे काफी कमी आ गई ।

4 पाश्चात्य आर्थिक प्रणालियो को प्रोत्साहन

मेजी सरकार ने जापान के आर्थिक विकास के लिए पश्चिमी व्यापार की प्रणालियो और तकनीकी के विकास को प्रोत्साहन दिया । तोकुगावा शासन-काल से ही खनिज-कर्म और उत्पादन के पाश्चात्य तरीको को सिखाने के लिए विदेशी विशेषज्ञ रखे जाने लगे थे । मेजी शासन ने अपने प्रारम्भिक वर्षो मे इस नीति का और अधिक विस्तार किया । सन् 1875 मे केन्द्रीय व मांडलिक सरकारो के अधीन सेवा करने वाले व्यक्तियो की सख्या सर्वाधिक थी । एलन के अनुसार, "इस समय 527 विदेशी इन सरकारो के अधीन काम कर रहे थे । इनमे 205 तकनीकी सलाहकार, 144 शिक्षक, 69 प्रबन्धक और प्रशासक तथा 36 कुशल कारीगर थे ।"

मेजी शासन ने तकनीकी प्रशिक्षण के विकास के लिए केवल विशेषज्ञो की सेवाएँ ही प्राप्त नही की बल्कि जापानियो को प्रेरित किया कि वे विदेश जाकर पाश्चात्य ज्ञान अर्जित करे और स्वदेश लौटकर उस ज्ञान का उपयोग अपने देश के विकास में करें । राज्य द्वारा बड़े पैमाने पर स्कूलो, कॉलेजो और महाविद्यालयो की स्थापना की गई । इसमे इजीनियरिंग, माइनिंग व कृषि विद्यालयो को प्रधानता दी गई । देश के आर्थिक विकास के लिए तकनीकी शिक्षा को इतना प्रोत्साहित किया गया कि 19वी शताब्दी के अन्त तक इस दिशा मे जापान लगभग आत्मनिर्भर हो गया । 1869 मे सरकार द्वारा विदेशी व्यापार की देखरेख और प्रेरणा के लिए एक वाणिज्यिक ब्यूरो भी स्थापित किया और इसके द्वारा कलात्मक उत्पादनो के निर्यात का विकास करने के लिए एक सगठन की भी नीव डाली गई । सन् 1877 मे इस ब्यूरो द्वारा टोकियो मे एक औद्योगिक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई जिसमे नवीन तकनीकी, मशीनरियों आदि का प्रदर्शन किया गया ।

पाश्चात्य आर्थिक प्रणालियो को प्रोत्साहन देने की नीति के फलस्वरूप जापान शीघ्र ही इस अवस्था मे पहुँच गया कि वह व्यापार व उद्योग के क्षेत्र मे पश्चिमी देशो से प्रतिस्पर्द्धा ले सके ।

5 राज्य द्वारा औद्योगीकरण में सहयोग और देश की औद्योगिक प्रगति

मेजी सरकार ने देश के औद्योगीकरण में सक्रिय सहयोग प्रदान किया । सरकारी प्रयत्नो से जापान मे पूँजीवादी विकास के लिए आवश्यक राजनीतिक और आर्थिक वातावरण पैदा हो गया तथा औद्योगीकरण की मजबूत आधारशिला रखी गई । मेजी शासन काल के प्रारम्भिक 15-20 वर्षों में तेजी से जापानी औद्योगीकरण की पृष्ठभूमि के निर्माण का कार्य किया जिसके फलस्वरूप आगामी 75 वर्षों मे जापान अत्यन्त विकसित और उन्नत श्रेणी का औद्योगिक राष्ट्र बन गया जो प्राय सभी औद्योगिक वस्तुओ का निर्माण करने लगा ।

सरकार ने सबसे पहले राज्य मे शोगुन-शासन तथा दायमियो द्वारा प्रारम्भ किए गए बहुत से कारखानो की व्यवस्था स्वय अपने हाथ मे ले ली और उनका

आधुनिक तरीके से पुनर्गठन किया। राज्य ने और भी अनेक वस्तुओ के निर्माण के लिए आधुनिक ढग के नए-नए कारखानो की स्थापना की। आठवे दशक में राज्य ने आइची तथा हिरोशिमा के मण्डली मे पाश्चात्य ढग की कताई की सूती मिलें खोली। गैर सरकारी उद्यम को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य द्वारा कताई की विदेशी मशीनों का आयात किया गया और उन्हे आसान किश्तो पर उद्यम-कर्त्ताओ को बेच दिया गया। 1870 मे मेबाशी (Maebashı) और टोमिको (Tomıco) मे फ्रांसीसी और इटालियन नमूनो पर रेशम के कारखाने खोले गए। आठवें दशक मे, पश्चिमी तकनीक को प्रोत्साहित करने के लिए अन्य नमूनो के विभिन्न कारखाने खोले गए जिनमे शिराकावा ह्वाइट टाइल वर्क्स, दि फुकुगावा सीमेट वर्क्स, सेनजा वुलन वेव फैक्ट्री और सोडियम सल्फेट तथा ब्लीचिंग पाउडर के कारखाने उल्लेखनीय थे। कुछ विशेष कारखाने खास क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से खोले गए थे, उदाहरणार्थ, होकेडो के विकास आयोग ने सप्पोरो (Sapporo) मे किण्वासवन और चीनी के कारखाने इसी उद्देश्य से खोले थे।

राज्य द्वारा अस्त्र-शस्त्र के निर्माण के लिए भी कारखानो की स्थापना की गई। सर्वप्रथम शोगुन शासन के अधीन आने वाले अस्त्र शस्त्र सम्बन्धी कारखानो को लेकर उनका विकास किया गया। डायमियो के लिए हथियार बनाने वाले कारखानो पर भी कब्जा कर लिया गया और उनमे नए सिरे से उपकरण लगवाए गए। नागासाकी का लोहा ढलाईघर (Nagasakı Iron Foundrıes) नई सरकार तोपखाने का प्रथम निर्माण केन्द्र बना। कोगोशिमा का पोत-निर्माण याड ^goshıma Shıp-buıldıng Yard) युद्धपोतो के निर्माण के अनुकूल बना १५। गया। सेना को वर्दी का कपडा देने के लिए सरकार ने 1876 मे एक ऊनी मिल स्थापित की। 1879 मे एक इजीनियरिंग कारखाना खोला गया। विभिन्न पुराने कारखानो को लेकर राज्य द्वारा उनका पुनर्गठन किया गया।

राज्य ने यह भी घोषणा की कि सारी खनिज सम्पत्ति सरकार की है जिसके हनन का अधिकार उन लोगो को पट्टे पर दिया जा सकेगा जो उनकी खुदाई करने के इच्छुक हो। श्री जी सी एलन के अनुसार, "सातवें दशक के उत्तरार्द्ध और आठवें दशक के पूर्वार्द्ध मे सरकार आदर्श उपक्रमो के रूप मे ९ बडी-बडी खानो (सोना, चाँदी, तांबा, लौह अयस्क एव कोयला) को चला रही थी।"

सरकार ने व्यापारिक जहाजो के विकास की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। सन् 1874 मे राज्य द्वारा विदेशो से सामुद्रिक जहाज खरीदे गए जिन्हे बाद मे मित्सुबिशी फर्म को सौप दिया गया। यह फर्म सरकार की सहायता से नौ-वहन का सचालन किया करती थी। जहाजो को चलाने और नागरिको को प्रशिक्षित करने के लिए विदेशी कप्तान रखे गए। एलन के अनुसार, "सच तो यह है कि 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दशको मे पश्चिमी ढग का ऐसा एक भी महत्वपूर्ण जापानी उद्योग नही था जिसकी स्थापना का श्रेय राज्य को न हो।" सन् 1880 मे दिए गए एक विवरण के अनुसार उस वर्ष तक राज्य द्वारा स्थापित कारखानो और

सम्पत्ति में तीन जहाज निर्माण के कारखाने, 51 व्यापारिक जहाज, 5 अस्त्र-शस्त्र निर्माण के कारखाने, 52 अन्य कारखाने, 10 खानें, 79 मील रेलवे लाइन और सभी प्रमुख नगरों को मिलाने वाली एक टेलीग्राफ व्यवस्था थी। इतना ही नहीं, सरकार विभिन्न पोत-निर्माण यार्डों को सहायता दे रही थी और डाक नौ-वहन सेवा को भी उससे अर्थ-सहायता मिल रही थी। उल्लेखनीय बात यह है कि नए शासन ने इन सब कार्यों को उस समय किया था जब उसके सामने विषम वित्तीय कठिनाइयाँ थी और उसे राजनीतिक संघर्षों व विद्रोहों का सामना करना पड रहा था।

सन् 1882 के बाद सरकार ने अपनी नीति को एक मोड़ दिया। उसने अब व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में स्वयं कार्य करने की नीति का परित्याग कर दिया और सरकारी औद्योगिक संस्थाओं को निजी उद्योगपतियों के हाथ बडी रियायती व सुविधाजनक दरों पर बेचना शुरू कर दिया। सरकार की इस नीति को "पुन निजीकरण की नीति" (Policy of Re-privatisation) कहा जाता है। सरकार के इस नीति-परिवर्तन के लिए मुख्यत निम्नलिखित कारण उत्तरदाई थे—

(1) सरकार ने अब तक जो उद्योग स्थापित किए थे, वे सुदृढता प्राप्त कर चुके थे। वे अब इस स्थिति में आ चुके थे कि निजी उद्यमकर्त्ताओं द्वारा उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक चलाया जा सकता था।

(ii) विभिन्न सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप निजी उपक्रम भी काफी विकसित हो चुके थे। अत यह आवश्यक हो गया था कि इनके विनियोग के लिए नई सुविधाओं की व्यवस्था की जाए।

(iii) राज्य जिन उद्योगों का संचालन कर रहा था, उनसे लाभ बहुत ही कम हो रहा था। यह एक माना हुआ तथ्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा निजी क्षेत्र के उपक्रम अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं। अत सरकार ने यह उचित समझा कि सरकारी उद्योग व्यवस्थित रूप से निजी उद्यमकर्त्ताओं को अनुकूल शर्तों व दरों पर हस्तांतरित कर दिए जाएँ।

उपर्युक्त सभी कारणों का यह सम्मिलित परिणाम हुआ कि राज्य ने स्वयं को व्यापार व उद्योग के क्षेत्र से हटाना और निजी उद्योगपतियों को अधिकाधिक आगे बढाना शुरू कर दिया। पर साथ ही देश के समुचित आर्थिक विकास की दृष्टि से सरकार ने औद्योगिक विकास के संचालन में अपना महत्त्वपूर्ण हाथ भी बनाए रखा।

सन् 1890 के उपरान्त औद्योगिक क्षेत्र में जापान बहुत ही तेजी से आगे बढने लगा। इस समय तक देश में पाश्चात्य तकनीक विकसित हो चुकी थी और व्यापार व यन्त्रों का प्रचुर उपयोग होने लगा था। बैंकिंग गृहों का विकास हो चला था उत्पादित व निर्मित वस्तुओं के मूल्य बढने से मुनाफा अधिक होने लगा था और विश्व समृद्धि की ओर बढ रहा था। इन सब अनुकूल परिस्थितियों में यह स्वाभाविक

था कि मेहनतकश और निपुण जापानी जनता द्रुत गति से व्यापारिक व औद्योगिक प्रगति करती।

सन् 1894-95 में जापान और चीन के बीच युद्ध में जापान की विजय से भी इसके औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र का विकास हुआ। इस विजय के कारण जापान पश्चिमी राष्ट्रों के साथ पहले किए गए असम्मानजनक समझौतों से मुक्त हो गया और विश्व राजनीति के क्षेत्र में उसने नया गौरव अर्जित किया। इस युद्ध में विजय के फलस्वरूप जापान को क्षति पूर्ति के रूप में भारी धनराशि प्राप्त हुई। इस धनराशि के बल पर वह संसार के अन्य देशों की भाँति स्वर्ण-प्रमाप अपना सका। जापान ने जहाज निर्माण व रासायनिक उद्योगों के विकास पर भारी बल दिया। अपने निर्यात को अधिकाधिक बढाया और कृषि क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। सन् 1904 5 में रूस व जापान के बीच युद्ध हुआ जिसमें जापानियों ने रूसियों को बुरी तरह हराकर विश्व को आश्चर्य में डाल दिया। इस विजय के फलस्वरूप जापान के व्यापारिक व औद्योगिक विकास को पुन प्रोत्साहन मिला। वित्तीय संस्थाओं, सामुद्रिक और यातायात औद्योगिक तकनीकी को भारी प्रेरणा मिली और निर्यात व्यापार तजी से बढा।

6 प्रथम महायुद्ध के पूव बडे पैमाने के जापानी उद्योग-धन्धों का चित्र

मेजी युग में जापान न उद्योग धन्धों के क्षेत्र में कितनी प्रगति की, इसकी एक झाँकी प्रथम महायुद्ध के पूर्व के बड पैमाने के जापानी उद्योग-धन्धों के निम्नलिखित सक्षिप्त चित्रण से मिल सकेगी—

लोहा व इस्पात उद्योग—जापान ने लोहा व इस्पात उद्योग में भारी प्रगति की। सन् 1896 में आन्तरिक माग का लगभग 40 प्रतिशत लोहा उत्पन्न किया गया। 1913 के आते आते जापान लोहे व इस्पात की क्रमश 48 व 34 प्रतिशत आन्तरिक माँग की पूर्ति करने लग गया। शेष माग की पूर्ति के लिए अभी वह विदेशों के आयात पर निर्भर था।

कोयला उद्योग—इस उद्योग में कोयला खानों की खुदाई के आधुनिक तरीके अपनाए गए। ज्यों ज्यों जापान का औद्योगीकरण तेज होता गया त्यों त्यों कोयले की माँग बढती गई और कोयला उद्योग फलता-फूलता गया। सन् 1913 के आते-आते कोयले की खानें बढकर संख्या में 100 हो गई जिनमें लगभग 2 लाख श्रमिक लगे हुए थे।

जहाज-निर्माण उद्योग—इस उद्योग का विकास धीरे-धीरे किन्तु मजबूती से हुआ। जो जहाजी कारखाने सरकार के नियन्त्रण में थे, वे 1880 में निजी पूँजीपतियों को दे दिए गए। नए निजी निर्माण गृह भी स्थापित हुए। यद्यपि जलपोतों का निर्माण क्रमश बढता गया तथापि 1896 से पूर्व तक एक हजार टन से अधिक का कोई जहाज नही बनाया गया। इनके बाद पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलने से यह उद्योग तेजी से बढा और जहाजी इंजिन भी बनाए जाने लगे। 1899 में सामुद्रिक सहायता कानून बना जिसमें व्यापारिक जहाजी बेडे के निर्माण को

प्रोत्साहन मिला। सन् 1913 मे जलपोत निर्माण उद्योग की दृष्टि से जापान में एक हजार टन से अधिक के जहाजो का निर्माण करने वाले 6 कारखाने थे।

पेट्रोल उद्योग—इस महत्त्वपूर्ण उद्योग का विकास सन् 1881 के बाद हुआ। इस क्षेत्र मे विदेशी पूँजी का ही महत्त्वपूर्ण भाग रहा, जापानी पूँजी व साहस के उपयोग मे कमी रही। प्रथम महायुद्ध के पूर्व स्थिति यह थी कि तेल की कुल जापानी माँग का 65 प्रतिशत भाग विदेशी कम्पनियो द्वारा ही पूरा किया जाता था।

इञ्जीनियरिंग उद्योग—यह उद्योग भी धीरे-धीरे विकसित हुआ। 1887 मे शिकाउरा इजीनियरिंग कारखाना खोला गया जिससे 1892 मे विद्युत सामग्री का उत्पादन होने लगा। कुछ कम्पनियाँ बल्बो, टेलीफोन व तार सामग्री आदि का निर्माण करती थी। 1892 मे जापान मे पहला रेल इजिन बनाया गया। सन् 1906 में रेलो के राष्ट्रीयकरण के बाद जापान मे रेल-सामग्री के निर्माण की गति बढाई गई। 1910 के बाद विद्युत शक्ति उत्पादन केन्द्रो की सख्या बढी। अब देश मे जल विद्युत शक्ति का उपयोग होने लगा। इसी वर्ष कुछ कारखाने और भी खोले गए व कुछ का आकार बढाया गया।

कागज, चीनी, शीशा, साइकिल व अन्य उद्योग—जापान मे और भी विभिन्न प्रकार के उद्योगो का विकास हुआ। इनमे शीशा, कागज, चीनी, रासायनिक उद्योग, खाद व साइकिल उद्योग आदि उल्लेखनीय हैं। कागज उद्योग की स्थापना से लगभग 50 करोड पौंड कागज का उत्पादन होने लगा, किन्तु जापान जिस विशेष किस्म के कागज के लिए विख्यात था वह अब भी छोटे कारखानो व किसान परिवारो मे ही बनाया जाता रहा। चीनी उद्योग मेजी काल से पहले भी था पर इसका विकास फारमोसा को जापानी उपनिवेश बना लेने के बाद हुआ। सन् 1902 के बाद यह उद्योग तेजी से पनपा। जापान के मिशाई तथा मित्सुबिशी सेठ परिवारो ने इस उद्योग के विकास मे तेजी से हाथ बटाया। शीशा उद्योग का विकास भी मित्सुबिशी घराने से ही हुआ। साइकिल उद्योग ने रूस-जापान युद्ध की समाप्ति के बाद भारी प्रगति की। बडे कारखानो मे साइकिलो के पुर्जे बनाए जाने लगे जिन्हे व्यापारी खरीद कर छोटे उत्पादको को बेचने लगे जो अपने छोटे कारखानों मे इन पुर्जों को मिलाकर अधिकाधिक सख्या मे साइकिलें बनाने लगे। सीमेंट, रबर, रासायनिक उद्योगो का भी अच्छा विकास हुआ।

7. आवागमन के साधनो के विस्तार द्वारा आर्थिक प्रगति

पाश्चात्य देशो की भाँति बडे पैमाने पर औद्योगीकरण की नीति ने मेजी सरकार को इस बात के लिए प्रेरित किया कि आवागमन के साधनो का विस्तार किया जाए। फलस्वरूप सन् 1871 मे डाक-तार प्रणाली का आरम्भ हुआ और 7 वर्ष बाद ही जापान विश्व डाक सघ मे शामिल हो गया। सन् 1869 में ओसाका एव टोकियो के बीच एक नौ-वहन मार्ग बनाया गया। इसके शीघ्र बाद ही टोकियो व याकोहामा को मिलाने के लिए पहली रेलवे लाइन का निर्माण किया गया। इनके अतिरिक्त; अब तक जो माल परम्परागत तरीको से बनाया जाता था, उनके बदले

नए उत्पादनों को तैयार करने के लिए ऐसे निर्माण संस्थान खोले गए जिनमे पश्चिमी मशीनें लगाई गई ।

रेलवे और जहाज यातायात साधनों के विकास से जापान की औद्योगिक प्रगति को भारी प्रेरणा मिली। रेल मार्गों की लम्बाई सरकारी रेल मार्गों को मिलाकर सन् 1881 तक लगभग 122 मील हो गई। इस प्रकार-व्यापारिक पोतो का टन-भार सन् 1873 के 26 हजार टनो से बढ़कर नवें दशक मे लगभग 50 हजार टन हो गया। पोतो की संख्या मे क्रमश. काफी वृद्धि हुई। जापान के मुख्य शहरो में धीरे-धीरे सार्वजनिक सेवाओ का प्रसार होता गया जिनमे गैस का दिया जाना और ट्रामो का चलाया जाना भी शामिल था।

1912-13 तक राजकीय रेलवे लगभग 8,396 किलोमीटर और निजी रेलवे 5,289 किलोमीटर हो गई। 1913 तक जापान अपने कुल निर्यात का लगभग 51 प्रतिशत भाग अपने जहाजो मे भेजने लगा जबकि 1893 मे वह केवल 7 प्रतिशत भाग ही अपने जहाजो से बाहर भेजता था। जापान का जहाजी बेडा 1875 मे लगभग 26 हजार टन था जो 1913 के अन्त तक लगभग 15 लाख टन हो गया।

यातायात और संचार व्यवस्था के साधनो के विकास ने जापान को तीव्र आर्थिक प्रगति दी। श्री जी सी एलन के शब्दो मे, "नई संचार व्यवस्था-विशेषकर रेलमार्गो और जहाजो मे आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने मे महत्त्वपूर्ण योग रहा। बाजार बढ़ गए और स्थानीय विशेषज्ञता को बढ़ावा मिला। अपने देश की जरूरतो को ध्यान मे रखते हुए राजकुमार मत्सुकाता का यह सुझाव निश्चित रूप से ठीक ही था कि विश्व के विभिन्न भागो की आर्थिक प्रगति और रेलमार्गों के विकास का पारस्परिक सम्बन्ध है तथापि यह कहना शायद ठीक हो कि मेजी काल के प्रारम्भिक वर्षों मे यन्त्रीकृत परिवहन जापान के लिए उतना महत्त्वपूर्ण नही था जितना कि वे नई प्रक्रियाएँ जो तकनीकी दृष्टि से बिलकुल पुरानी थी। यह ठीक ही कहा गया है कि मिट्टी की सडको के निर्माण और लद्दू घोडो और बोझा ढोने वाले मजदूरो के स्थान पर रिक्शो, घोडा गाडियो, बैल-गाडियो, कुत्तो और आदमियो द्वारा खींची जाने वाली गाडियो के प्रयोग का नई अर्थ-व्यवस्था के विकास मे रेलमार्गो की अपेक्षा शायद अधिक जोरदार प्रभाव पड़ा।"

8. कृषि की उन्नति

मेजी शासनकाल मे कृषि-क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन और विकास हुए जिनसे सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को बल मिला। कृषि मे विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए गए तथा औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप कृषि पर निर्भर जनसंख्या का अनुपात घट गया।

मेजी शासन काल मे सरकार ने किसानो को सामन्तवादी प्रतिबन्धों से मुक्त करके उन्हें खेती के सुधरे हुए तरीके प्रयोग मे लाने को प्रोत्साहित किया। देश मे कृषि विद्यालय खोले गए और विदेशो में कृषि के तरीको की शिक्षा के लिए विद्वानो

को भेजा गया। किसानों को प्रशिक्षण देने के विभिन्न कार्यक्रम अपनाए गए। कृषि के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र में वृद्धि हुई और साथ ही खेती के सुधरे हुए तरीकों, सिंचाई की अधिकाधिक सुविधाओं आदि का विस्तार हुआ। कीडे-मकोडों और विभिन्न प्रकार की कृषि-बीमारियों पर नियन्त्रण आदि से कृषि उत्पादन को बढाया गया। जहा 1878 में लगभग 25,79,000 चो (Cho) क्षेत्र में खेती होती थी वहाँ 1908 में लगभग 29,22,000 चो क्षेत्र में खेती होने लगी। जापान के व्यापारिक क्षेत्रों में बिक्री के लिए विभिन्न प्रकार के व्यापारिक कृषि पदार्थ उत्पन्न किए जाने लगे। फलस्वरूप ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में उसी तरह सुधार होने लगा जिस तरह इंग्लैंड में 14वीं शताब्दी में होने लगा था।

मेजी युग में कृषि उत्पादन और भी तेजी से बढा। जहाँ 1879–83 में चावल, जौ और गेहूँ का उत्पादन क्रमश 30,874, 5,506 एव 2,219 हजार कोकू (एक कोकू बराबर 4 96 बुशल) हुआ था वहाँ 1909-13 की अवधि में 50,242 9,677 एव 4,907 हजार कोकू हुआ। यद्यपि मेजी-युग में कृषि क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई, तथापि किसानों का जीवन अधिक नहीं सुधर सका।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मेजी शासन काल में जापान के आर्थिक इतिहास ने एक क्रान्तिकारी करवट ली। जापानी अर्थ व्यवस्था जाग गई और तेजी से विकास पथ की ओर बढने लगी। अर्थ-व्यवस्था की यह रचनात्मक पृष्ठभूमि बहुत कुछ तैयार हो गई जिसके आधार पर भावी आर्थिक विकास कामहल खडा किया जा सका।

वित्तीय परिवर्तन व प्रगति
(Financial Changes and Progress)

मेजी शासन को प्रारम्भ से ही अनेक वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पडा। फलस्वरूप आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए, नई सरकार ने अनेक वित्तीय परिवर्तन किए और इन क्षेत्र में प्रगति करके उसने वित्तीय समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना किया।

पत्र-मुद्रा प्रचालन तथा मुद्रा क्षेत्र की अराजकता मिटाने के प्रयत्न

मेजी सरकार के सामने वित्तीय कठिनाइयाँ प्रमुख रूप से तीन कारणों से प्रकट हुईं—(i) शोगुन द्वारा प्राप्त कुल आय केन्द्रीय सरकार को प्राप्त नहीं हो सकी, (ii) हान को भी करों के क्षेत्र में अभी तक स्वायतत्ता प्राप्त थी, एव (iii) राजनीतिक संघर्षों व आन्तरिक विद्रोहों का सामना करने में मेजी सरकार को काफी धन राशि व्यय करनी पडी। देश की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति इस प्रकार की थी कि सरकार के लिए नए कर लगाना कठिन था। इसके अतिरिक्त विदेशी शक्तियों से करारों के कारण सीमा शुल्क के रूप में प्राप्त होने वाली आय भी बहुत ही सीमित थी। कुल मिलाकर बजट की स्थिति सरकार के बहुत ही प्रतिकूल थी। एम टकाकी के अनुसार, "सन् 1868 में जहाँ जापानी सरकार का खर्च 250 लाख

येन था वहाँ सरकार को सामान्य स्रोतो से प्राप्त होने वाले राजस्व की राशि 37 लाख येन से अधिक नही थी।" यह स्थिति वास्तव मे बडी निराशाजनक थी।

इस गम्भीर वित्तीय समस्या से निपटने के लिए *सरकार ने निम्नलिखित* उपाय किए—

(1) सरकार ने अपने समर्थक व्यापारियो से और स्वदेशी तथा विदेशी संस्थाओ से अल्पकालीन ऋण लिए। इन स्रोतो से प्राप्त होने वाली कुल राशि केवल 54 लाख येन ही रही और फलस्वरूप 1868 मे सरकार को लगभग 160 लाख येन घाटा रहा। सन् 1869 मे भी स्थिति मे विशेष सुधार नही हुआ क्योकि जहाँ खर्च 208 लाख येन हुआ वहाँ करो, अल्पकालीन ऋणो, जुर्मानो आदि से आमदनी केवल 105 लाख येन की हुई।

(ii) इन प्रतिकूल परिस्थितियो मे मेजी सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह छापेखाने का आश्रय ले अर्थात् पत्र-मुद्रा निकाले। सरकार ने 1868 और 1869 मे लगभग 480 लाख येन की कीमत के नोट जारी किए। जी. सी. एलन के अनुसार "इनमे से कुछ नोट उन पुरानी विनिमय कम्पनियो या (कावसे-गुमी) के माध्यम से जारी किए गए जिन्होने इस लेन-देन ने बहुत लाभ उठाला।" पत्र-मुद्रा प्रकाशन का डायमियो ने काफी विरोध किया क्योकि उन्हे भय था कि सरकारी नोटो के प्रकाशन से उनकी अपनी कागजी मुद्रा पर विपरीत प्रभाव पडेगा।

यद्यपि सरकार ने नोट जारी करके वित्तीय समस्या का सामना करने की कोशिश की तथापि सरकार की आर्थिक स्थिति जन-साधारण से छिपी नही थी। *सरकार की स्थिति मे लोगो को अविश्वास* होने से नोटो का *मूल्य बहुत अधिक गिर* गया और 1868 मे ही एक समय ऐसा आया जब ये नोट लगभग 55 प्रतिशत के बट्टे पर सोने-चाँदी मे बदले जा सकते थे।

कुल मिलाकर आर्थिक क्षेत्र मे बडी अराजकता की स्थिति थी। पत्र-मुद्रा जारी करने का कोई प्रामाणिक तरीका नही था और देश मे विभिन्न प्रकार की पत्र-मुद्राये प्रचलित थी। साथ ही सोने चाँदी के सिक्के भी चलन मे थे। एलन के शब्दो मे, "मुद्रा की स्थिति वास्तव मे बहुत भयानक थी क्योकि उस समय जिस मुद्रा का चलन था उसमे जारी किए गए न केवल ये अपरिवर्तनीय नोट ही थे, अपितु व सोने व चाँदी के सिक्के भी थे जिनमे विभिन्न मात्रा मे मिलावट थी। इस मुद्रा में कुला द्वारा जारी किए गए नोटो की लगभग पन्द्रह सौ किस्में भी थी। ये सब शोगुन शासन के विरासत मे मिले थे।"

मेजी शासन ने धैर्य और बुद्धि से काम लिया तथा मौद्रिक और वित्तीय व्यवस्था के क्षेत्र मे व्याप्त अराजकता धीरे-धीरे दूर होने लगी। 1869 के अन्त तक मेजी विरोधी शक्तियो का बहुत कुछ दमन कर दिया गया जिससे सरकारी खर्च घट गए और 1870 मे बहुत कम नोट जारी करने पडे। मुद्रा स्फीति के बन्द अथवा कम हो जाने से और *साथ ही नए शासन मे जनता का विश्वास* बढने से नोटो के गिर हुए मूल्य फिर ऊँचे हो गये। 1871 में हान की समाप्ति से मेजी सरकार

के राजस्व स्रोत पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गए। इसी वर्ष मुद्रा में भी सुधार के प्रयत्न किए गए।

(iii) सोने के येन में धातु की मात्रा निर्धारित करने और उसे प्रामाणिक सिक्का करार देने के लिए सरकार ने एक कानून पास किया। चाँदी वाला येन भी वैध मुद्रा घोषित किया गया। सरकार ने ओसाका में एक टकसाल खोली जिसमें आधुनिक मशीन लगाई गई तथा विदेशी विशेषज्ञ नियुक्त किए गए।

(iv) यद्यपि वित्तीय समस्याओं का बहुत कुछ सामना किया गया, तथापि गम्भीर कठिनाइयाँ बनी रहीं। हान शासन की समाप्ति से स्थानीय प्रशासन का उत्तरदायित्व भी केन्द्रीय सरकार पर आ पड़ा। सरदारों व सामन्तों को वार्षिक पेन्शनों की व्यवस्था करनी पड़ी। इन सब कारणों से बजट की कठिनाइयाँ फिर बढ़ गई और 1872 में खर्चा तो 580 लाख येन हुआ बल्कि राजस्व 330 लाख येन ही हो सका। इस कमी को पूरा करने के लिए नई कागजी मुद्रा जारी की गई। इस वर्ष सरकारी नोटों की राशि 730 लाख येन से भी अधिक हो गई। 1872 के अन्त तक कुल कागजी मुद्रा की मात्रा लगभग 10 करोड़ येन थी।

(v) 1873 में सरकार ने कागजी मुद्रा के बदले 6 प्रतिशत ब्याज वाले बाँड देने का प्रस्ताव रखा। पर बाँड आशा से बहुत कम खरीदे गये क्योंकि ब्याज की वर्तमान दर बाँडों पर मिलने वाले ब्याज की दर से कहीं अधिक थी और साथ ही नोटों का मूल्य भी पूर्वापेक्षा बढ़ गया था। फिर भी पत्र मुद्रा प्रकाशन की स्थिति में काफी सुधार हुआ और जून, 1876 तक जारी नोटों की कुल रकम केवल 940 लाख येन के आसपास रह गई। इस समय नोटों का मूल्य लगभग सोने—चाँदी के मूल्य के बराबर हो गया। एलन के अनुसार, "वास्तव में इस समय यूरोप में रेशम की फसल खराब हो जाने से जापानी रेशम की विदेशों में माँग बढ़ गई, अतः सन् 1876 के उत्तरार्द्ध में इन नोटों का मूल्य यथार्थ रूप से मेक्सीकन डॉलर और चाँदी के येन से भी अधिक हो गया।"

इस प्रकार 1876 का वर्ष समाप्त होते-होते मेजी सरकार ने अपनी गम्भीर मुद्रा—कठिनाई को हल कर लिया। अल्पकालीन ऋणों को चुका दिया गया और अन्य ऋण भी बहुत कम हो गये।

कर-व्यवस्था में सुधार

एक ओर तो मेजी सरकार ने वित्तीय समस्याओं का समाधान नोट जारी करके और ऋण लेकर पूरा करने का प्रयत्न किया और दूसरी ओर कर-व्यवस्था में भी सुधार के प्रयास जारी रहे। शोगुन शासन के समय स्थानीय और केन्द्रीय सरकारों के राजस्व का मुख्य स्रोत लगान होता था। लगान की कोई निश्चित राशि नहीं थी और इसे चावल के रूप में अदा किया जाता था। सन् 1872 में करों की व्यवस्था बिलकुल नए तरीकों से की गई। इस कर-निर्धारण का उद्देश्य ऐसा राजस्व वसूल करना था जो व्यापक रूप से पहले जैसा ही हो, किन्तु राशि की दृष्टि से उसमें बहुत कम घट बढ़ होने की सम्भावना रहे।

केवल भूमिकर मे ही वृद्धि की गई बल्कि अन्य करो को भी वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित किया गया। पुरानी शासन व्यवस्था मे जनता पर अनेक कर लगे हुए थे उनसे आय होना तो दूर रहा, उनकी वसूली का खर्च भी पूरा नही होता था। सन् 1875 मे सम्पूर्ण कर-प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया गया और आगामी पाँच वर्षो में लगभग सोलह सौ करों के स्थान पर केवल 74 कर ही रह गए। लगान राजस्व का महत्त्वपूर्ण साधन बना रहा 1879–80 में लगान से होने वाली आय सम्पूर्ण राजस्व का लगभग 4/5 भाग थी।

करो की वैज्ञानिक व्यवस्था के कारण सरकार की आमदनी बहुत अधिक बढी। सन् 1870 मे सरकार की कुल आय लगभग 20 959 (हजार येन मे) थी जिसमे करो से प्राप्त आय 9 323 (हजार यन मे) थी। इसकी तुलना मे 1876 मे ही सरकार की आय 69,482 (हजार येन मे) रही जिसमे से कर-आय 59,194 (हजार येन मे) थी। इस वर्ष भूमिकर कुल करो की आय का 58 प्रतिशत था।

बैंकिंग प्रणाली का सगठन

नई सरकार ने व्यापार और उद्योग का जो विस्तार किया उसके फलस्वरूप जापान मे एक व्यापारिक कम्पनी (Trading Company) का निर्माण हुआ जिसने 1870 मे काम करना शुरु किया। यह कम्पनी आधुनिक ढंग पर सचालित की गई। इसके बाद ही बैंकिंग कॉरपोरेशन (Banking Corporation) का सगठन किया गया। बैंकिंग के क्षेत्र मे उस प्राचीन व्यवस्था को जो डायमियो के अन्तर्गत प्रचलित थी त्याग दिया गया और उसके स्थान पर नई व्यवस्था जारी की गई। अमेरिकन बैंकिंग प्रणाली के आधार पर देश में बैंकिंग व्यवस्था सगठित की गई। इसके अनुसार केन्द्रीय बैंकिंग प्रणाली को नही अपनाकर नेशनल बैंको की स्थापना की गई जिन्हे खास-खास क्षेत्रो के अन्तर्गत नोट जारी करने का अधिकार दिया गया। शीघ्र ही बैंक आफ जापान की स्थापना हुई जिसे नोट जारी करने का एकाधिकार दिया गया। 1887 मे विदेशी व्यापार की वित्तीय आवश्यकताओ की दृष्टि से, योकोहामा स्पेशी बैंक (Yokohama Specie Bank) स्थापित किया गया। 1893 मे स्टॉक एक्सचेंज अधिनियम और बैंक अधिनियम (Stock Exchange Act and the Bank Act) के द्वारा मुद्रा बाजार को नियमित करने के प्रयत्न किए गए।

मेजी सरकार ने इन सभी प्रयासो द्वारा आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, फिर भी उतार–चढाव होते रहे और 1880 के आसपास मुद्रा स्फीति ने जापानियो को काफी परेशान कर दिया। प्रारम्भ मे ऋणो को चुकाया अवश्य गया, लेकिन इस समय तक कुल मिलाकर राज्य पर कर्जा बढ गया। जून, 1878 मे यह कर्जा लगभग 25 करोड 40 लाख येन था। सरकार मुद्रा स्फीति के खतरो से अनभिज्ञ नही थी। इस शोचनीय स्थिति को मिटाने के लिए विभिन्न प्रयत्न किए गए। सरकार ने कर बढाकर भी अपनी बजट की स्थिति को सुधारने की चेष्टा की। अक्तूबर, 1881 में काउट मत्सुकाता को वित्त मत्री नियुक्ति करने के बाद वित्तीय स्थिति पर बहुत कुछ काबू पाया जा सका।

वास्तव मे मेजी पुनर्संस्थापन के समय जो वित्तीय कठिनाइयां उपस्थित हुई वे नीति की गलतियो के कारण नही थी, बल्कि उन घटनाओ के फलस्वरूप हुई थी जो सरकार के नियन्त्रण के बाहर थी। लेकिन वित्तीय सकटों के दौरान मेजी सरकार ने काफी साहस, धैर्य और दृढता का परिचय दिया जिससे निराश जापानियो मे आशा का सचार होता रहा।

मेजी पुनर्संस्थापन काल मे विभिन्न परिवर्तनो के तात्कालिक परिणाम
(Immediate Effects of the Changes made during the Meiji Restoration)

मेजी पुनर्संस्थापन काल मे जो विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और वित्तीय परिवर्तन हुए, उनके तात्कालिक परिणाम मुख्यत. ये निकले—

(1) आर्थिक जीवन मे नई चेतना आई। जापान की आर्थिक समृद्धि के प्रेरक वातावरण की रचना हुई।

(2) जापान के उद्योग, वाणिज्य, कृषि, परिवहन आदि सभी क्षेत्रो मे तेजी से प्रगति हुई।

(3) शिक्षा के प्रसार को बल मिला। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र मे जापान तेजी से आत्मनिर्भरता की ओर बढा। पाश्चात्य प्राविधियो के प्रोत्साहन से देश के भावी आर्थिक विकास की नीव पडने म भारी सहायता मिली।

(4) उद्योग-धन्धो के क्षेत्र मे वृहद और लघु दोनो ही प्रकार के उद्योगो का सगठन हुआ। बडे पैमाने पर आधारभूत उद्योगो की नीव रखी गई।

(5) सामन्तशाही की समाप्ति से किसानों को भारी राहत मिली। कृषि क्षेत्र मे नवीन प्रयोगो से कृषि की दशा सुधरने लगी।

(6) कर-व्यवस्था वैज्ञानिक आधार पर सगठित हुई और जनता पर से सैकडो अनावश्यक करो का बोझा हट गया।

साराशत मेजी पुनर्संस्थापन-काल मे जो विभिन्न परिवर्तन किए गए उनसे जापान की भावी आर्थिक व राजनीतिक प्रगति की नीव पड गई और धीरे-धीरे 19वी शताब्दी के अन्त तक जापान की गणना विश्व की महान् शक्तियो मे की जाने लगी। वस्तुत मेजी शासन ने जापान को एक आधुनिक राष्ट्र मे बदल दिया। उसने पूँजीवादी विस्तार की आवश्यक रूप रेखा बना दी। मेजी काल मे जो प्रयास हुए उन्ही के कारण आधुनिक जापान के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

मेजी काल में जापान के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारक
(Factors Promoting Industrialisation of Japan during the Meiji Restoration)

मेजी युग में जिन परिस्थितियो और कारको ने जापान के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया, उनका सविस्तार उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुका है। अत

यहाँ सांकेतिक रूप में उन कारकों व परिस्थितियों को अलग-अलग गिनाना ही पर्याप्त होगा—

(1) सरकार ने व्यापार व उद्योग के क्षेत्र में सक्रिय रुचि ली। सरकारी सहायता और सहयोग से देश तेजी से औद्योगिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा। सरकार ने स्वयं निर्माण उद्योगों के विकास में भाग लिया और विभिन्न उद्योगों को अपने हाथ में लेकर पुनर्गठित किया।

(2) देश के औद्योगिक विकास के लिए पाश्चात्य प्रणालियों और प्रविधियों को अपनाया गया। विदेशी विशेषज्ञ देश में बुलाए गए और जापानियों को विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजा गया। देश में प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं का अधिकाधिक विस्तार किया गया।

(3) विदेशों से आधुनिक ढंग की बनी वस्तुओं को जापानी श्रमिकों व कारीगरों के सामने नमूने के लिए पेश किया गया ताकि वे उनकी नकल कर सकें और स्वदेशी वस्तुओं को सुधार सकें।

(4) यातायात और संदेशवाहन के साधनों का तेजी से विकास करने की दिशा में प्रभावशाली कदम उठाए गए।

(5) पूँजी निर्माण की समस्या का समाधान सरकार और बड़े-बड़े व्यापारियों के प्रयासों द्वारा किया गया। मेजी शासन में नियोजित रूप में स्फीति-जनक नीति का अनुसरण किया गया। फलस्वरूप आय बढ़ी और आय के पुनर्वितरण से पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

(6) सरकार ने कर-व्यवस्था को पुनर्गठित करके राजस्व में वृद्धि की तथा पत्र-मुद्रा जारी करके वित्तीय कठिनाइयों का सामना किया।

(7) प्रारम्भिक वर्षों में सरकार ने ऐसी मजदूरी की नीति अपनाई जिसमें मजदूरी में वृद्धि की छूट नहीं दी जाती थी।

(8) सामन्तशाही की समाप्ति करके सामन्तों को मुआवजा ऋण-पत्रों के रूप में दिया गया। सामन्तों ने इन ऋण-पत्रों का प्रयोग नए-नए उद्योग-धन्धों व बैंक आदि में लगाने तथा शेयरों को खरीदने में किया।

(9) बैंकिंग व्यवस्था का संगठन किया गया जिससे मुद्रा बाजार व्यवस्थित हो सका।

(10) विदेशी व्यापार व अन्य उद्योग-धन्धों पर से सभी प्रतिबन्ध उठा लिए गए। पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आने से विदेशी व्यापार बढ़ा जिसका देश के निर्माणकारी उद्योगों के विकास पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा।

(11) चीन और रूस के साथ हुए युद्धों में विजय प्राप्त करने से जापान को अनेक राजनीतिक व आर्थिक लाभ हुए।

संक्षेप में, मेजी सरकार ने औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने वाली प्रत्येक सम्भव नीति का अनुसरण किया। सरकार की सक्रियता और जापानियों के परिश्रम से आर्थिक शक्तियों का प्रवाह खुल गया।

2

कृषि विकास

(Agricultural Development)

एक उद्योग प्रधान देश होते हुए भी कृषि के क्षेत्र मे जापान का महत्त्व कम नही है। कृषि कार्य प्रधानत छोटे पैमाने पर किया जाता है किन्तु पर्याप्त उन्नत है और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अग है। कृषि से ही सम्बन्धित पशु-उद्योग भी जापान मे बड़ा उन्नत है। फलस्वरूप दुग्धशालाओ का तेजी से विकास हो रहा है।

जापानी कृषि का विकास

(Agricultural Development in Japan)

जापानी की कृषि व्यवस्था राजनीतिक इतिहास मे होने वाले परिवर्तनो से प्रभावित होती रही है। इसके ऐतिहासिक विकास का अध्ययन हम निम्नलिखित भागो मे कर सकते हैं—

(1) तोकुगावा शासन काल मे कृषि,
(2) मेजी शासन काल मे कृषि,
(3) 1914 से 1932 के बीच कृषि,
(4) महान् मदी काल मे कृषि,
(5) द्वितीय महायुद्ध काल मे कृषि,
(6) सैनिक शासन काल मे कृषि, एव
(7) वर्तमान समय मे कृषि।

तोकुगावा शासन काल मे कृषि

सन् 1868 में मेजी पुनर्संस्थापना (The Meiji Restoration) से पूर्व जापान मे लगभग 1600 से 1867 तक महान् शक्तिशाली तोकुगावा परिवार का प्रभुत्व रहा। तोकुगावा युग मे कृषको की प्रधानता थी। देश की कुल जनसख्या का लगभग तीन चौथाई भाग किसानो का ही था। तोकुगावा घराने की समाप्ति के समय जापान की कुल कार्यशील जनसख्या लगभग 195 लाख थी जिसमे से 80 प्रतिशत के करीब लोग कृषि, वन और मछली उद्योगो मे लगे हुए थे।

तोकुगावा शासन काल मे जापानी कृषक वर्ग की स्थिति यूरोपीय दासो की तरह थी। उनकी स्वतन्त्रता पर कठोर प्रतिबन्ध लगे हुए थे। सामन्तवादी प्रथा ने

अपने चारो ओर नियन्त्रण और प्रतिबन्धो का एक जाल-सा बिछा रखा था। भूमि पर उनका जबरन कब्जा था और किसानो को घूमने-फिरने की आजादी नही थी। कृषक वर्ग प्रगतिशील नही बन सकता था। उसका रहन-सहन परम्परागत नियमो के अनुसार होना आवश्यक था।

तोकुगावा युग मे लगान की मात्रा इतनी अधिक थी कि किसानो को कुल उपज का 40 से 50 प्रतिशत भाग तक लगान के रूप मे देना होता था। जापानी अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान थी, किन्तु कृषि की उत्पादकता बहुत कम थी। कृषि-फसलो मे चावल, जौ, गेहूँ और सोयाबीन की प्रधानता थी। पर्वतीय प्रदेश होने से जापान के कुल क्षेत्र के लगभग 16 प्रतिशत भाग पर ही कृषि की जाती थी। कृषि की दशा बहुत पिछडी हुई थी और औसत जोत का आकार प्राय 1 2 एकड था। देहाती क्षेत्रो के सिंचित प्रदेशो मे चावल की फसल सबसे प्रमुख थी। दूसरे क्षेत्रो मे कपास, नील, सन आदि व्यापारिक फसलो की खेती भी की जाती थी। रेशम उद्योग कृषि के पूरक के रूप मे था। यह सभवत सभी देहाती इलाको मे विद्यमान था। तटवर्ती गाँवो के निवासी मछली मारने का धन्धा भी एक पूरक उद्योग के रूप मे अपनाए हुए थे। कृषि आय कम होने के कारण किसानो द्वारा कोई न कोई पूरक व्यवसाय अवश्य अपनाया जाता था।

कृषि की ही नही, किसानो की दशा भी बहुत खराब थी। सामन्तो के शिकार तो थे ही, ग्रामीण साहूकारो द्वारा भी उनका तरह-तरह से शोषण किया जाता था। कृषि-उपज बहुत कम होने से देश को अकालो का मुँह भी देखना पडता था। कृषि वर्ग मे इन अकालो का सामना करने की शक्ति नही थी।

मेजी शासन काल मे कृषि

तोकुगावा घराने के शोषण और दोषपूर्ण नीति के कारण उसका पतन हो गया तथा 1868 मे मेजी पुनर्सस्थापन हुआ अर्थात् सम्राट को जापान का राजसिहासन मिल गया। मेजी शासन-व्यवस्था स्थापित होने से जापान मे आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और कृषि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आरम्भ हुए।

मेजी पुनर्संस्थापन युग मे जापान में कृषि क्षेत्र मे उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। कृषि मे विभिन्न प्रकार के प्रयोगो को अपनाने का प्रयास किया गया और कृषि पर निर्भर जनसख्या का अनुपात घट गया। जहाँ 1868 मे जापान की कार्यशील जनसख्या का लगभग 80 प्रतिशत भाग कृषि पर आश्रित था वहाँ 1930 के आते-आते कृषि पर आश्रित जनसख्या का प्रतिशत 48 के आसपास और 1940 मे 41 के लगभग हो गया। इस दौरान जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हुई, लेकिन कृषि पर आश्रित अनुपात घटता गया।

मेजी शासन काल मे सरकार ने किसानो को सामन्तवादी प्रतिबन्धो से मुक्त करके उन्हे खेती के सुधरे हुए तरीके प्रयोग मे लाने को प्रोत्साहित किया। देश मे कृषि विद्यालय खोले गए और विदेशो मे कृषि के तरीको की शिक्षा के लिए विद्वानो को भेजा गया। किसानो को प्रशिक्षण देने के विभिन्न कार्यक्रम अपनाए गए। कृषि

के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र मे वृद्धि हुई और साथ ही खेती के सुधरे हुए तरीको, सिचाई की अधिकाधिक सुविधाओ आदि का विस्तार हुआ। कीडे-मकोडो और विभिन्न प्रकार को कृषि बीमारियो पर नियन्त्रण आदि से कृषि उत्पादन बढाया गया। जहाँ 1868 मे लगभग 2,579,000 चो (Cho) क्षेत्र मे खेती होती थी वहाँ 1908 मे लगभग 2,922,000 चो क्षेत्र में खेती होने लगी। जापान के व्यापारिक क्षेत्रो मे बिक्री के लिए विभिन्न प्रकार के व्यापारिक कृषि पदार्थ उत्पन्न किए जाने लगे। फलस्वरूप ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे उसी तरह सुधार होने लगा जिस तरह इगलैण्ड मे 15वी शताब्दी मे होने लगा था।

मेजी शासन-काल मे कृषि क्षेत्र के विस्तार के साथ ही कृषि उत्पादन भी तेजी से बढा। जहाँ 1879-83 मे चावल, जौ और गेहूँ का उत्पादन क्रमश 30,874 5,506 एव 2,219 हजार कोकू (एक कोकू बराबर 4 96 बुशल) हुआ था वहाँ 1909 13 को अवधि मे 50,242,9 677 एव 4 907 हजार कोकू हुआ।

यद्यपि मेजी शासन काल मे कृषि के तरीको मे पर्याप्त सुधार हुआ और उत्पादन मे भी वृद्धि हुई, किन्तु किसानो का जीवन अधिक नहीं सुधर सका। खेतो का आकार अभी भी अत्यन्त छोटा था। पहाडी प्रदेश होने के कारण चावल की खेती केवल छोटे प्रदेशो मे ही की जाती थी। मेजी शासन काल मे कृषि की दृष्टि से जो सुधार किए गए उनका उद्देश्य यह था कि सरकार अपने औद्योगिक एव सैनिक उद्देश्यो के लिए कर आदि के रूप मे अधिक रकम वसूल करे। मेजी शासन काल मे कृषि के सम्मुख अनेक समस्याएँ थी। यातायात के पर्याप्त साधनो का अभाव होन के कारण किसान अपनी उपज दूर के बाजारो में नही ले जा सकते थे। राजकीय व्यय में वृद्धि होने के कारण किसानो पर कर का बोझ बढ़ गया। फलत जापानी किसान अपनी जीविका निर्वाह करने में भी असमर्थ रहा और इसलिए महाजनो को अपनी भूमि को बेचने लगा। महाजनो द्वारा ऊँचा लगान वसूल किया जाता था। बढती हुई जनसख्या के कारण भूमि पर भार बढता जा रहा था और कृषि का उत्पादन घट रहा था।

1914 से 1932 के बीच कृषि

मेजी शासन काल के बाद जापानी कृषि में महान आर्थिक मन्दी काल तक विशेष परिवर्तन नही हुए। प्रथम महायुद्ध के दौरान कृषि की स्थिति असतोषजनक रही। प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ से 1932 के बीच किसान परिवारो की सख्या 55 लाख के लगभग बनी रही। जोतो का आकार भी बहुत कम बदला। जो मामूली परिवर्तन हुए वे बहुत छोट और बहुत बड फार्मो से सम्बन्धित रह। भूमि-व्यवस्था के क्षेत्र में भी बहुत कम परिवर्तन हुए।

1914 से 1932 की अवधि मे भोजन और कृषि के क्षेत्र मे चावल की प्रधानता बनी रही। कुल कृषि योग्य भूमि के लगभग 55 प्रतिशत भाग मे चावल की खेती की जा रही। 1920 तक तो चावल की खेती का क्षेत्र अधिक घटता रहा, लेकिन इसके बाद बहुत कम बढोत्तरी हुई। चावल की औसत उपज यथापूर्व

रही। चावल के बाद खाद्यान्नो के उत्पादन मे गेहूँ और जौ का मुख्य स्थान रहा। तीव्र गति से बढती हुई जनसख्या के अनुपात मे कृषि उपज मे वृद्धि न हो पाने से जापान को खाद्यान्नो की पूर्ति के लिए अपने उपनिवेशो पर, विशेषत कोरिया और फारमोसा पर आश्रित रहना पडा। अन्य कृषि पदार्थों मे 1914 से 1932 के दौरान काफी वृद्धि हुई। विभिन्न प्रकार की तरकारियो और फलो की खेती भी की जाने लगी।

महायुद्ध से आर्थिक मन्दी प्रारम्भ होने की अवधि मे कृषि की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन खाद और उर्वरको के प्रयोग मे हुए। विदेशी व्यापार के कारण किसानो की खाद तथा उर्वरको सम्बन्धी आवश्यकताएँ सुगमता से पूरी होती रही। महायुद्ध के बाद जापान ने भी अपने रासायनिक उद्योग का विकास किया।

इस काल मे यद्यपि कृषि उपज की मात्रा बढी, तथापि कृषि पदार्थों के मूल्य मे अत्यधिक परिवर्तन होने से किसानो की आर्थिक दशा अधिक नही सुधर सकी। महायुद्ध के दौरान चावल के मूल्य बढे, किन्तु बाद मे तेजी से गिरते गए। फलस्वरूप सरकार को इस मूल्य-ह्रास को रोकने के लिए स्वय क्रय-नीति का आश्रय लेना पडा। 1927 के बाद चावल की उपज काफी अच्छी होने से सरकारी प्रयत्नो के बावजूद इसके मूल्य में और अधिक गिरावट आ गई जिसका किसानो की आर्थिक दशा पर बहुत बुरा प्रभाव पडा।

कच्चे रेशम की खेती की प्रमुखता भी बनी रही। 1924 के बाद तो कच्चे रेशम का उत्पादन इतना अधिक बढा कि 1929 तक वह पहले की अपेक्षा लगभग तिगुना हो गया। चावल की भांति ही युद्ध काल के बाद कच्चे रेशम के मूल्य मे गिरावट आई लेकिन यह स्थिति शीघ्र ही सुधर गई। पर यह सुधार अस्थाई ही था क्योंकि महान मन्दी के समय लगने वाले भीषण झटके ने किसानो को झकझोर दिया। मछली उद्योग ने कृषि के पूरक व्यवसाय के रूप मे अच्छी उन्नति की।

महान मन्दी काल मे कृषि

महान मन्दी काल मे अन्य देशो की अर्थ-व्यवस्था के समान ही जापानी अर्थ-व्यवस्था को गहरा धक्का लगा। कृषि क्षेत्र मन्दी के झटको से ग्रस्त-व्यस्त-सा हो गया। कच्चे रेशम का मूल्य बहुत अधिक गिर गया और उसके निर्यात मे भी भारी कमी आ गई। चावल के मूल्य मे भी भारी गिरावट आ गई। फलस्वरूप किसानो की आय पर्याप्त घट गई। जापानी सरकार ने कृषि क्षेत्र मे मन्दी के प्रभाव को दूर करने का भरसक प्रयास किया। रेशम के उत्पादको को प्रोत्साहन देने और उनके घाटे को पूरा करने के लिए सरकार ने एक बडी रकम खर्च की। इसके मूल्य मे गिरावट को रोकने के लिए 1929 मे एक अधिनियम (The Silk Stabilisation and Indemnification Act) भी पारित किया गया। चावल के मूल्य को उचित स्तर पर स्थिर बनाए रखने के लिए 1933 मे एक कानून (The Comprehensive Rice Law) पारित किया गया। इसके अतिरिक्त 1932 मे दो अन्य कानून भी

बनाए जा चुके हैं जिनके अनुसार किसानो को अल्पकालीन और दीर्घकालीन ऋणो की सुविधाएँ प्रदान की गईं। करो मे परिवर्तन किए गए और किसानो की सहायता के लिए विभिन्न कार्यक्रम अपनाए गए।

इन समस्त व्यवसायो और सरकारी प्रयासो के बावजूद किसान सन्तुष्ट नही हो सके। उनका आरोप था कि उद्योग और सैनिक आवश्यकताओ की दृष्टि से उनकी अवहेलना की जा रही है। यद्यपि सरकार ने किसानो की स्थिति स्थाई रूप मे सुधारने के लिए 1932 मे कृषि आर्थिक पुनरुद्धार ब्यूरो (The Agricultural Economic Recovery Bureau) की स्थापना भी की लेकिन किसानो मे असन्तोष जारी रहा। वे कृषि क्षेत्र मे सरकारी नीति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो पर जोर देते रहे ताकि देश के आर्थिक विकास के लाभ का एक समुचित भाग उन्हे मिल सके।

द्वितीय महायुद्ध काल मे कृषि

महान मन्दी के दुष्प्रभावो ने जापानी कृषक वर्ग को बहुत झटके दिये थे। महान मन्दी के बाद उन्हे अपनी दशा मे सुधार होने की कुछ आशा हुई और तभी द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका ने आ घेरा। सैनिक तैयारियो के कारण कृषि क्षेत्र पर सरकार समुचित ध्यान न दे सकी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान जापानी कृषि और भी बुरी तरह प्रभावित हुई। प्रथम तो किसानो की एक बहुत बडी सख्या को सैनिको के रूप मे अपना जीवन खपा देना पडा और दूसरे कृषि के सामने रासायनिक खाद तथा उर्वरको की भारी कमी आ गई। इसके अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि का काफी भाग गैर कृषि उपयोगो मे प्रयुक्त किया गया। कृषि श्रमिको की इतनी कमी आ गई कि यन्त्रीकरण द्वारा उसे तत्काल पूरा करना सम्भव नही था। महायुद्ध की समाप्ति तक किसानो को साधारण कृषि यन्त्र मिलना भी कठिन हो गया।

महायुद्ध जनित परिस्थितियो का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि 1942 से ही कृषि कुशलता और कृषि उत्पादन मे भारी गिरावट आती गई। जहाँ 1937 मे फार्म उत्पादन का सूचकांक (1933-35=100) 110 6 था वहाँ 1944 मे यह केवल 77 6 रह गया। 1944 तक कुल जोते गये क्षेत्र मे भी लगभग 3% की गिरावट आ गई। 1945 मे जापान की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के विनाश के साथ ही कृषि की दशा और भी अवनत हो गई तथा उत्पादन का सूचकांक 60% तक गिर गया।

महायुद्ध के बाद जापानी कृषि और किसानो को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक हो गया कि कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जाएँ। इस दिशा मे अमेरिकन अधिकारियो ने, जिन्होने 1945 के बाद जापान का शासन चलाया कुछ महत्त्व पूर्ण कदम उठाए और फलस्वरूप युद्धोत्तरकाल मे जापानी कृषि को एक नया जीवन मिला।

सैनिक शासन काल मे कृषि

द्वितीय विश्व-युद्ध मे जापान की हार और आत्म-समर्पण के बाद अमेरिका

के जनरल मैकार्थर को शासन की बागडोर सौंपी गई। उनके सैनिक शासन काल मे जापान की कृषि मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। सैनिक शासन ने अनुभव किया कि देश मे कृषि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सुधार किए जाएँ। सैनिक शासन यह भी जानता था कि सेना का मुख्य आधार देहाती जमीदार हैं। कृषि की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक भूमि-सुधार किए गए। बड़े-बड़े किसानो को समाप्त कर दिया गया। सभी जमीदारो से एक निश्चित मात्रा से अधिक भूमि सरकार द्वारा ले ली गई और सरकार ने इसे जनता के हाथो बेच दिया। जमीदारो को उनकी भूमि के बदले पत्र-मुद्रा के रूप मे मुआवजा दिया गया था, किन्तु अवमूल्यन के कारण इसकी मात्रा बहुत थोडी रह गई। इस नीति से किसानो का ऋण कम हो गया और इनको अधिक गहन खेती के लिए प्रोत्साहित किया गया। युद्ध के बाद खाद्यान्न का अभाव था और इसलिए कृषको को उत्पादन बढाने से अधिक लाभ प्राप्त हो सका। युद्ध के बाद जापान कृषक स्वामियो का देश बन गया। 1949 तक जमीदारो से अतिरिक्त भूमि लेने और रैयतो को उसे बेच देने का काम पूरा हो गया। इस समय तक कुल जोती जाने वाली भूमि मे रैयती भूमि का प्रतिशत 46 से घटकर 8 तक पहुँच गया।

जापान में कृषि की वर्तमान अवस्था
(Present Position of Agriculture in Japan)

यो समूची अर्थ-व्यवस्था के सन्दर्भ मे देखे तो जापान मे कृषि का महत्त्व बडी तेजी से घटा है, फिर भी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का वह एक महत्त्वपूर्ण अग है। जहाँ 1950 मे कृषि से जापान की लगभग 3 4 करोड जनसख्या आजीविका कमाती थी वहाँ सन् 1970 मे यह सख्या घटकर केवल 2 7 करोड रह गई अर्थात् कुल जनसख्या का लगभग 18 प्रतिशत। जापान पर्वतो और द्वीपो का राष्ट्र है, अत यहाँ कृषि योग्य भूमि कुल भूमि की केवल 15% है।

जापान के सरकारी प्रकाशन के अनुसार जापानी किसान आज स्वय ही अपनी जमीन का मालिक है। कृषि योग्य भूमि के चप्पे-चप्पे पर सघन खेती होती है। यहाँ की पहाडियो और छोटे-छोटे पहाडो के ढलानो को काट-काट कर बड़े-बडे जीनो की तरह से चौरस भूमि निकाली जाती है और उसमे खेती की जाती है। जापानी फर्मों के छोटे आकार के कारण उनमे ट्रैक्टरो और दूसरी बडी-बडी फार्म-मशीनो का इस्तेमाल करना कठिन हो जाता था। केवल होक्कोइदो इसका अपवाद है जहाँ कृष्य भूमि खूब है। किन्तु फिर भी मशीनीकरण का विकास बडी तेजी से हुआ है और अनेक जापानी किसान अब अपनी भूमि मे यान्त्रिक हलो से खेती करते हैं। लगभग 85 से 90 प्रतिशत कृषक परिवार धान की खेती मे बिजली के हलो और अन्य मशीनो का उपयोग कर रहे हैं। साथ ही, धान की खेती वाली 80 प्रतिशत से भी अधिक भूमि पर इस प्रकार की मशीनों का उपयोग किया जा रहा है। खेती में श्रम की उत्पादकता प्रति व्यक्ति लगभग 40 प्रतिशत बढी है।

यहाँ की मुख्य फसल चावल है जो जापानियो का असली भोजन है। उसके

बाद गेहूँ और जौ का स्थान आता है। उन्नत तकनीको, सुधरे किस्म के बीजो और रासायनिक खादो के भारी उपयोग के कारण जापानी खेत ससार के सबसे अधिक उत्पादकता वाले खेतो मे आते हैं। प्रति एकड चावल की उपज का अनुपात जापान मे लगभग तीन, महाद्वीपीय चीन मे दो तथा अन्य एशियाई देशो मे एक है। पिछले दशक मे जापान मे चावल की फसलें बराबर इतनी प्रचुर रही हैं कि लगभग 120 लाख टन की उपज को किसी समय भरपूर फसल माना जाता था पर आज सामान्य माना जाता है। चावल के उत्पादन मे कृषि भूमि का लगभग 37 54 प्रतिशत भाग लगा हुआ है तथा चावल उत्पादन से होने वाली आय कुल कृषि आय की लगभग 57 प्रतिशत है। कृषि का देश की राष्ट्रीय आय मे कुल योगदान 1964 मे 8 9 प्रतिशत था और 1970 तथा बाद के वर्षों मे भी लगभग यही प्रतिशत है।

जापान मे अच्छे चरागाहो का अभाव है, इसलिए पशुओ का पालन-पोषण अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर ही हो पाता है। फिर भी पशुपालन जापानी अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख व्यवसाय है। लोगो की खान-पान की आदतें बदलती जा रही हैं। आज उनमे माँस की और दूध की चीजो की खपत पहले से कहीं अधिक हो गई है। नतीजा यह हुआ कि हाल ही के वर्षों मे पशुओ की सख्या बढती जा रही है। खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता की दृष्टि से जापान 80 प्रतिशत आत्म-निर्भर रहा है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक उपयोगो के लिए खेती की अन्य उपज का भी आयात होता है जैसे कच्चा रबड, सूत और ऊन। ये सब चीजें मिलाकर जापान के कुल आयात के लगभग 35 प्रतिशत के बराबर हो जाती है। कुछ वर्ष पूर्व दुनिया के कुल कृषि आयात मे जापान का हिस्सा 8 प्रतिशत था।

इधर के वर्षों मे खेती के ढाँचे में एक जो अन्य परिवर्तन आया है वह है रेशम के कीडे पालने के उद्योग मे निरन्तर कमी होते जाना। इसके साथ ही फसलो जैसे नारगी सेब और बेर आदि की उपज में काफी वृद्धि हुई। सच तो यह है कि जापान में तरह-तरह के फलो की उपज होती है जिनमें से कुछ का तो बहुत बडी मात्रा मे निर्यात होता है खासतौर से नारगियो और आडुओ का।

कृषि मे मशीनीकरण एव औद्योगिक विकास के कारण कृषि पर भार निरन्तर कम होता जा रहा है। 1950 में कृषि में लगभग 360 लाख श्रमिक नियोजित थे जो घटकर 1970 में लगभग 11० लाख और 1977 मे लगभग 80 लाख रह गये। इस प्रकार वर्तमान में कृषि में केवल श्रम शक्ति का लगभग 14 प्रतिशत भाग ही नियोजित है।

जापान मे कृषि की सफलता मुख्यतया गहन कृषि पर आधारित है। जापानी कृषि में जहाँ प्रति एकड लगभग 2352 पौंड चावल उत्पन्न होता है वहाँ अमेरिका मे लगभग 1390 पौंड और भारत मे लगभग 770 पौंड उत्पन्न होता है। 1977 मे जापान मे लगभग 35 लाख हैक्टेयर मे केवल चावल की खेती की गई जबकि 25 लाख हैक्टेयर भूमि मे चाय, सन, सोयाबीन आदि की औद्योगिक फसलें उगाई

गई। चावल ही जापान की मुख्य कृषि उपज है। 1977 में लगभग 3 लाख हैक्टेयर भूमि मे लगभग 10 लाख मीट्रिक टन गेहूँ उत्पन्न हुआ।

जापान मे, जो कि एक औद्योगिक राष्ट्र है, खाद्यान्न के अभाव की पूर्ति के लिए प्राय. प्रतिवर्ष खाद्यान्न आयात करना पडता है। 1960 के पूर्व जापान मे खाद्यान्न का आयात कुल लगभग 80 करोड डॉलर था जो बढकर 1970 मे लगभग 150 करोड डॉलर और 1977 मे लगभग 800 करोड डॉलर हो गया। जापान को अपने चीनी उद्योग के लिए लगभग 70 से 80 प्रतिशत कच्चा माल विदेशो से आयात करना पडता है। जापान मे रेशम का उत्पादन औसतन 1 लाख टन सालाना है।

जापान की गणना विश्व के मुख्य औद्योगिक राष्ट्रो मे की जाती है तथापि व्यवसाय की दृष्टि से आज भी वह एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। जापान के आर्थिक विकास की यह एक मुख्य विशेषता रही है कि वहाँ कृषि क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र में एक दूसरे के पूरक के रूप मे कार्य किया है। कृषि ने औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है तथा आधुनिक औद्योगिक विकास को सम्भव बनाया है।

जापान में भूमि-सुधार
(Land Reforms in Japan)

जापान मे कृषि की स्थिति उस समय भारत से अधिक अच्छी नही थी जब वह मित्र राष्ट्रो के सर्वोच्च कमाण्डर के हाथो में आया। उस समय अधिकतर भूमि बडे जमीदारो के हाथ मे थी और खेत को जोतने वाला किसान गम्भीर निर्धनता की स्थिति में था। फलस्वरूप वास्तविक जोतदार आसामी बन गए। सन् 1946 में लगभग 70 प्रतिशत कृषक जनता किसी न किसी रूप मे लगान वाली भूमि पर निर्भर थी। किसानो की संख्या बढने के कारण भूमि का मूल्य बहुत ऊँचा हो गया। गरीब आदमियों को उन परिस्थितियो मे भू स्वामियो से जमीन प्राप्त करने के लिए अनेक अनुपयुक्त और सर्वाधिक नुकसानपूर्ण शर्तें स्वीकार करनी पडी। गरीब आसामी को जमीदारो के लिए अपनी मेहनत के फलो का आधे से अधिक भाग देना पडता था। मित्र-राष्ट्रो के सर्वोच्च सेनापति ने 9 दिसम्बर, 1945 को एक निर्देश जारी किया ताकि सामन्तवादी शोषण के आर्थिक दबाव को समाप्त किया जा सके। इसमें जापानी सरकार को ऐसे आवश्यक कदम उठाने का आदेश दिया ताकि जापान की भूमि मे खेती करने वाले किसान अपने परिश्रम का फल प्राप्त करने का अधिक अवसर पा सकें। इस अधिनियम के अन्तर्गत किए गए भूमि-सुधारो को निम्नलिखित 4 शीर्षको मे विभाजित किया जा सकता है—

1. भूमि पर सीमा-निर्धारण—भूमि को काम मे न लेने वाले जमीदारो को अपनी भूमि आवश्यक रूप से राज्य के लिए बेचनी पडेगी। खेत न जोतने वाले, किन्तु उसी स्थान पर रहने वाले जमीदार अपने पास केवल 2·45 एकड भूमि रख सकते थे। कुछ प्रदेशो जैसे होक्काइडो मे भूमि की अधिकतम मात्रा 9 80 एकड रखी गई। इसके अतिरिक्त भूमि को राज्य के लिए बेचना अनिवार्य था। जो किसान अपनी भूमि स्वय जोतते हैं उनको शिकोकू, कीशू और होन्शू प्रान्तो में

4 35 एकड और होक्काइडो में 29 40 एकड से अधिक भूमि न रखने की बात कही गई। अनुमान था राज्य द्वारा इस प्रकार खरीदा जाने वाला क्षेत्र 4 90 मिलियन एकड से भी अधिक था।

2 भूमि की कीमत और भुगतान की शर्तें—भू-स्वामी और आसामी भूमि के स्वामित्व के परिवर्तन के बारे में प्रत्यक्ष रूप से वार्ता नहीं कर सकते थे। भूमि राज्य द्वारा खरीदी जाती थी और राज्य ही उसे इच्छुक आसामियो को बेच देता था। अधिनियम के पारित हो जाने के बाद आसामियो को बेदखल होने से बचाने के लिए यह व्यवस्था की गई थी। भूमि का स्वामित्व इस आधार पर निश्चित किया जाएगा कि 23 नवम्बर, 1945 को सम्बन्धित व्यक्ति भूमि पर अपना वास्तव में स्वामित्व रखता था।

इस प्रकार आसामियो को भूमि की अधिक कीमत देने से बचाया गया और साथ ही उनको अनुचित रूप से बेदखल करने के विरुद्ध भी सुरक्षा प्रदान की गई। यह व्यवस्था की गई कि राज्य से जमीन खरीदने वाला आसामी या तो एक ही बार मे कीमत का भुगतान कर सकता था अथवा उसका एक भाग पहली किश्त मे देकर दूसरे भाग अन्य 30 किश्तो मे देने का निर्णय ले सकता था। ली जाने वाली ब्याज की दर अधिक नही थी। वास्तविक व्यवहार में आसामियो ने भूमि खरीदने की पूरी कीमत एक या दो किश्तो मे चुका दी क्योंकि उस समय कृषि उत्पादनो की कीमतें पर्याप्त ऊँची थी ताकि वे शीघ्र ही भूमि की कीमत का भुगतान कर सकें। आसामियो द्वारा कृषि की पुन बिक्री पर रोक लगा दी गई। केवल राज्य के अभिकरण के माध्यम से ही एसा किया जा सकता था।

3 भूमि सुधारो का प्रयत्न—भूमि सुधारो को प्रशासित करने के लिए 3 स्तरा वाले सगठन की स्थापना की गई।

(A) केन्द्रीय भूमि आयोग—केन्द्रीय भूमि आयोग को नीति-निर्माण का काम सौंपा गया। इसमे कुल मिलाकर 22 सदस्य होते हैं जिनमे 8 जमींदार, 8 आसामी 4 विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और 2 राष्ट्रीय फार्म सस्था के प्रतिनिधि होत हैं। कृषि और वाणिज्य मन्त्री इस आयोग का सभापति होता है।

(B) प्रीफेक्चर भूमि आयोग—यह आयोग प्रीफेक्चर के स्तर पर कार्य करने के लिए बनाए गए। इनमे 9 जमींदार, 10 आसामी व 4 स्वामी किसान होते हैं। इन सबको अपने-अपने उन प्रतिनिधियो द्वारा नियुक्त किया जाता है जो स्थानीय भूमि आयोगो मे रहते हैं। यह आयोग स्थानीय आयोगो के विरुद्ध अपील सुनता है और उनके निर्णयो को अस्वीकार कर सकता है।

(C) स्थानीय भूमि आयोग—इनमे भू-स्वामी, आसामी और दो स्वामी-कृषक होते हैं। इनके अतिरिक्त 4 शिक्षित और पढे-लिखे व्यक्ति होते हैं जो स्थानीय स्तर पर कार्य करते हैं।

4 आसामी व्यवस्था मे सुधार—इन सुधारो के द्वारा आसामियो को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सका वरन् अभी भी 10 प्रतिशत भूमि इन्ही के द्वारा

जोती जाती थी। कृषि भूमि समायोजन अविनियम पारित हुआ। उसमे यह व्यवस्था की गई कि लगान का भुगतान वस्तु के रूप मे नही किया जाएगा। यह भी कहा गया कि आसामी द्वारा भू-स्वामी को दिया गया लगान सूखी भूमि के कुल उत्पादन के 15 प्रतिशत से अधिक नही होगा। जमीदार और आसामी के बीच किए जाने वाले मौखिक समझौतो को अवैध घोषित किया गया। कानून द्वारा यह भी व्यवस्था की गई कि यदि आसामी द्वारा भूमि पर कुछ स्थाई प्रकृति के सुधार किए गए हैं तो उनके बदले उन्हे मुआवजा दिया जाएगा।

इस प्रकार भूमि-सुधार के लिए दोनो दिशाओ मे प्रयास किए गए। एक ओर आसामियो की परिस्थितियो को सुधारा गया और दूसरी ओर बडी सख्या मे आसामिया को भू-स्वामी बना दिया गया। इस सुधार के द्वारा 90 प्रतिशत जोती जाने वाली भूमि को भूमि क जोतदारो के स्वामित्व में ला दिया गया। इस प्रकार इस आश्वासन को पूरा करने की चेष्टा की गई कि भूमि उसे जोतने वाले की होती है।

जापानी कृषि की आधुनिक प्रवृत्तियाँ एव समस्याएं

1 जापान में छोटे-छोटे खेत बिखरे पडे हैं जिनका औसत आकार 1 हैक्टयर से भी कम है। अधिकाश खेतो क उपभाजन और उपखण्डन के फलस्वरूप ऐसे खेनो क 15-16 टुकडे तक हैं।

2 कृषि उन्नत रूप मे वैज्ञानिकीकृत हो चुकी है। वर्तमान मे छोटे आकार के आधुनिक यन्त्रो का उपयोग बढ रहा है।

3 कृषि-उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि के बावजूद राष्ट्रीय आय मे कृषि का भाग घटा है। यह कुछ वर्ष पूर्व जहाँ 18 प्रतिशत था वहाँ अब लगभग 9 प्रतिशत ही रह गया है। इसका मुख्य कारण औद्योगिक विकास की तीव्र गति है।

4 जापानवासियो मे अपनी भूमि से अत्यधिक प्रेम की प्रवृत्ति विद्यमान है, अत निकट भविष्य मे भी चकबन्दी की सभावना बहुत कम है।

5 जापान की कृषि की सफलता मुख्यतया गहन-कृषि पर आधारित है और जापानी कृषि मे व्यवसायी दृष्टिकोण की प्रधानता है।

6 जापान में कृषि मे उन्नत बीजो तथा रासायनिक उर्वरको का प्रयोग निरन्तर बढता जा रहा है। जापान प्रति एकड उत्पादन मे नये कीर्तिमान स्थापित करता रहा है। 1952 को यदि आधार वर्ष मानें तो जहाँ 1955 मे कृषि-उत्पादन का सूचकाक 125 था वहाँ 1977 में यह लगभग 170 हो गया।

7 जापान मे कृषि ने औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। कृषि-जन्य खाद्यान्नो के मूल्य मे वृद्धि के फलस्वरूप जापानियो की खाने की आदत मे परिवर्तन आता जा रहा है और वे दूध, माँस, फल, मछली का प्रयोग अधिक करने लगे हैं।

8 कृषि मे भारी उन्नति के बावजूद जापान खाद्यान्नो की दृष्टि से आत्म

निर्भर नहीं है। खाद्यान्नों के अभाव की पूर्ति के लिए खाद्यान्नों का आयात निरन्तर बढ़ता जा रहा है। 1960 में यह आयात लगभग 80 करोड डॉलर था जो बढ़ कर 1977 तक 800 करोड डॉलर और वर्तमान मे 900 डॉलर से भी अधिक का हो गया है।

9 जापान में कृषि-योग्य समतल भू-भाग की कमी है। मैदानी भाग बहुत छोटा और बिखरा हुआ है। इसलिए जापानी खेतो का आकार भी छोटा है।

10 कृषि के वैज्ञानीकरण के कारण इस क्षेत्र मे नियोजित श्रमिको की सख्या निरन्तर घटती जा रही है।

11 जापानी कृषि मे पूँजी-निर्माण की गति कम होती जा रही है और सस्ती कृषि-साख का अभाव बढ रहा है। इन सब कारणो से कृषकों की सीमान्त बचत कम है।

12 कृषि जापानी अर्थ-व्यवस्था की एक बहुत कमजोर कडी है और कृषि मे लाभ-दर औद्योगिक क्षेत्र के मुकाबले बहुत कम है। जापान मे कृषि मुख्यतया सरकारी अनुदान और सरक्षण पर आधारित है। फिर भी जापानी कृषि का व्यावसायिक दृष्टिकोण विश्व की कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्थाओं के लिए एक "विकास मॉडल" प्रस्तुत करता है।

कृषि के लिए राज्य की सहायता
(State Aid to Agriculture)

जापान मे प्रारम्भ से ही राज्य ने कृषि के विकास मे रुचि ली है। मेजी शासन काल मे भी राज्य कृषि के विकास के लिए सक्रिय योगदान करता था। 20वीं शताब्दी मे यह प्रवृत्ति बढ गई। कृषि महाविद्यालय स्थापित किए गए और खेती-बाडी के तरीको मे सुधार लाने के लिए तथा विदेशी बीजो को जापान की परिस्थितियो मे अपनाने मे सहायता करने के लिए कृषि प्रयोगात्मक स्टेशन स्थापित किए गए हैं। जापान की सरकार कृषि की सहायता के लिए हर दृष्टि से सामने आई। सरकार द्वारा फार्म व्यवस्थापन किया गया, कृषि वित्त की व्यवस्था की गई, कीमत स्थायित्व लागू किया गया, भूमि नीति और गेहूँ नीति को क्रियान्वित किया गया, सरकार ने कृषि के विकास की दृष्टि से जो विभिन्न कार्य किए, उनमे उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं—

(1) **कृषि-वित्त की व्यवस्था**—*सन् 1896 में एक कानून पास किया गया* जिसके अनुसार 10 मिलियन येन की पूँजी से युक्त एक बैंक की स्थापना की गई जो किसानों को अचल सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण दे सके। इन ऋणों का भुगतान वार्षिक किश्त के रूप मे 50 वर्ष तक किया जाना था। बैंक को यह भी शक्ति दी गई कि वह सरकारी सत्ताओं, सहकारी समाजो और मछली सघो को ऋण दे सके। इसके अतिरिक्त 46 कृषि और औद्योगिक बैंक भी स्थापित किए गए। वे हाईपोथिक बैंक से ऋण ले सकते थे और उन सभी कार्यों को सम्पन्न कर सकते थे जो हाईपोथिक बैंक को सौंपे गए। कुछ समय में बैंक की वित्तीय स्थिति

इतनी सुधर गई कि इसने 750 मिलियन येन का ऋण 1933 तक प्रदान किया। अचल सम्पत्ति पर दिए जाने वाले ऋणो की मात्रा 1921 और 1931 के बीच 15 प्रतिशत बढ गई। सरकारी वित्तीय सहायता सहकारी कार्यगृहो और बाद फैक्ट्रियो को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान की गई। राज्य ने रीलिंग मिलो की स्थापना पर जोर दिया ताकि छोटे सिल्क उत्पादको को बडे रीलरो के वित्तीय नियन्त्रण से बचाए रखे।

1922 मे राज्य ने आवश्यकता वाले किसानो को डाक घर के सुरक्षित कोष एव जीवन बीमा पॉलिसी मे से ऋण प्रदान किया। 1925 तक लगभग 17 मिलियन येन का ऋण इस प्रकार दे दिया गया। 1916 मे जब कृषि-कीमतें निरन्तर गिरने लगी तो सरकार ने उनको रोकने के लिए वेयर हाउसिंग व्यापार अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम सरकारी वेयर हाउसो मे रखे हुए माल पर साख प्रदान करने की अनुमति देता है। 1925 तक सहकारी समितियो ने 1741 वेयर हाउसो की रचना की। सन् 1920 मे केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित किया गया जिसने 1924 के बाद काम करना प्रारम्भ किया। सन् 1924 मे एक थोक सहकारी समाज स्थापित किया गया। 1927 मे जापान मे 1400 सहकारी समितियाँ थी। इनकी सख्या 1937 मे 16000 हो गई जिसके सदस्य 61 लाख थे। सन् 1932 मे विशेष ऋण और हानि मुआवजा कानून पारित किए गए ताकि केन्द्रीय सहकारी बैंक और बन्धक बक दोनो दीर्घकालीन और अल्पकालीन ऋण किसानो को प्रदान कर सकें। सरकार द्वारा किसानो की नकद आय को बढाने के लिए राहत कार्य भी प्रारम्भ किए गए। मन्दी के समय रेशम की कीमत को बनाए रखने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की गई। इन सहायताओ का मुख्य भाग कृषि-भूमि के सुधार, देहाती नालियो और जल व्यवस्था मे सुधार आदि के काम मे लिया गया।

2 कीमत स्थायित्व—राज्य द्वारा किया गया दूसरा मौलिक प्रयास कीमत स्थायित्व मे सम्बन्धित था। कृषि उत्पादनो की कीमतें बुरी तरह से हिल रही थी इसलिए राज्य को उन्हे बुद्धिपूर्ण स्तर पर स्थिर करना पडा। सन् 1921 मे चावल नियन्त्रण अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार सरकार को चावल की पूर्ति नियमित करने के लिए आवश्यकतानुसार चावल खरीदने, बेचने, बदलने और स्टोर करने की शक्ति दी गई। इस कार्य के लिए 200 मिलियन येन का प्रारम्भिक कोष प्रदान किया गया। चावल की घटती हुई कीमतो को केवल राज्य द्वारा चावल खरीद कर नही रोका जा सका। 1925 मे एक कानून द्वारा राज्य को कीमतो पर नियन्त्रण लगाने की शक्ति मिल गई। इन प्रयासो के परिणाम-स्वरूप कुछ समय के लिए कीमतो मे गिरावट पर रोक लग गई किन्तु आर्थिक मन्दी के बाद कीमतो मे फिर से गिरावट आ गई। 1930 मे राज्य ने अन्य चावल कानून पास किया। इसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि यदि कीमतें नियन्त्रण-स्तर से नीचे गिर जाएँगी तो राज्य खरीददारी कर लेगा और यदि अधिकतम स्तर से ऊपर उठ जाएँगी तो राज्य बिक्री करेगा। 1933 के सशोधन ने सरकार को

न्यूनतम और अधिकतम कीमतें निश्चित करने और चावल नियमन तथा चावलों के आयात पर लाइसेंस लगाने के लिए एक चावल मण्डल की स्थापना की शक्ति दी। कीमतों के निम्नलिखित सूचकांक के आधार पर सरकार की सफलता स्पष्ट हो जाती है—

कीमत सूचकांक
(आधार वर्ष 1925=100)

वर्ष	कीमत सूचकांक
1929	80 4
1930	62 2
1931	44 6
1932	80·9
1933	51 9
1934	63 0
1935	71 5

3. रेशम या सिल्क नीति—मार्च 1930 में सिल्क की कीमतें स्थाई बनाने से सम्बन्धित अधिनियम पारित हुआ। इस समय 1932 की मन्दी के कारण सिल्क की कीमतें गिर रही थी। इस कानून के अनुसार सिल्क उत्पादकों के लिए क्षति-पूर्ति की व्यवस्था की गई। इनके परिणामस्वरूप सरकार के ऊपर लगभग 29 5 मिलियन येन का अतिरिक्त भार बढ़ गया।

4. गेहूँ नीति—गेहूँ के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए और किसानों के कष्टों को दूर करने के लिए जापानी सरकार ने विभिन्न प्रयास किए। 1932 में सरकार ने पंचवर्षीय योजना अपनाई। गेहूँ और आटे पर करों की मात्रा बढ़ाई गई। गेहूँ के उत्पादन के लिए सुधरे हुए साधनों और प्रणालियों को काम में लाया जाने लगा। बाजरे तथा जौ के स्थान पर गेहूँ का प्रयोग किया जाने लगा। पंचवर्षीय योजना द्वारा गेहूँ के उत्पादन को 1937 तक 50 मिलियन बुशेल बढ़ाने की योजना बनाई गई और किसानों की आय 30 प्रतिशत बढ़ाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया।

5 भूमि क्रय-नीति—राज्य ने एक 25 वर्षीय कार्यक्रम निर्धारित किया जिसके अन्तर्गत आसामी को वह भूमि खरीदने की सुविधाएँ प्रदान की जानी थी जिसे वह जोतता है। कार्यक्रम ने 1 2 लाख किसानों को 1 3 लाख एकड़ भूमि खरीदने की व्यवस्था की। इस योजना से केवल 2 प्रतिशत ही किसान लाभ उठा सके।

6. भूमि-सुधार नीति—किसानों को अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया गया और उनको खेती-बाड़ी के व्यापक तथा गहन दोनों तरीके बताए गए। इसके लिए अच्छे बीजों और अच्छी खाद को लोकप्रिय बनाया गया। खेती-बाड़ी के गहन तरीकों को लोकप्रिय बनाकर सरकार प्रति एकड़

अधिक उत्पादन कर सकती थी। यह 1870 में 94 16 था और 1924 में यह काफी बढ गया।

जापान के कृषि विकास मे आसामी व्यवस्था सबसे बडी बाधा थी। सरकार ने 20 जुलाई, 1946 को भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाया ताकि आवश्यकता के अनुसार भूमि खरीदी और बेची जा सके तथा कृषक स्वामियो की स्थापना की जा सके। मित्र-राष्ट्रो के अधिकार के समय भूमि प्रशासन की दृष्टि से उल्लेखनीय सुधार हुए। भू-स्वामित्व की व्यवस्था को सुधार दिया गया और इस प्रकार 90% भूमि का स्वामित्व स्वय किसानो के हाथो मे आ गया।

7 **कृषि-आर्थिक क्षति-पूर्ति ब्यूरो**—उपर्युक्त प्रयासो के अतिरिक्त जापानी सरकार ने 1932 मे कृषि आर्थिक क्षति-पूर्ति ब्यूरो की स्थापना की ताकि किसानो की मुसीबतो को कम किया जा सके। किसानो की उत्पादन-लागतें बहुत ऊँची उठ गई थी। ब्यूरो को यह काम भी सौंपा गया कि वह फाम के नेताओ को प्रशिक्षित करे ताकि वे उत्पादन और वितरण को नियन्त्रित कर सकें तथा भूमि पूँजी का समानतापूर्ण रूप से प्रयोग कर सकें।

8 **सहकारी आन्दोलन**—जापान मे सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ एव प्रगति सरकार की पहल एव समर्थन के आधार पर हुई थी। सहकारी आधार पर बनाए गए स्टोर हाउसो और उर्वरक फैक्ट्रियो को सरकारी सहायता प्रदान की गई।

इस प्रकार जापान की सरकार ने अपने देश की कृषि की विभिन्न समस्याओ का निराकरण करने के लिए अनेक सजग प्रयास किए हैं। भारत जापान के अनुभवो से पर्याप्त लाभ उठा सकता है। कीमत स्थायित्व, देहाती वित्त, फार्म-व्यवस्थापन आदि के क्षेत्र मे जापान ने जो कदम उठाए हैं वे भारत के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं।

भारत के लिए उपयोगिता
(Utility for India)

जापान के अनुभवो की भारत के लिए क्या उपयोगिता है, इसका अध्ययन करना इस दृष्टि से उपयोगिता रखता है कि हम भी अपनी समान समस्याओ के लिए इन तरीको को अ ना सकते हैं। भारतीय कृषि के लिए जापान की कृषि मे जो सबक मिलत हैं व निम्नलिखित है—

1 जापान ने साम्राज्यवादी उद्देश्यो के पीछे अपने देश की कृषि की अवहलना की। विभिन्न उपनिवेशों की, प्राप्त करन और बनाए रखने की कामना मे उसने कृषि की अपेक्षा अपने औद्योगिक प्रसार पर अधिक ध्यान दिया। भारत ने पचशील और तटस्थता की विदेश नीति को अपनाकर इस सम्भावना को ही निरस्त कर दिया है। कृषि के विकास को आगे बढाने के लिए यह नीति अपनाना आवश्यक भी है।

2 जनसख्या की वृद्धि जापान जैसे उन्नत देश मे भी एक गम्भीर समस्या बन जाती है। इसके परिणामस्वरूप भूमि पर दबाव मे वृद्धि हो जाती है। ऐसी

स्थिति मे यह स्पष्ट है कि भारत को अपनी कृषि का विकास करने के लिए जनसंख्या-वृद्धि पर आवश्यक रूप से रोक लगानी चाहिए।

3 देहाती ऋणग्रस्तता की समस्या केवल तभी सुलझाई जा सकती है जबकि राज्य उसमे पूरी तरह से रुचि ले। जापान मे देहाती साख की व्यवस्था के लिए बैंको का जाल बिछा दिया गया है। भारत मे इसी प्रकार के कदम उठाए जा रहे हैं।

4. किसानो को राहत प्रदान करने के लिए तथा उनके दुःखो को दूर करने के लिए कीमत स्थिरीकरण की नीति अपनाई जा सकती है यद्यपि यह नीति पर्याप्त महँगी होती है और हमेशा सफल भी नही हो पाती, फिर भी यह एक ठोस कदम है।

5. जापान की भाँति भारत मे भी किसानो की अल्प आय को सहारा देने के लिए लघु उद्योगो तथा कुटीर उद्योगो का प्रसार किया जा सकता है।

6 भारत मे कृषि की अर्द्ध-बेरोजगारी को दूर करने के लिए जापान की भाँति कृषि से सम्बद्ध उद्योगो का विकास किया जा सकता है। यहाँ गौ-पालन, दुग्धशालाएँ, चारागाह-पालन आदि व्यवसाय अपनाकर भूमि के भार को कम किया जा सकता है। भारतवर्ष फसल की खेती की अपेक्षा मिश्रित खेती का तरीका भी अपना सकता है। ये प्रयास देश की बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

जापान की कृषि जो 1850 मे पर्याप्त पिछड़ी हुई थी आज वह उन्नत वैज्ञानिकीकृत हो चुकी है। जापान मे यह परिवर्तन मुख्यत इसलिए आया क्योकि उसने इस परिवर्तन की चार न्यूनतम शर्तो को पूरा कर लिया। ये शर्तें हैं—(1) इस प्रकार की दूरदृष्टि वाला नेतृत्व होना चाहिए जो अतीत से पूर्णत भिन्न भविष्य की परछाइयो को समझ सके। (2) इस नेतृत्व का सरकार की सत्ता पर निरन्तर एव स्थायी रूप मे अधिकार रहना चाहिए। ऐसा न होने पर आय को निवेश में नही बदला जा सकेगा तथा उन परम्परागत संस्थाओ को नही बदला जा सकेगा जो परिवर्तन का विरोध करती हैं। (3) अर्थ-व्यवस्था इतनी सशक्त होनी चाहिए कि वह महत्त्वपूर्ण स्तर पर साधनो का निवेश कर सके। (4) उद्योग मे श्रम की पर्याप्त पूर्ति हो। जापान मे इन सभी पूर्व-शर्तो को पूरा किया जा सका और इसलिए उसने कृषि के क्षेत्र मे इतनी प्रगति की।

3

प्रमुख आधुनिक उद्योगों के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

(A Few Important Facts About Principal Modern Industries)

द्वितीय महायुद्ध मे तहस-नहस हो गए जापान ने न केवल अपने घावो को भर ही लिया है बल्कि वह आधुनिक विश्व का एक महान औद्योगिक राष्ट्र बन गया है। रूस, अमेरिका और पश्चिमी जर्मनी के बाद आर्थिक समृद्धि और औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से जापान की ही गणना की जाती है। जापान ने वृहद् और लघु दोनो ही प्रकार के उद्योगो मे आश्चर्यजनक प्रगति की है।

जापान मे उद्योग वर्तमान दशा

(Industry in Japan Present Position)

वतमान शताब्दी के आरम्भिक वर्षो मे जापानी अर्थ-व्यवस्था मे श्रम-प्रधान उत्पादन का बोलबाला था और आज पूँजी-प्रधान उद्योगो के प्रति विशेष आग्रह है—यानी उत्पादन का क्रम हल्के से भारी उद्योग की ओर रहा है। अर्थ-व्यवस्था के इस परिवर्तन-चक्र के इद गिर्द ही आधुनिक जापान की कहानी घूमती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले जापान के उद्योग—विशेष रूप से हल्के औद्योगिक उत्पादन मे लगे हुए उद्योग-काफी विकसित थे। चौथे दशक मे भारी उद्योगो का द्रुत परिवर्तन शुरू हुआ और वेग धारण करता गया। युग की माँगो से इस परिवर्तन को और भी गति मिल गई। परन्तु अगस्त, 1945 मे जब युद्ध का अन्त हुआ तब तक जापान का अधिकतर औद्योगिक सयत्र नष्ट हो चुका था।

पिछले दो दशको मे मोटे तौर पर आर्थिक विकास के तीन दौर रहे हैं। पहला दौर 1945 से 1952 तक रहा। इस दौर को हम पुनर्निर्माण का युग कह सकते हैं। इस दौर मे औद्योगिक क्षमता का तेजी से दुबारा निर्माण किया गया। 1953 के आरम्भ तक युद्धोत्तर पुनर्निर्माण की माँग प्राय पूरी हो चुकी थी।

दूसरे दौर का प्रसार 1953 से 1959 के आरम्भ तक रहा। इसे हम अपनी स्थिति मजबूत करने का दौर कह सकते हैं।

जापान के युद्धोत्तर आर्थिक निर्माण का तीसरा दौर अभी पूरा हुआ है। इस काल मे, उद्योगो को फिर स व्यवस्थित किया गया और उनका विस्तार किया गया और राष्ट्र के औद्योगिक ढाचे का आधार निश्चित रूप से भारी उद्योग बन गए।

अब यह कहा जा सकता है कि अपने अनवरत विकास-क्रम मे जापान ने एक नए दौर मे प्रवेश किया है। यह दौर परिणाम के विस्तार का नही, गुण की वृद्धि का दौर है जबकि अब तक सबसे ज्यादा दौर परिणाम के विस्तार का रहा है। पूँजी के भरपूर उपयोग से ही देश की औद्योगिक सुविधाओ को द्रुत आधुनिकीकरण हुआ है। एक अध्ययन के अनुसार नए वैयक्तिक पूँजी निवेश की औसत जापान मे अमेरिका के स्तर से हाल ही के वर्षों मे प्राय दुगुनी रही है।

जापान के आर्थिक पुनरुत्थान के व्यावहारिक प्रतीक रासायनिक और शैल-रासायनिक उद्योगो तथा भारी मशीन-उद्योग है। इन उद्योगो की कृपा से ही आज जापान की गिनती दुनिया के सबसे ऊँचे औद्योगिक राष्ट्रो मे होती है।

तकनीकी स्तरो का निरन्तर और क्रमश ऊँचे उठना तथा उद्योगो मे नई शिल्प वैज्ञानिक प्रक्रियाओ के प्रयोग का इस आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जहाँ तक "पोत-निर्माण" का सम्बन्ध है, "ब्लाक-पद्धति" का उपयोग करके जापानी यार्ड दुनिया के सबसे बडे टैंकरो का निमार्ण कर रहे हैं? शैल-रासायनिक उद्योग के अन्तर्गत उद्योग और उपभोक्ता दोनो के लिए नई-नई चीजें पैदा की जा रही हैं, इलैक्ट्रानिकी के क्षेत्र मे जापान घर और आकाश दोनो के लिए नए उपकरण तैयार कर रहा है। परिवहन के क्षेत्र मे देखे तो न्यू तोकाइदो लाइन की सुपर-एक्सप्रेस गाडियाँ ससार की सबसे तेज रफ्तार वाली गाडियो मे हैं। विदेश-व्यापार मे भी जापान और शिल्प विज्ञान दूसरे देशो को भेज रहा है—विशेष रूप से सचार, इलैक्ट्रानिकी और रासायनिक उत्पादनो के क्षेत्र मे।

जापान की औद्योगिक प्रगति का एक अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 1959 से 1969 के मध्य ही औद्योगिक सूचकाक चार गुना बढ गया था और 1953 से 1959 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन मे औसतन 10–9 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई। कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित सयुक्त राष्ट्र सघ की एक विज्ञप्ति के अनुसार 1958–67 के दस वर्षों में जापान का औद्योगिक उत्पादन लगभग 245 प्रतिशत बढा जबकि उसी अवधि मे रूस, सयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन के *औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि क्रमश 121 प्रतिशत, 71 प्रतिशत और 38 प्रतिशत* हुई। यदि 1934–36 को आधार वर्ष मानें तो 1937 मे जापानी औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक 130 था जो गिरकर 1946 में केवल 31 रह गया। युद्धोत्तर काल में जापान के औद्योगिक क्षेत्र में विस्फाटक प्रगति हुई और फलस्वरूप 1951 में यह सूचकांक 114 से बढकर 1970 मे 1870 हो गया और 1977 में यह सूचकांक लगभग 3,000 हो जाने का अनुमान था। इस प्रकार 1951 के सूचकांक की तुलना मे 1977 तक 26 गुणा से भी अधिक वृद्धि हुई और यदि 1946 को लें तो 1977 तक लगभग 97 गुणा वृद्धि हुई। यदि 1960 को आधार

वर्ष (1960–100) मान कर औद्योगिक प्रगति पर दृष्टिपात करे तो 1935 के मुकाबले जापानी उद्योग मे 1977 तक सामान्यत 30 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई। 1935 मे सामान्य उत्पादन सूचकांक 28 7 था जो बढकर 1977 मे 850 से भी अधिक हो गया। जनोपयोगी औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 1935 मे लगभग 22 4 था जो बढकर 1977 में लगभग 900 हो गया। खनिज उद्योग उत्पादन का सूचकांक 1935 मे लगभग 65 था जो बढ कर 1977 मे लगभग 20 हो गया। केवल औद्योगिक उत्पादन 1960 के मुकाबले 1979 तक 5 गुना से भी अधिक हो गया है। विश्व के अग्रणी राष्ट्रो के मुकाबले जापान ने औद्योगिक क्षेत्र मे विस्फोटक प्रगति की है। यदि 1977 के आँकडो को लें तो 1913 के आधार वर्ष के अनुसार (1913 100) औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक इग्लैण्ड मे 460, अमेरिका मे 1000 और रूस मे 2500 था तो जापान मे यह 3500 था। यदि 1870 के आँकडो को लें तो हम आश्चर्य चकित हो जायेंगे कि औद्योगिक उत्पादन इन देशो मे कितना अधिक बढा है। 1870 का औद्योगिक सूचकाँक (1913 के आधार वर्ष के के अनुसार) इग्लैण्ड मे 43, अमेरिका मे 12–5, रूस में 11 और जापान में 12 था। दूसरे शब्दो में यह कहना होगा कि 1913 के आधार वर्ष के अनुसार 1870 से 1977 तक जापान के औद्योगिक सूचकाक मे लगभग 292 गुना वृद्धि हुई जबकि इसी अवधि मे रूस मे लगभग 227 गुना, अमेरिका मे लगभग 80 गुना और इग्लैण्ड में लगभग 11 गुना वृद्धि हुई। जापान मे औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि निस्सदेह चमत्कारपूर्ण रही। द्वितीय महयुद्ध से पूर्व जापानी औद्योगिक सरचना मे छोटे पैमाने के तथा उपभोग उद्योगो की प्रधानता थी जबकि महायुद्धोत्तर काल मे आधारभूत इजीनियरिंग उद्योगो की प्रमुखता है। जहाज निर्माण के क्षेत्र मे जापान विश्व का सबसे बडा उत्पादक देश। लोहा-इस्पात के उत्पादन में विश्व मे उसका तीसरा स्थान है तो मोटर-गाडी के उत्पादन मे विश्व का वह छटा देश है।

जापान मे औद्योगिक श्रमिको की सख्या भी तेजी से बढी है। 1941 में जापान में लगभग 78 लाख औद्योगिक श्रमिक थे जो बढकर 1956 में लगभग 175 लाख और 1966 मे 490 लाख हो गए। 1977 मे औद्योगिक श्रमिको की 700 लाख से भी अधिक होने का अनुमान था।

जापान में युद्धोत्तरकाल मे तीव्र औद्योगिक प्रगति के कारण

जापान के औद्योगिक उत्पादन में पिछले लगभग तीन दशको मे विस्फोटक प्रगति हुई है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जहा 1939 के आधार वर्ष पर 1946 मे औद्योगिक उत्पादन का सूचकाँक 31 था वहाँ 1960 म यह 410, 1970 में 1870 और 1977 में अनुमानत 3000 हो गया। औद्योगिक श्रमिको की सख्या 1946 मे लगभग 105 लाख से बढ कर वर्तमान में 1130 लाख से भी अधिक हो गई है। पिछले लगभग दस वर्षों में जापान ने औद्योगिक उत्पादन में पाँच गुना वृद्धि की है जिसका उदाहरण विश्व के किसी भी राष्ट्र मे नही मिलता। द्वितीय महायुद्धकाल में जापान की सारी अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी, किन्तु

बाद में जापान ने जिस आश्चर्यजनक ढग से युद्ध के घावो को भर दिया और चमत्कारिक गति से अपना पुनर्निर्माण किया, उससे यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान शताब्दी के अन्त तक जापान आशातीत प्रगति कर लेगा और 21वीं शताब्दी के कुछ ही दशको में विश्व का सबसे समृद्ध राष्ट्र बन जाएगा।

जापान की चमत्कारिक और विस्फोटक औद्योगिक प्रगति के मूल मे मुख्यत निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं

1 जापान का राष्ट्रीय चरित्र बहुत ऊँचा है, जापानी कर्तव्यनिष्ठ हैं और राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत हैं। उन्होंने अपने राष्ट्र के औद्योगिक विकास के प्रयत्नो में कोई कसर बाकी नही रखी है। जापान मे अनुशासित श्रम का कोई अभाव नही पाया जाता।

2 जापान का तकनीकी कौशल बहुत ऊँचे दर्जे का है। जापानियो ने आधुनिकतम उपकरणो और विधियों को निरन्तर प्राथमिकता दी है। पश्चिमी राष्ट्रो से प्रभूत सहायता प्राप्त कर जापान ने अपने आधारभूत उद्योगो के लिए सुदृढ आधार-शिला तैयार की है।

3 जापान में श्रम अनुशासित, कुशल और परिश्रमी होने के साथ ही सस्ता भी है। फलस्वरूप उत्पादकता और उत्पादन दोनो मे तीव्रगति से वृद्धि हुई है।

4 सरकार की सशक्त और यथार्थवादी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति में औद्योगिक प्रगति को बहुत ही अनुकूल रूप में प्रभावित किया है। बैंको और वित्तीय सस्थाओं आदि के माध्यम से औद्योगिक विकास के लिए ऋणो की समुचित व्यवस्था उपलब्ध की गई है।

5 जापानी खाओ, पीओ और मौज उडाओ के सिद्धान्त में विश्वास नही रखते। उनका विश्वास "कम उपभोग और अधिक बचत" में है। ब्रिटेन और अमेरिका में वैयक्तिक बचतो का अनुपात राष्ट्रीय आय का क्रमश लगभग 5 और 7 है जबकि जापान में यह 25 प्रतिशत है। अधिक बचत के कारण ही अधिक पूँजी-निर्माण सम्भव हुआ है और देश के औद्योगिक एव कृषि क्षेत्र में विशाल पूँजीनिवेश हो सका है।

6 उपभोग में कटौती के कारण विशाल मात्रा में पूँजी निवेश होने से विकास दर भी बढ गई है। पिछले दशक में अमेरिका में वार्षिक विकास-दर लगभग 4–5 प्रतिशत, जर्मनी में लगभग 6 से 7 प्रतिशत और इग्लैण्ड में लगभग 3 प्रतिशत रही थी जबकि जापान मे विकास दर लगभग 9 से 10 प्रतिशत रही।

7. जापान ने अपने सर्वाङ्गीण विकास के लिए पिछले दशको मे आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया है। नियोजन-कार्यक्रमो का सफल कार्यान्वयन हुआ है जिससे औद्योगिक उत्पादन तेजी से बढा है। जापान ने आर्थिक विकास की दस वर्षीय योजना बनाई है। 1961–70 की दस वर्षीय योजना के बाद 1970–80 की योजना समाप्ति पर है।

8 जापान मे बडे पैमाने के उद्योगों के साथ ही छोटे पैमाने के उद्योगो को भी निरन्तर प्रोत्साहन दिया गया है। दोनो औद्योगिक क्षेत्र परस्पर समन्वयात्मक

दृष्टिकोण रखते हैं तथा एक दूसरे के पूरक हैं। कृषि और उद्योग में भी परस्पर घनिष्ठ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

9 जापानी औद्योगिक विकास के प्रति गहन रुचि रखते हैं और सरकार का उन्हे पूर्ण सहयोग मिलता है। देश की लगभग समूची जनसख्या (98 प्रतिशत से भी अधिक) शिक्षित है, और उसमे अपने राष्ट्र को विश्व का सिरमौर बनाने की महत्त्वाकाक्षा है।

इन सब कारणो से जापान अपना तीव्रगति से औद्योगीकरण करने मे सफल हुआ है।

इस पृष्ठभूमि के उपरान्त अब हम जापान के कुछ चुने हुए प्रसिद्ध उद्योगो का विवरण देगे।—

(1) सूती वस्त्र उद्योग
(2) रेशम उद्योग
(3) लोहा एव इस्पात उद्योग
(4) कोयला उद्योग
(5) जहाज निर्माण उद्योग
(6) रासायनिक उद्योग
(7) मोटर उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग
(Cotton Textile Industry)

जापान के आर्थिक विकास मे सूती वस्त्र उद्योग का जितना अधिक योगदान रहा हैं, उतना अन्य किसी उद्योग का नही। प्रारम्भ मे यह उद्योग कृषि के सहायक रूप मे बडे पैमाने पर किया जाता था किन्तु मेजी पुनर्संस्थापन के बाद इस उद्योग ने उल्लेखनीय प्रगति की।

1868 से 1885 तक का काल—मेजी पुनर्संस्थापन के पहले जापानी हाथ से सूत कातते थे और हस्तचालित करघे से बुनने का कार्य करते थे। आधुनिक प्रकार का प्रथम सूती वस्त्र कारखाना 1867 मे स्थापित किया गया। 1870 मे और फिर 1872 मे सूती वस्त्र के कारखाने खोले गए। मेजी सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र मे स्वय पदार्पण करने की नीति अपनाई जिसके फलस्वरूप पश्चिमी यन्त्रो से सुसज्जित दो सूत कातने के कारखाने स्थापित हुए।

विदेशो से सूती वस्त्र के यन्त्रो का आयात किया गया और फिर उन्हे उचित दर पर निजी व्यापारियो को दिया गया। किन्तु अभी तक सूती वस्त्र उद्योग के सभी कारखाने आकार मे काफी छोटे थे और उनका संचालन भी जल शक्ति से होता था। सन् 1882 मे एक आसाका स्पीनिंग मिल खोली गई जो उस समय के अन्य सूती वस्त्र कारखानो से बडी थी।

इन प्रयासो के बावजूद 1868 से 1885 के दौरान कुल मिलाकर सूती वस्त्र उद्योग मे विकास बहुत ही कम हो सका था और यह उद्योग इस क्षेत्र मे विदेशो का, विशेषत ब्रिटेन का मुकाबला करने में असमर्थ था। सन 1887 मे भी जहाँ जापान

मे कुल मिलाकर 77 हजार के आस-पास तकुवे थे वहाँ इंग्लैण्ड की एक ही मिल मे इतने तकुवे पाए जाते थे।

1886 से 1914 तक का काल—1886 के बाद सूती-वस्त्र उद्योग का तेजी से विकास प्रारम्भ हुआ। सरकार उद्योगो को अनुकूल शर्तों व दरो पर निजी उद्यमकर्ताओ को देने लगी। मूल्यो मे वृद्धि हो जाने से उद्योगपतियो को इस उद्योग में विनियोग करने का बडा प्रोत्साहन मिला। 1896 के बाद जापान को भारत से सस्ती दर पर कपास मिलने लगी। 1894–95 मे चीन के साथ होने वाले युद्ध में जापान की विजय हुई, फलस्वरूप उसे सूत के लिए कोरिया का बाजार हाथ लगा। सस्ते श्रमिको की उपलब्धि के कारण भी इस उद्योग को बडी गति मिली। जहाँ 1887 मे जापान मे तकुवो की सख्या लगभग 77 हजार थी वहाँ 1913 मे यह सख्या 2415 हजार तक पहुँच गई। इसी प्रकार जहाँ 1893 मे सूत का उत्पादन लगभग 880 लाख पौंड हुआ था वहाँ 1913 मे यह उत्पादन लगभग 6070 लाख पौंड तक जा पहुँचा। 1913 मे सूत कातने वाली मिलो की सख्या भी लगभग 44 हो गई।

1914 से 1929 तक का काल—इस अवधि मे जापानी सूती-वस्त्र उद्योग का पहले से भी अधिक तेजी से विकास हुआ। यूरोपियन देश महायुद्ध मे फंसे रहने से अपना निर्यात नहीं कर सके। यूरोपियन जहाजी बेडे युद्ध मे उलझे रहे, अत निर्यात की जो सामग्री उपलब्ध थी वह भी पूर्वी बाजारो मे नही भेजी जा सकी। इस परिस्थिति से जापान ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। जापानी जहाजो ने सभी पूर्वी देशो की यात्रा की और इस प्रकार युद्ध-काल मे जापान को इन देशो के विशाल बाजार हाथ लग गए। जापान ने इन प्रदेशो मे ब्रिटेन के एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

महायुद्ध के बाद आने वाली मन्दी और 1923 के भूकम्प के कारण जापानी सूती-वस्त्र उद्योग को कठिनाइयो का सामना करना पडा, लेकिन फिर भी प्रगति जारी रही। इस अवधि मे सूती-वस्त्र-कारखानो के औसत आकार म वृद्धि हुई। एकीकरण की प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगी तथा 1929 तक लगभग 56 प्रतिशत तकुवे 17 बडी-बडी मिलो के हाथ मे आ गए। अब एक ही कारखानो मे कताई और बुनाई के दोनो कार्य किए जाने लगे। जापानी सूती माल विश्व के बाजारो मे छाने लगा। पापलिन, क्रेप, साटिन, शटिंग आदि का ऊँचे किस्म का माल अधिकाधिक निर्यात किया जाने लगा।

1929 से 1939 तक की अवधि—सन् 1929 मे जापानी सूती-वस्त्र उद्योग काफी विकसित अवस्था मे था, किन्तु शीघ्र ही विश्व-व्यापी मन्दी ने इस उद्योग को बडा धक्का पहुँचाया। महान मन्दी के कारण सूती वस्त्र के निर्यात पर भारी प्रतिकूल प्रभाव पडा। लगभग दो वर्ष तक विषम कठिनाइयाँ झेलने के बाद जापान ने स्वर्ण-मान का परित्याग करके येन का पुनर्मूल्यांकन किया। अब स्थिति मे तेजी सुधार हुआ तथा सूती-वस्त्र उद्योग को भारी प्रोत्साहन मिला। जापान ने न केवल अपनी बिगडी हुई स्थिति को सभाल लिया बल्कि वह सूती मिल के निर्यातक देशो मे सबसे अग्रणी हो गया। 1931 के बाद जापान मे सूती-वस्त्र का निर्माण और निर्यात इतना तेजी से होने लगा कि 1936 के आते-आते उसने इंग्लैण्ड को इस क्षेत्र

मे पछाड दिया। अब विश्व बाजार मे जापान ही सूती वस्त्र उद्योग का राजा (Textile King) कहा जाने लगा। 1934 मे जापान के निर्यात के कुल मूल्य का लगभग 23 7 प्रतिशत केवल सूती माल से बना।

इस अवधि मे सूती-वस्त्र उद्योग मुख्यत तीन कारणो से इतना अधिक उन्नत हो सका—

(i) जापानी मुद्रा के पुनर्मूल्यन से जापानी वस्तुओ के निर्यात का मूल्य घट गया, अत सूती माल का निर्यात बहुत अधिक बढा।

(ii) सूती-वस्त्र कारखानो की वित्तीय स्थिति मे बहुत अधिक सुधार हुआ, जिससे इस उद्योग को तीव्र गति मिली।

(iii) सम्बन्धित उद्योगपतियो ने इस उद्योग के विकास मे पूर्ण रुचि ली। सूती वस्त्र के निर्यात और कपास के आयात दोनो मे इन्होने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

1939 से 1945 तक का काल—द्वितीय महायुद्ध काल मे जापानी सूती-वस्त्र उद्योग को बडा भारी धक्का लगा। इसका निर्यात बाजार समाप्त हो गया। कपास के आयात मे भारी कमी हो गई। मित्र राष्ट्रो के निरन्तर वायु आक्रमणो ने जापान के विभिन्न उद्योगो और कारखानो को तहस-नहस कर दिया। इस महा विनाश के कारण 1945 मे जापानी वस्त्र उद्योग मे तकुवो की सख्या 1937 के 12 मिलियन की तुलना म केवल 3 मिलियन ही रह गई। युद्ध काल मे जापान ने अपना सम्पूर्ण ध्यान शस्त्रास्त्रो के उत्पादन में लगा दिया और उन्ही उद्योगो मे रुचि ली जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध मे सहायक होते। सामरिक आवश्यकताओ के । ु बहुत से सूती-वस्त्र कारखानो को युद्ध-सामग्री उत्पन्न करने वाले कारखानो को युद्ध-सामग्री उत्पन्न करने वाले कारखानो मे बदल दिया गया। जहाँ 1937 मे सूती-वस्त्र मिलो की सख्या 285 थी वहाँ 1945 मे यह सख्या केवल 38 रह गई। करघा की सख्या भी 1937 मे 1,16,276 से घटकर 1945 मे केवल 23 हजार रह गई। सक्षेप मे, द्वितीय महायुद्धकाल मे जापान का सूती-वस्त्र उद्योग तहस-नहस हो गया।

युद्धोत्तर काल—महायुद्ध की समाप्ति पर जापान पर मित्र राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित हो गया। सैनिक शासन के दौरान, विभिन्न परिस्थितियो वश, जापान के पुनरुत्थान के प्रयास किए जाने लगे। जापानी उद्योगो और अर्थ-व्यवस्था के पतन से अमेरिका व उसके साथी राष्ट्रो को यह चिन्ता हो गई कि पूर्वी एशियाई बाजारो पर कही रूस अथवा उसके गुट का कोई अन्य राज्य प्रभुत्व न जमा ले। मास्को द्वारा एशिया के निर्धन राज्यो मे साम्यवाद के प्रचार का भी पूरा भय पैदा हो गया। अत अमेरिकन सैनिक शासन का यह प्रयत्न रहा कि जापान को पुन सम्मानजनक स्तर प्रदान कर दिया जाए और उसे पुनरुत्थान की दिशा म मोडा जाए।

सैनिक शासन ने सर्वप्रथम एक नौ-सूत्री आर्थिक स्थिरता कार्यक्रम बनाकर जापान के पुनरुत्थान की दिशा मे कदम उठाया। सूती-वस्त्र उद्योग की दृष्टि से 1946 मे एक अमेरिकी समिति ने 'सयुक्त राष्ट्र वस्तु साख कॉरपोरेशन' से सिफारिश की कि जापान को दो लाख गाँठ कपास दी जाए। इस समय जापान के निर्यात

बाजारो मे मोटे किस्म की वस्तुओं की अपेक्षा महीन और बढ़िया किस्म की वस्तुओं
की माँग होने लगी थी। अत जापान ने अमेरिका और मिस्र से उत्तम कोटि की
कपास खरीदी।

जापानी-वस्त्र-निर्माता संघ द्वारा सैनिक शासन से अनुरोध किया गया कि
वस्त्र उद्योग को कम से कम 30 प्रतिशत तक युद्ध पूर्व की अवस्था प्राप्त करने की
छूट दी जाए। सैनिक शासन ने इतनी छूट तो नही दी, लेकिन इस उद्योग का विकास
40 लाख तकुओं तक बढाने की अनुमति दे दी। यह छूट बहुत ही कम थी, क्योंकि
जापानी वस्त्रो की घरेलू और बाहरी माँग की पूर्ति के लिए इस उद्योग मे 80 लाख
तकुओं का लगाना तो नितान्त आवश्यक था। सैनिक शासन ने धीरे-धीरे और भी
छूट दी जिससे 1952 तक तकुओं की सख्या बढकर लगभग 64 लाख हो गई और
लगभग 2,92,672 करघे काम करने लगे। 1953 में तकुओं की सख्या 75 लाख
तक पहुँच गई और युद्ध पूर्व के उत्पादन का लगभग 80% वस्त्र तैयार होने लग गया।
सूती वस्त्रो का घरेलू बाजार बहुत ही विस्तृत हो गया। 1951 मे सूती वस्त्रो की
आन्तरिक खपत युद्ध-पूर्व स्तर तक पहुँच गई तथा 1952 मे ^0 प्रतिशत अधिक
हो गई। 1953 मे जापान के घरेलू बाजारो मे ही वस्त्र उद्योग के सम्पूर्ण उत्पादन
का 60 प्रतिशत से भी अधिक भाग खपने लगा जबकि युद्ध से पहले केवल
24 प्रतिशत भाग ही खपता था।

जापान सैनिक शासन के अन्तर्गत अथवा पराधीनता की अवस्था मे 1945
से 1952 तक ही रहा। अत 1952 के बाद सभी क्षेत्र मे जापान उन्मुक्त रूप से
प्रगति करने लगा। आज जापान का वस्त्र उद्योग बहुत ही उन्नत अवस्था मे पहुँच
चुका है। लगभग दस बडी-बडी कम्पनियाँ इस उद्योग का प्रबन्ध सभाले हुए है और
8200 से भी अधिक इस उद्योग के स्वतन्त्र उत्पादन-कर्त्ता हैं। इन दस बडी
कम्पनियों के पास 109 से भी अधिक मिलें हैं जिनमे लगभग डेढ लाख श्रमिक काम
करते हैं। उल्लेखनीय है कि यद्यपि सूती-वस्त्र उद्योग का जापानी अर्थ-व्यवस्था मे
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है तथापि इसका सापेक्षिक महत्त्व क्रमश घटता जा रहा है।
महायुद्ध से पूर्व जापान के कुल निर्यात का लगभग आधे से भी अधिक भाग सूती
वस्त्र का होता था जबकि 1963 मे यह लगभग 22 9 प्रतिशत ही था। सूती-
वस्त्र उद्योग के अत्यधिक वैज्ञानीकरण के कारण जापान आज भी विश्व का एक प्रमुख
वस्त्र उत्पादक देश है। कृत्रिम वस्त्रो के उत्पादन मे इसने बड़ी प्रगति की है।
1963 मे स्थिति यह थी कि जापान विश्व के सम्पूर्ण वस्त्र उत्पादन का लगभग
31 5 प्रतिशत स्वय उत्पन्न करता था। वस्त्र उद्योग के क्षेत्र मे आज भी जापान
का पलडा भारी है, तथापि विश्वयुद्ध के पूर्व जापान के निर्यात में जहाँ 50 प्रतिशत
भाग इस उद्योग का था वहाँ अब यह लगभग 13 प्रतिशत रह गया है। भारत के वस्त्र
उद्योग को जापानी वस्त्र उद्योग से कडा मुकाबला करना पड रहा है। जापान कृत्रिम
वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ रहा है। 1966 मे जापानी मिलो ने
लगभग 5 लाख टन सूती और लगभग 290 करोड से भी अधिक वर्गमीटर कपडे

का उत्पादन किया था जबकि 1977 में 9 लाख टन सूत और 6 करोड़ वर्ग मीटर कपड़े का उत्पादन हुआ। सूती वस्त्र उत्पादन के आकड़े 1979 तक और भी अधिक ऊँची सीमा छूने लगे है।

रेशम उद्योग
(Silk Industry)

रेशम उद्योग जापान का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्योग है, किन्तु पहले की अपेक्षा इसका सापेक्षिक महत्त्व कम हो गया है। सिल्क उद्योग की कहानी बड़ी लम्बी और प्राचीन है। जापान के ग्रामीण परिवारो मे रेशम का उत्पादन अति प्राचीन काल में ही किया जाने लगा था। तोकुगावा शासन काल मे भी रेशम के कीड़ो को पालना कृषक परिवारो का एक मुख्य धन्धा था। सन् 1855 के लगभग रेशम की माँग मे एकाएक वृद्धि होने मे इसके उत्पादन को काफी प्रोत्साहन मिला। मेजी पुनर्स्थापन के समय से यह उद्योग तेजी से पनपने लगा।

1868 से 1894 तक का काल—1868 मे मेजी पुनर्स्थापन के बाद रेशम उद्योग को सरकारी सरक्षण मिला। रेशम के बेचने के आधुनिक तरीके काम में लाए गए। पश्चिमी मशीनें उद्योग मे लगाई गई। इन सब उपायो के फलस्वरूप सन् *1868* से *1883* के बीच रेशम का उत्पादन पहले की अपेक्षा दुगुना और निर्यात ढाई गुना हो गया। आँकड़ो की दृष्टि से इस अवधि मे कच्चे रेशम का उत्पादन 278 लाख क्वान (एक क्वान बराबर 8 22 पौण्ड) मे 457 लाख क्वान तक बढ गया और निर्यात 175 लाख क्वान से 365 लाख क्वान तक हो गया। जापानी रेशम को फ्रांसीसी और इटालियन रेशम से मुकाबला करना पड़ा लेकिन उत्पादन के तरीको मे सुधार करके, कीमत घटाकर और 1893 मे चाँदी मे गिरावट आ जाने से जापानी रेशम सफलतापूर्वक प्रतियोगिता मे ठहर सका। फिर भी 1881 के बाद रेशम का निर्यात गिरने अवश्य लग गया।

1894 से 1913 तक का काल—सन् 1881 के बाद जापानी रेशम के निर्यात मे जो कमी आने लगी, वह बढती ही गई। 19वी शताब्दी के अन्त तक रेशम का निर्यात नगण्य हो गया, किन्तु आन्तरिक खपत में वृद्धि होती गई। अन्य देशो की अपेक्षा उत्पादन-व्यय कम होने से जापान मे इसका बाजार बढता गया। सन् 1893 के बाद रेशम का उत्पादन ग्रामीण परिवारो की जगह कुछ विशेष प्रकार के सस्थानो मे होने लगा जिन्हे सरकार ने प्रोत्साहित किया। 1883 से 1913 के दौरान रेशम के उत्पादन और निर्यात की स्थिति इस प्रकार रही—

वर्ष	उत्पादन (मिलियन पौण्डो में)	निर्यात (मिलियन पौण्डो में)
1893	457	367
1889-1903	1924	1110
1902-13	3375	2583

1914 से 1939 तक का काल—1914 में प्रथम महायुद्ध छिड गया। उस समय यह उद्योग छोटी-छोटी इकाइयो या सस्थाओ के हाथ मे था। बिजली द्वारा चलने वाले करघे सीमित भागो मे ही थे। 1914 से 1939 के बीच रेशमी वस्त्र उद्योग में भारी विकास हुआ। 1914 से 1939 के बीच ही कच्चे रेशम का उत्पादन लगभग दुगुना बढ गया। किसान अधिकाधिक सख्या मे रेशम के कीड पालने लगे। 1929 में स्थिति यह थी कि लगभग आधे कृषक परिवार इसे सहायक धन्धे के रूप में अपनाए हुए थे। काम करने वालो में लडकियो की सख्या सबसे अधिक थी। जापान मे यह उद्योग इतना लोकप्रिय हो गया कि जब 1930 मे महान मदी के कारण रेशम के बाजारो को धक्का लगा तो जापान की ग्रामीण जनता को भारी दुखो और आर्थिक सकटो का सामना करना पडा।

प्रथम महायुद्ध के समय से ही जापानी रेशम उद्योग ने इतनी उन्नति कुछ विशेष कारणोवश की। प्रथम अमेरिका मे रेशम की माँग बढ गई। द्वितीय जापानी रेशम मे सुधार लाने के पूरे प्रयास किए गए। तृतीय, जापानी कृषि विभाग ने किसानो को आर्थिक व तकनीकी सहायता दी जिससे एक ओर तो वे कृषि का विकास कर सके और दूसरी ओर रेशम के कीडे पालने मे अधिक रुचि ले सके। चतुर्थ, आन्तरिक बाजार में भी रेशम की खपत बढती गई। पचम, शहतूत की खेती, कीडा के पालन पोषण, मशीनो आदि सभी में अर्थात् रेशम उद्योग के हर विभाग मे वैज्ञानिक ढग से सुधार किया गया तथा रेशम वस्त्र का मानदण्ड निर्धारित किया गया।

सरकार और जापानी जनता की सक्रियता के कारण रेशम उद्योग ने मन्दी के झटके को सहन करने के बाद पुन तेजी से उन्नति की। उत्पादन विधियो में सुधार आदि के फलस्वरूप रेशम का उत्पादन क्रमश बढता ही गया।

इस अवधि मे रेशम बुनने के उद्योग दो विभागो मे बटे थे। पहला विभाग हाथ से सचालित करघो का था। घरो व छोटी छोटी दूकानो मे घरेलू बाजार के लिए कम अर्ज के रेशमी वस्त्र इन करघो द्वारा तैयार किए जाते थे। दूसरा विभाग बडे कारखानो का था जिनमे मशीनो द्वारा करघे चलाए जाते थे। इन कारखानो में चौडे अर्ज के रेशमी वस्त्र निर्यात के लिए बनते थे।

द्वितीय महायुद्ध काल और बाद का समय—द्वितीय महायुद्ध काल मे जापान के सभी उद्योगो को घोर विनाश का सामना करना पडा। यद्यपि महायुद्ध के बाद सैनिक शासन के अन्तर्गत और फिर स्वाधीनता काल मे जापान ने काफी प्रगति की, लेकिन उसका रेशम उद्योग पहले की तरह पनप नही सका। महायुद्ध के बाद कच्चे रेशम के निर्यात मे भारी कमी आ गई। 1954 के बाद से जापानी रेशम का सबसे बडा बाजार केवल सयुक्त राज्य अमेरिका ही रहा है। कृत्रिम रेशम की खोज के बाद रेशम उद्योग का गौण हो जाना अस्वाभाविक भी नही है। भारी प्रयत्नो के बावजूद जापान का रेशम उद्योग अभी 1921-23 के वार्षिक स्तर पर ही पहुँचा है जो 1930-35 के वार्षिक उत्पादन के आधे से भी कम उत्पादन है। 1977 मे

लगभग 60 लाख क्वान कच्चे रेशम का उत्पादन हुआ था जबकि 1935–36 मे लगभग 115 क्वान का उत्पादन किया गया था। 1945 से 1950 के पूर्व तक लगभग 19 लाख क्वान वार्षिक औसत था जो बढकर 1950–55 की अवधि मे लगभग 36 लाख क्वान वार्षिक औसत हो गया। 1969 मे लगभग 56 लाख क्वान कच्चे रेशम का उत्पादन हुआ था। निर्यात मूल्य की दृष्टि से ले तो जहाँ 1929 मे लगभग 7800 लाख येन मूल्य का कच्चा रेशम निर्यात किया गया था वहाँ 1945–50 के बीच लगभग 12 लाख क्वान कच्चा रेशम का वार्षिक औसत निर्यात रहा। 1960 मे लगभग 14 लाख येन का कच्चा रेशम निर्यात किया गया जबकि 1977 मे केवल लगभग 3 लाख येन का ही निर्यात हो सका।

लोहा एव इस्पात उद्योग
(Iron and Steel Industry)

आज के युग मे लोहा और इस्पात उद्योग किसी भी देश की आर्थिक शक्ति का मापक माना जाता है। आज इस क्षेत्र मे जापान इतनी प्रगति कर चुका है कि अमेरिका और रूस के बाद उसकी ही गिनती है।

1868 से 1913 तक का काल—मेजी शासन काल के प्रारम्भ मे जापान मे लोहा व इस्पात का उत्पादन इतना कम था कि जापान को लगभग अपनी सम्पूर्ण आवश्यकता की पूर्ति विदेशो से आयात द्वारा करनी पडती थी। लेकिन मेजी सरकार इस उद्योग के प्रति उदासीन नही रह सकी। सन् 1887 मे पहली वायु भट्टी (Blast Furnace) और सन् 1891 मे पहली खुली भट्टी (Open Hearth Furnace) अस्तित्व मे आए। पर आधुनिक ढग का पहला लोहा व इस्पात कारखाना *'यावटा वर्क्स' (Yawta Works) सरकार द्वारा सन् 1901 मे ही आकर* स्थापित किया जा सका। सरकारी रुचि जाग्रत होने पर निजी उद्योगपति भी इस ओर आकर्षित हुए और उनके द्वारा भी कई छोटे-छोटे कारखाने स्थापित किए गए जो बहुत कुछ सरकारी सहायता पर आश्रित थे।

यद्यपि लोहा और इस्पात उद्योग की नींव पड चुकी थी, लेकिन प्रथम महायुद्ध के आरम्भ तक यह उद्योग काफी पिछडा हुआ ही था। लाहा और इस्पात का उत्पादन बहुत ही कम था।

1914 से 1929 तक का काल—प्रथम महायुद्ध ने जापान के लोहा व इस्पात उद्योग मे प्राण फूँक दिए। युद्धकाल मे और इसके बाद निजी उद्योगपतियो ने लोहा व इस्पात के अनेक कारखानो की स्थापना की तथा पुराने कारखानो का विस्तार किया। उद्योग के विकास मे सरकार की पूर्ण रुचि और सजगता बनी रही। सन् 1929 तक देश मे उत्पादित कुल इस्पात और पिग आयरन का एक बहुत बडा भाग यावटा आयरन वर्क्स द्वारा ही उत्पन्न होता था जो राज्य द्वारा नियन्त्रित था। सन् 1914 से 1929 के बीच इस्पात का उत्पादन पूर्वपिक्षा लगभग 8 गुना बढ गया। जहाँ 1913 में तैयार इस्पात 255 हजार टन हुआ था वहाँ 1929 मे यह बढ कर 2034 हजार टन हो गया।

1930 से 1939 तक का काल—महा मंदी के समय जापान को तीव्र आर्थिक झटके लगे, किन्तु बाद में औद्योगिक क्षेत्र में उसने तेजी से प्रगति की। 1930 से 1939 के बीच लोहा व इस्पात का उद्योग काफी पनपा। 1930 से 1936 के बीच ही तैयार इस्पात का उत्पादन पहले की तुलना में दुगुने से भी अधिक हो गया। पिग आयरन का उत्पादन भी दुगुना हो गया। तैयार इस्पात में विभिन्न नई वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा। 1936 तक इस्पात के उत्पादन में जापान ने इतनी उन्नति करली कि आयात के स्थान पर वह इसका निर्यात करने लगा। इस समय महायुद्ध के लक्षण प्रकट होने लग गए थे। अत सैनिक तैयारियों की दृष्टि से, लोहा व इस्पात के उत्पादन के एकीकरण पर बल दिया गया। इस उद्देश्य से 1934 में एक जापान स्टील कम्पनी स्थापित हुई जिसमें लगभग तीन-चौथाई पूँजी सरकारी थी। सन् 1937 में चीन व जापान के बीच युद्ध छिड जाने से लोहा व इस्पात उद्योग की भारी प्रगति हुई। अब लोहा व इस्पात के उत्पादन पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के छिडने तक इस्पात के उत्पादन में काफी वृद्धि करली गई।

द्वितीय महायुद्ध काल और बाद का समय—महायुद्ध काल में जापान ने मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध किया। युद्ध के प्रारम्भिक तीन वर्षों में जापान और उसके साथी राष्ट्र निरन्तर विजएँ प्राप्त करते गए। जापान में लोहा और इस्पात का उत्पादन तेजी से होने लगा। तैयार इस्पात की खपत अत्यधिक बढ गई। सारा उत्पादन देश ही में खपने लगा। 1944 में इस्पात का उत्पादन चरम सीमा पर पहुँच गया। लेकिन यह स्थिति बनी न रह सकी। मित्र राष्ट्रों की बम वर्षा कहर ढाने लगी और जापान के उद्योग नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। 1945 में जापान द्वारा आत्मसमर्पण करने के समय तक उत्पादन बहुत ही कम हो गया। विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयों और कोयले के अभाव ने जापान की लोहा व इस्पात उत्पादन क्षमता को मुख्य रूप से धक्का पहुँचाया।

अमेरिकन सैनिक नियन्त्रण के दौरान, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और साम्यवाद के भूत के भय से, जापान का आर्थिक पुनरुद्धार आवश्यक समझा गया। अमेरिका ने कच्चे माल के आयात के लिए जापान को काफी आर्थिक सहायता दी। देश में ही उपलब्ध स्क्रैप माल को भी उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए काम में लाया गया। उद्योग का पुनर्विकास 1947 के बाद ही होने लगा। 1950 में कच्चे लोहे का उत्पादन 22 लाख टन से कुछ अधिक था जो बढकर 1960 में 119 लाख टन, 1971 में 475 लाख टन, 1974 में लगभग 930 लाख टन और 1977 में लगभग 1150 लाख टन हो गया। तैयार इस्पात का उत्पादन 1950 में लगभग 48 लाख टन था जो बढकर 1960 में लगभग 221 लाख टन, 1971 में लगभग 575 लाख टन और 1977 में लगभग 1450 लाख टन होगया।

जापान का लोहा और इस्पात उद्योग कच्चे लोहे तथा कोयला पर आश्रित है

जिसका कि उसे विदेशो से आयात करना पडता है यह आयात मुख्यत मलाया, भारत, अमेरिका आदि देशो से किया जाता है। जापान आज ससार मे रूस व अमेरिका के बाद सबमे बडा लोहा और इस्पात उत्पादक देश है। अमेरिका, रूस और भारत को भी वह अपने लोहे और इस्पात का निर्यात करता है। जापान की अर्थ-व्यवस्था मे इस उद्योग का महत्त्व इसी तथ्य से स्पष्ट है कि कुल उत्पादन मूल्य मे लोहा-इस्पात का मूल्य लगभग 9 प्रतिशत और कुल निर्यात मे इसका लगभग 17 प्रतिशत भाग है। इस उद्योग की सफलता के लिए मुख्य उत्तरदायी कारण हैं—(1) सस्ते जल-विद्युत का प्रयोग, (2) कुशल और सस्ते श्रम की उपलब्धि, (3) एशिया के दक्षिणी-पूर्वी देशो का बाजार उपलब्ध होना, (4) जल-परिवहन का विकसित और सस्ता होना, (5) वैज्ञानिक प्रगति, (6) कच्चे माल को विकसित जहाजरानी की सहायता से बाहर से मगा लेना, एव (7) सरकार का पूरा सरक्षण।

कोयला उद्योग
(Coal Industry)

मेजी पुनर्संस्थापन काल से जापान मे आर्थिक प्रगति के जो द्वार खुले, उसमे खनिज उद्योग भी अछूता न रहा। विशेषकर कोयला उद्योग मे काफी प्रगति हुई। मेजी शासन काल मे कोयले की खानें छोटी थी और अधिकांश उत्पादन जैबत्सु के अन्तर्गत कुछ फर्मो द्वारा किया जाता था।

प्रारम्भ मे कोयले का उत्पादन बहुत कम रहा, लेकिन औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ इस दिशा मे उत्साहप्रद वातावरण बना। 1894 के बाद घरेलू बाजार के विस्तार के साथ कोयले की माँग तेजी से बढी और उसके उत्पादन मे भी वृद्धि होने लगी। सन् 1913 मे स्थिति यह थी कि जापान के कुल खनिज उत्पादन के मूल्य मे आधे से अधिक भाग केवल कोयले का था।

1914 से 1937 तक का काल—प्रथम महायुद्ध के दौरान कोयले के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई। लेकिन बाद मे उत्पादन की दर ऊँची नही रह सकी। इसी बीच कोयले की आन्तरिक खपत मे भारी वृद्धि हुई, किन्तु कोयले का उत्पादन इतना नही हो सका कि माँग को पूरा किया जा सके। फलस्वरूप अतिरिक्त खपत की पूर्ति विदेशो से कोयला मगाकर करनी पडी। तीसरे दशक मे कोयले के उत्पादन में धीरे-धीरे मजबूती से वृद्धि होने लगी और 1937 तक उत्पादन 1913 के मुकाबले दुगुने से भी अधिक हो गया। थोडा बहुत कोयला निर्यात भी किया जाने लगा, फिर भी कोयले का आयात पूरी तरह बन्द नही हो सका। विशेषत कोकिंग कोयला बाहर से मगाया जाता रहा क्योकि इस प्रकार के कोयले का जापान मे अभाव है। इस तरह, इस अवधि मे कोयला उद्योग के सन्तुलन की दृष्टि से जापान मे कोयले का आयात ही महत्त्वपूर्ण रहा।

द्वितीय महायुद्ध काल और बाद का समय—द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में कोयले का उत्पादन बढता रहा। लेकिन बाद में मित्र राष्ट्रो की भीषण बम वर्षा ने जापान के सभी उद्योगो पर विनाशकारी चोट की। फलस्वरूप कोयले के

उत्पादन में कमी आ गई और खनिज श्रमिक भी तितर-बितर हो गए। महायुद्ध के अन्त मे जापान द्वारा मित्र राष्ट्रीय फौजो के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया गया।

प्रारम्भ में अमेरिकन सैन्य प्रशासन ने जापान के पुनरुत्थान मे कोई विशेष रुचि नही ली। 1947 म कोयले का उत्पादन युद्ध पूर्व के स्तर से लगभग आधा था। 1947 के बाद, साम्यवाद के प्रसार के भय से और अन्य विभिन्न राजनीतिक कारणों से विवश होकर अमेरिकन सैन्य प्रशासन ने जापान के पुनरुत्थान का कार्यक्रम बनाया। फलस्वरूप सभी उद्योगो की धीरे-धीरे उन्नति होने लगी। 1952 में शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद जापान ने पुन स्वाधीनता की साँस ली। 1950 मे कोयले का उत्पादन लगभग 385 लाख टन तक बढ़ाया गया और 1953 तक कोयले का उत्पादन युद्ध-पूर्व के स्तर से भी आगे निकल गया। 1955 मे लगभग 425 लाख टन कोयला-उत्पादन हुआ। 1963 मे कोयले का उत्पादन लगभग 510 लाख टन तक पहुँच गया। किन्तु खनिज यन्त्रो की कमी पड जाने से तथा अच्छी किस्म के कोयला खनिजो की समाप्ति के कारण कोयले का उत्पादन पुन घटने लगा। विभिन्न कठिनाइयो की वजह से जापानी कोयले की कीमतें भी विदेशो के मुकाबले अधिक ऊँची हो गई। 1977 में कोयले का उत्पादन 1950 के स्तर से भी नीचे पहुँच गया। इस वर्ष उत्पादन लगभग 370 लाख टन रहा। जापान की 45 से भी अधिक खानें, होकेदो हांसू और क्यूशू प्रदेश मे फैली हुई है। क्यूशू क्षेत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमे देश का लगभग एक-तिहाई भाग कोयला खोदा जाता है। जापान अपनी आवश्यकता का लगभग 25 प्रतिशत कोयला ही उत्पन्न कर पाता है। जापान ने काफी पहले से ही यह समझ लिया था कि कोयले की कमी नये उद्योगो की प्रगति के लिए खतरा पैदा करेगी, अत वह जल-विद्युत के विकास पर ध्यान देने लगा। आज जल-विद्युत शक्ति का प्रयोग जापान मे जितना अधिक किया जाता है उतना सम्भवत इने-गिने देशो मे ही होता है। जल-विद्युत शक्ति आधुनिक जापान की अर्थ-व्यवस्था का आधार है पर इसका आशय यह नही है कि कोयले पर जापान की निर्भरता समाप्त हो गई है। जब कभी वर्षा अपर्याप्त रहती है तो कोयले पर निर्भरता विशेष रूप से बढ जाती है। इसके अतिरिक्त कोयले की ऊँची कीमत विद्युत-उत्पादन की लागत को भी प्रभावित करती है।

जहाज-निर्माण उद्योग

(Ship Building Industry)

जापान ने जहाज-निर्माण उद्योग मे आश्चर्यजनक प्रगति की है। आज का जापान दुनिया के आधे तेलवाहक जहाज बनाता है। दस करोड की आबादी का टापुओ पर बसा यह देश विश्व के कुल जहाजी उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत भाग अकेला उत्पादन करता है। जहाज निर्माण का जापानी उद्योग सदियो प्राचीन है, किन्तु इसके वास्तविक विकास का युग मेजी पुनर्संस्थापन के समय से ही शुरू होता है।

प्रारम्भिक इतिहास—तोकुगावा शासन से भी पहले जापान का जहाजी उद्योग

उन्नत था और चीन तथा दक्षिणी एशिया के सामुद्रिक सम्बन्ध थे, लेकिन तोकुगावा शासकों ने जापानियो के सामुद्रिक सम्पर्कों को हतोत्साहित किया और जापान को शेष विश्व से अलग-थलग रखने की नीति अपनाई। यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि 50 टन से अधिक की क्षमता वाला कोई जहाज न बनाया जाए। तोकुगावा शासन की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि जापानियो की जहाज निर्माण कला अवनत होने लगी और सामुद्रिक शक्ति के रूप मे जापान की कमजोरी प्रकट होने लगी। अत जहाज-निर्माण पर लगाए प्रतिबन्ध उठा लिए गए और बडे जहाजो के निर्माण की आज्ञा दे दी गई। 1854 से 1859 के दौरान योकोसुक (Yokosuke) म प्रथम शिपयार्ड बनाया गया और नागासाकी मण्डल मे एक नौ-वहन स्कूल आरम्भ किया गया। इस स्कूल मे 22 डच लोगो को अध्यापकों के रूप में नियुक्त किया गया। इस प्रकार मेजी पुनर्संस्थापन से पहले ही जापान मे जहाज-निर्माण उद्योग की आधारशिला रख दी गई, यद्यपि वास्तविक विकास 1868 के बाद ही प्रारम्भ हुआ।

1868 से 1913 तक का काल—मेजी पुनर्संस्थापन के तुरन्त बाद ही सुरक्षात्मक और व्यापारिक दृष्टि से जहाज-निर्माण उद्योग को प्रोत्साहित किया गया। सरकार ने इस दिशा मे 1870 मे मर्केन्टाइल मेराइन लॉ (Mercantile Marine Law) पास करके पहला प्रभावशाली कदम उठाया और 'कैशो-कैशा' (Kaiso-Kaisha) यातायात कम्पनी स्थापित हुई। इस पर सरकार का आंशिक नियन्त्रण था और इसे सरकारी सहायता भी प्राप्त थी। अगले कुछ वर्षों मे अनेक छोटी निजी कम्पनियाँ भी अस्तित्व में आ गई जो सरकारी समर्थन से कुछ बडी कम्पनिया के रूप मे गठित करदी गई।

यद्यपि मेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षों मे सरकारी व निजी क्षेत्र ने जहाज निर्माण उद्योग मे काफी रुचि ली, लेकिन शताब्दी का अन्त होने तक उत्पादन बहुत कम रहा। आधुनिक ढग का पहला लोहे का जहाज तो 1871 में ही बना लिया गया, लेकिन इस्पात का पहला जलपोत 1890 मे जाकर ही बनाया जा सका। 1895 मे जाकर जापानी शिपयार्डों में से पहला ऐसा जहाज समुद्र मे उतारा गया जिसका भार एक हजार टन से अधिक था। इस समय तक भी जापान अपनी जहाजी आवश्यकताओं के लिए विदेशो से आयात पर ही निर्भर था वैसे इस समय तक अर्थात् 1895 मे जापान के पास लगभग 147 वाष्प जहाज हो चुके थे जिनका कुल टनेज 164, 454 था।

जहाज निर्माण के क्षेत्र मे एक नए युग का सूत्रपात 1896 के 'जहाज-निर्माण प्रोत्साहन अधिनियम' (Ship-building Encouragement Act) द्वारा हुआ। जी सी एलन के अनुसार, "इस अधिनियम में कुल सात सौ टन या इससे ऊपर के लोहे और इस्पात के जहाज बनाने के लिए सरकारी आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गई।" इस अधिनियम के अस्तित्व मे आने के फलस्वरूप अनेक नए सामुद्रिक जहाज-निर्माण केन्द्रो अथवा शिपयार्डों की स्थापना हुई और मौजूदा

शिपयार्डों का विस्तार किया गया। सन् 1899 मे एक अन्य सशोधन अधिनियम द्वारा जहाज निर्माण के कार्य को और अधिक प्रोत्साहन दिया गया। आगे चलकर 1909 मे आर्थिक सहायता की दरो मे पुनः वृद्धि की गई।

इन सब प्रयासो के परिणामस्वरूप जापान ने जहाज निर्माण उद्योग मे काफी प्रगति करली। प्रथम महायुद्ध के ठीक पहले के वर्षों में जापानी जहाज-निर्माण केन्द्र युद्धपोतो का निर्माण करने मे सक्षम हो गए। सन् 1913 तक ऐसे 6 जहाज-निर्माण केन्द्र अस्तित्व मे आ गए जो एक हजार टन अथवा इससे अधिक वजन के जहाजो का निर्माण कर सकते थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी-छोटी निर्माण सस्थाएँ थी। जहाँ दशवें दशक के अन्त तक समुद्र मे उतारे गए वाष्प पोतो का कुल वार्षिक औसत टन भार दस हजार से कम था वहाँ 1909 से 1913 के बीच यह बढकर 50 हजार टन से भी अधिक हो गया। समुद्र में उतारे गए पाल-चालित पोतो के वार्षिक औसतन टन भार मे भी काफी वृद्धि हुई। यह 1913 तक लगभग 20 हजार टन हो गया।

1914 से 1936 तक का काल—प्रथम महायुद्ध से ठीक पूर्व जापान मे लगभग 1,528,000 टन के 3,286 वाष्प जहाज थे। प्रथम महायुद्ध के दौरान जापान का जहाज-निर्माण उद्योग और विदेशी व्यापार बहुत फला फूला क्योंकि जापान को पूर्वी देशो मे वृहद् बाजार हाथ लगा। युद्ध काल मे जापानी माल की माँग तेजी से बढती गई जबकि दूसरी ओर यूरोपीय राष्ट्रो के जहाज युद्ध मे व्यस्त रहे। इन दोनो बातो का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि जापानी जहाजरानी की माँग काफी बढगई। जी सी एलन के अनुसार, "जापान के 'नौ-प्रांगणो' (Ship-yards) से सन् 1914 मे समुद्र मे उतारे गए जहाजो का जो टन भार केवल 85 हजार टन था, वह सन् 1919 मे कुल मिला कर 650 हजार टन हो गया।" जापानी जहाज ससार के सभी समुद्रो मे दूर-दूर के देशो तक आने-जाने लगे। दुश्मन के खतरे का सामना उठाकर भी जापानी जहाज माल लाते, ले जाते रहे। घरेलू जहाज उद्योग भी काफी सुदृढ हुआ। एक अध्ययन के अनुसार, 1918 मे युद्ध की समाप्ति तक जापान के पास कुल 2,337,000 टन के 4,755 वाष्प-चालित जहाज थे।

युद्धोत्तर काल मे जापानी जहाज-निर्माण उद्योग की प्रगति मन्द पड गई। जापानी नव-वहन की लागत अन्य राष्ट्रो की तुलना में अधिक थी। मन्दी की शुरूआत हो जाने व सस्ती विदेशी प्रतियोगिता के कारण इस उद्योग को काफी क्षति पहुँची। इस अवधि मे एक हजार टन से अधिक टन के जहाजो का निर्माण कर सकने वाले जहाज निर्माण केन्द्रो में श्रमिको की सख्या लगभग दो तिहाई कम हो गई। सन् 1929 का वर्ष पूर्ववर्ती वर्षो से अच्छा था, किन्तु उस वर्ष भी समुद्र में उतारे गए व्यापारी जहाजो का टन भार केवल 165,000 ही था। जापानी जहाजो की किस्म भी बढिया नहीं रह सकी। महान मन्दी काल मे इस उद्योग को काफी धक्का लगा।

मन्दी काल के घाव शीघ्र ही भर गए और सरकारी प्रोत्साहन के परिणाम-स्वरूप जहाज-निर्माण उद्योग मे फिर तेजी से विकास होने लगा। 1931 से ही यह वृद्धि शुरू हो गई। जापान द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की पुनः प्राप्ति और 'मिटावो तथा बनावो' योजना के कारण जहाजी उद्योग तेजी से पनपा। 'मिटावो व बनावो' योजना के अन्तर्गत पुराने जहाजो को नष्ट करने और नए व आधुनिक जहाजो का निर्माण करने की नीति अपनाई गई। यह योजना पूरी तरह सफल हुई। 1934 मे एक नई योजना के अन्तर्गत जहाजो का निर्माण काफी तेज कर दिया गया। सरकार द्वारा उद्योग को काफी आर्थिक सहायता दी गई।

इन सब प्रयासो का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि जापानी जहाज निर्माण उद्योग बहुत उन्नत हो गया। जी सी एलन के शब्दो मे, "दिसम्बर 1931 में मुख्य पोत निर्माण प्रांगणो मे श्रमिको की सख्या 34,000 थी, वह सन् 1936 में बढकर 51,000 हो गई। सन् 1932 मे समुद्र में उतार गए व्यापारी पोतो का टन भार कुल 54,000 था, जो सबसे कम था। इसकी तुलना मे सन् 1937 मे यही टन भार कुल 446,000 हो गया। सन् 1919 से लेकर अब तक समुद्र मे उतारे गए पोतो के टन भार से बहुत अधिक था। इस उद्योग को नौ-पोत निर्माण के पुन आरम्भ से ही लाभ हुआ। सन् 1937 तक जापान के पास व्यापारी पोतों का कुल टन भार 4,500,000 था। इस समय जापान का व्यापारी जहाजी बेडा ससार मे तीसरी श्रेणी पर था और इस बेडे मे अधिकांश नए पोत ही थे।" ज्यो-ज्यो द्वितीय महायुद्ध सन्निकट होता गया, जापानी जहाजो की क्षमता बढती गई।

द्वितीय महायुद्ध काल और बाद का समय—द्वितीय महायुद्ध काल के प्रारम्भिक वर्षों मे जापानी जहाज निर्माण उद्योग की क्षमता बहुत अधिक बढ गई। यौद्धिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जहाजरानी का अधिकाधिक विकसित और सुदृढ होना आवश्यक था, लेकिन बाद मे शत्रु की बम वर्षा ने जापानी औद्योगिक संस्थानो को तहस-नहस करना शुरू कर दिया। युद्ध के समाप्त होने तक जापान का जहाज-निर्माण उद्योग लगभग विनिष्ट हो चुका था। जापान के लगभग सभी सामुद्रिक जहाज मित्र राष्ट्रो की कारंवाइयो द्वारा डुबो दिए गए थे। जापान की अधिकांश मशीनरी और उसके कारखाने मिट्टी मे मिल चुके थे। उसकी सारी औद्योगिक प्रगति दर्दनाक मौत का शिकार बन चुकी थी।

महायुद्ध के बाद जापान प्रत्यक्ष रूप से अमेरिकन सैनिक प्रशासन की अधीनता में आ गया। उसका यह पराधीनता-काल 1945 से 1952 तक रहा। युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक वर्षों में जापान की दयनीय दशा और नियन्त्रणकारी शक्तियो के प्रतिबन्धो के कारण, अन्य उद्योगो के समान ही, जहाज-निर्माण उद्योग भी पुनरुद्धार की दिशा में आगे नहीं बढ सका।

1948 तक जापान को केवल छोटे तटीय जहाज बनाने की ही आज्ञा दी गई परन्तु शीघ्र ही जापान के प्रति मित्रराष्ट्रो की नीति में परिवर्तन आया और सन् 1950 के आते-आते जापान के आर्थिक पुनरुद्धार की नीव जमने लग गई। कौरिया-

युद्ध ने जापान के जहाज-निर्माण उद्योग को गति दी। अब बड़े-बड़े सामुद्रिक जहाज पुनः बनाए जाने लगे। 1952 में शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर होने के बाद जापान पुनः एक स्वाधीन राष्ट्र बन गया। अब जापानी जहाज निर्माण उद्योग ने आश्चर्य-जनक तेजी से प्रगति की। 1956 तक जापान विश्व का सबसे बड़ा जहाज निर्माता देश बन गया। जो जापान महायुद्ध काल में अधिकांशतः राख का ढेर बन गया था, उसने हर क्षेत्र में अपना पुनर्निर्माण इतनी तेजी से किया कि दुनिया चकित रह गई। 1957 में जापान ने लगभग 24,33,000 टन भार के सामुद्रिक जहाजों का निर्माण किया जो विश्व के कुल उत्पादन का प्रायः 29 प्रतिशत भाग था। सन् 1965 में जापान ने 53,63,000 हजार टन-भार के सामुद्रिक जहाज बनाए। जापान का यह जहाजी उत्पादन उस समय विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 43 9 प्रतिशत था। जापान के शिपयार्ड में विश्व का सबसे बड़ा और श्रेष्ठ जलयान तैयार किया गया है। जापान ही दुनिया का पहला राष्ट्र है जिसने अपने जलयान में औद्योगिक माल की प्रदर्शनी आरम्भ की। जापान की जहाज निर्माण क्षमता 1959 में 20 लाख टन से बढ़कर 1969 तक लगभग 90 लाख टन हो गई अर्थात् 10 वर्षों में ही जहाज उत्पादन में लगभग साढ़े चार गुना वृद्धि हुई। सन् 1971 तक जापानी जहाजरानी क्षमता लगभग 126 लाख (GRT) तक पहुँच गई जो भारत की वर्तमान क्षमता से भी लगभग चौगुनी थी। 1973–74 में जापान ने लगभग 162 लाख (GRT) क्षमता के जलयान तैयार किये और उनमें से 75 प्रतिशत से भी अधिक का निर्यात कर दिया गया। इसके पूर्व सन 1972 में जापान ने विश्व का सबसे बड़ा तेलवाहक जहाज ग्लोबटिक टोकियो (Globtic Tokiyo) समुद्र में उतारा। यह जहाज 4·77 लाख (DWT) का है। इसके बाद साढ़े पाँच-पाँच (GRT) क्षमता के दो और विशाल तेलवाहक जहाज बनाये गये। सन् 1977 में जापान ने लगभग 190 लाख (GRT) क्षमता के जलयान बनाये, जिनकी संख्या अनुमानतः लगभग 980 थी। जापान प्रतिवर्ष 900 से 1000 जलपोतों का निर्माण करता है। अगस्त, 1977 में जापान ने 5·1 लाख (DWT) क्षमता के 406 मीटर लम्बे, 71 मीटर चौड़े और 68 मीटर ऊँचे तेलवाहक जहाज समुद्र में उतारा। यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा जलपोत है। विश्व में जहाज-उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत भाग अकेला जापान उत्पन्न करता है। 1977 में सम्पूर्ण विश्व ने लगभग 380 लाख टन के जलयान अकेले जापान ने बनाये थे। संख्या की दृष्टि से 1977 में लगभग 2850 जहाज सम्पूर्ण विश्व में बने थे जिनमें से लगभग 980 जहाज अकेले जापान ने बनाये थे। जापानी जहाज निर्माण उद्योग की वर्तमान प्रवृत्ति तेलवाहक जहाज और बड़े जलपोतों के बनाने की है

जहाज-निर्माण की प्रगति के कारण

जापान में छोटे-बड़े कुल लगभग 300 शिपयार्ड हैं जिनमें से 40 शिपयार्ड तो बहुत विशाल आकार के हैं। नागासाकी, मौजी, याकोहामा, तोक्यो, ओसाका,

कोबे, शिमोनेसेकी, तामाशिया आदि अत्यन्त विशालकाय शिपयार्ड है और भी नये-नये शिपयार्ड विभिन्न स्थानो पर विकसित किये जा रहे हैं।

जापान जहाज निर्माण के क्षेत्र मे सबसे आगे इसलिए बढा हुआ है क्योकि यहाँ इस उद्योग के लिए निम्नलिखित विशेष सुविधायें उपलब्ध हैं—

(1) जापान एक द्वीपीय देश है अत यहाँ के निवासी नाविक कला मे काफी दक्ष हैं। -

(2) जापान के तट बहुत अधिक कटे-फटे हैं। यहाँ विस्तृत आश्रय वाले बन्दरगाह है जहाँ जलपोत बनाने के यार्ड बनाए जा सकते हैं।

(3) जापान की जलवायु यद्यपि शीतल है, किन्तु समुद्र के पास की गर्म जलधारा जापान के तटो को जमने नही देती।

(4) जापान एक व्यापारिक और औद्योगिक देश है जिसे बहुत-सा कच्चा माल बाहर से मगाना और तैयार माल बाहर भेजना पडता है। व्यापारिक जलयान बेड की सदा से आवश्यक्ता रही है। फलस्वरूप इस बेड के विकास को निरन्तर प्रेरणा मिली है।

(5) जापान मे अपने निर्मित माल बाहर भेजने के लिए अपना प्रभाव क्षेत्र बढाने की महत्त्वाकाँक्षा सदैव रही है। अत शक्तिशाली नौ-सेना के विकास में आगे बढने की लगन के कारण जहाज-निर्माण उद्योग का विकास अपेक्षाकृत अधिक तेजी से हुआ है।

रासायनिक उद्योग
(Chemical Industries)

जापान के इस महत्त्वपूर्ण उद्योग का विवरण कालक्रम की दृष्टि से निम्नलिखित भागो मे देना उपयुक्त होगा—

प्रारम्भिक इतिहास—जापान के इस उद्योग की आधारशिला भी मेजी शासन काल में पडी। प्रथम महायुद्ध से लगभग 30 वर्ष पूर्व जापान में इस उद्योग का विकास प्रारम्भ हुआ। उस समय रासायनिक उद्योगो मे सीमेंट ग्लास एव उर्वरक उद्योग, सूगर रिफाईनिग उद्योग आदि सम्मिलित थे। ये रासायनिक उद्योग जैबत्सु (Zaibatsu) (जापान के महान धनी सेठ परिवार) की प्रेरणास्वरूप अस्तित्व मे आए। इन जैबत्सु अथवा जापान के धनी सेठ परिवारो को सरकारी सरक्षण प्राप्त था। कुछ रासायनिक उद्योगो ने यद्यपि अल्पकाल मे ही काफी प्रगति करली, जापान की रासायनिक वस्तुओ की माँग पूरी करने में ये उद्योग असफल रहे। वास्तव मे 1930 तक रासायनिक उर्वरको और अन्य रासायनिक उत्पादनो के सम्बन्ध मे जापान को बहुत कुछ विदेशी आयातो पर निर्भर रहना पडा। फिर भी 1920 से 1930 की अवधि मे रासायनिक उर्वरको के उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जहाँ 1914 में रासायनिक माल 176 मिलियन येन का हुआ वहाँ 1925 में 757 मिलियन येन और 1930 में 924 मिलियन येन का हुआ।

1930 से 1939 तक का काल—इस अवधि में रासायनिक उद्योगो क सभी शाखाओं मे उत्पादन तेजी से बढा। औद्योगिक और शस्त्रास्त्र सम्बन्धी

क्षेत्र की अधिकाधिक प्रगति के कारण रासायनिक उत्पादनों की माँग में वृद्धि हुई। 1930 से 1939 के बीच रासायनिक उद्योग की कुछ शाखाओं ने उत्पादन में दुगुनी-तिगुनी वृद्धि कर दिखाई। मूल्य की दृष्टि से जहाँ 1930 में रासायनिक उत्पादन लगभग 924 मिलियन येन के हुए थे वहाँ 1933 में 1288 मिलियन येन के हुए। महायुद्ध से पूर्व रासायनिक उद्योग में तकनीकी और उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न सुधार किए गए। अमोनियम सल्फेट तथा अन्य रसायन व्यापारों के यन्त्रों के मानों में वृद्धि हुई तथा लागतें काफी घट गईं।

द्वितीय महायुद्ध काल और बाद का समय—महायुद्ध काल में रासायनिक उद्योग भी विनाश का शिकार बना, पर युद्धोत्तरकाल में जब जापान आर्थिक पुनरुद्धार की दिशा में आगे बढ़ा तो सबसे पहले अमोनियम सल्फेट उद्योग के भाग्य जागे। खाद्य उत्पादन सम्बन्धी हितों को ध्यान में रखते हुए इस उद्योग को प्राथमिकता और आवश्यक आर्थिक सहायता दी गई। सन् 1949 में इस उद्योग ने इतनी तरक्की करली कि यह युद्ध पूर्व स्तर से अधिक उत्पादन करने लगा। 1955 के आते-आते उर्वरकों के क्षेत्र में जापान एक निर्यातक देश बन गया।

रासायनिक उद्योग आज जापान की औद्योगिक गतिविधि का एक सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। पिछले कुछ वर्षों में, कुछ चीजों के अलग-अलग उत्पादन में प्रति वर्ष औसतन 14 से 20 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। मूल रासायनिक कच्ची सामग्री—जैसे सल्फ्यूरिक एसिड और कास्टिक सोडा—के क्षेत्र में जापान की गिनती आज दुनिया के चार सबसे बड़े उत्पादकों में होती है।

पेट्रोलियम, लवण, पोटेशियम लवण, फॉस्फेट अयस्क तथा तेलों और वसाओं जैसे अनिवार्य कच्चे माल के अभाव में भी इस उद्योग ने विलक्षण गति से अपना विकास किया है। ये सब चीजें उसे विदेशों से मंगानी होती हैं।

पिछले दशक से इस उद्योग के ढांचे में बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। एक तो शैल-रासायनिक उद्योग का विकास हुआ है दूसरे उत्पादन के क्षेत्र में आग्रह रासायनिक उर्वरकों तथा औद्योगिक सोडा रसायनों के बजाय संश्लिष्ट कार्बनिक-रसायनों पर हो गया है।

1955 में, शैल-रासायनिक उद्योग का निर्माण करने के लिए 8,20,000 लाख येन का एक पंचवर्षीय कार्यक्रम आरम्भ किया था। उत्पादन में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई। 1957में 17,390 लाख येन के मूल्य का उत्पादन हुआ था और 1964 में वह बढ़कर 16,56,300 लाख येन के मूल्य का हो गया। 1960 में दूसरा विकास-कार्यक्रम लागू किया गया और 1970 तक जापान के कुल रासायनिक उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत उत्पादन शैल-रासायनिक चीजों का हो गया। जहाँ तक बिक्री का सवाल है 1969 तक शैल रासायनिक उद्योगों की चीजों की, बिक्री बढ़कर लगभग 77,00,000 लाख येन हो गई।

जापान का रासायनिक उद्योग निरन्तर प्रगति करता रहा है। 1960 के आधार वर्ष के अनुसार रासायनिक उद्योग का उत्पादन सूचकांक 1965 में लगभग 208 से बढ़कर 1969 में लगभग 374 हो गया। 1977 में जापान में अनुमानतः

180 लाख टन मीट्रिक टन रासायनिक पदार्थों का उत्पादन किया गया। जापान के रासायनिक उद्योग का भविष्य उज्वल है और वस्त्र एव लोहा-इस्पात उद्योग के बाद रासायनिक उद्योग की गणना की जाती है। जापान के रासायनिक उद्योग देश की समग्र औद्योगिक पेटी के समानान्तर फैला हुआ है तथापि केन्द्रीयकरण की दृष्टि से तोक्यो, औसाका, कोबे आदि क्षेत्र अग्रणी हैं। जापान प्रतिवर्ष लगभग 60 से 70 करोड येन मूल्य के रासायनिक पदार्थों का निर्यात् करता है। जापान के कुल निर्यात मे इस उद्योग के निर्यात का भाग लगभग 6 प्रतिशत है।

जापान मे रासायनिक उद्योग की तीव्र प्रगति में जिन कारणो ने सहयोग दिया है उनमे कुछ मुख्य यह हैं—(1) सस्ती एव पर्याप्त शक्ति का उपलब्ध होना, (2) जापानी उद्योगो और गहन कृषि के लिए उर्वरको, पौध-सरक्षण औषधियो आदि के लिए आन्तरिक माँग में वृद्धि, (3) सरकार की उदार एव सहयोगी नीति, (4) सरकार द्वारा वैज्ञानिक शोध एव अनुसधान का प्रदर्शन, (5) कच्चे माल की समुचित पूर्ति, यथा-समुद्र से नमक, ज्वालामुखी क्षेत्रो से गन्धक वनो से कोलतार, पानी, कोयला आदि।

मोटर उद्योग
(Automobile Industry)

सयुक्तराज्य अमेरिका यदि मोटर उद्योग का राजा है तो जापान उसका वजीर है। आज जापान का स्थान मोटर उत्पादन की दृष्टि से अमेरिका के बाद दूसरा है। मोटर उद्योग के क्षेत्र मे जापान ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है उसे देखते हुए यह असम्भव नही लगता कि निकट भविष्य मे वह अमेरिका को टक्कर देने लगेगा।

जापानी मोटर उद्योग का प्रारम्भ 1907 मे छोटे पैमाने पर हुआ। 1927 मे जापान कुल 136 मोटरें बना सका। मोटरो के ढांचो और इजिनो का आयात अमेरिका से होता था जबकि अन्य भागो (Parts) का निर्माण जापान मे ही कर लिया जाता था। जापानी मोटर उद्योग की तब भारी प्रेरणा मिली जब 1936 में सरकार ने इसे सरक्षण प्रदान करते हुए उत्पादन शक्ति 500 मोटर प्रतिवर्ष निर्धारित कर दी। मोटर उद्योग प्रगति करता गया। सन् 1941 मे लगभग 43 हजार मोटरें बनाई गई। महायुद्ध काल मे मोटरो के स्थान पर वायुयान निर्माण को अधिकाधिक प्राथमिकता दी जाने लगी और 1944 के आते-आते सवारी गाडियो का उत्पादन बन्द-सा हो गया। आत्मसमर्पण के बाद भी वर्षों तक जापान मोटर उद्योग का पुनरुद्धार नही कर सका। 1949 तक इस उद्योग की अवस्था शोचनीय बनी रही। सन् 1956 में छिडने वाले कोरिया युद्ध के फलस्वरूप मोटर उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला। इसके बाद यह उद्योग तेजी से पनपता गया। सन् 1967 मे जापान ने चार पहियो वाली लगभग 34 लाख गाड़ियो का उत्पादन किया। तीन पहियो वाली गाडियों का उत्पादन इससे अलग था। 1960 से 1965 के दौरान मोटर गाडियो के निर्यात में भी लगभग 15 गुनी वृद्धि हुई। उल्लेखनीय है कि

जापानी मोटरें छोटी होती हैं जिनमे प्राय 10 अश्व शक्ति के इन्जिन लगते हैं। तीन पहिये वाली गाडियाँ सामान ढोने के काम आती हैं। इधर कुछ वर्षों की उपलब्धि यह भी है कि जापानी गाडियो के तकनीकी स्तर बराबर ऊपर उठते गए हैं। अब तक निर्माता कवल इस बात की ओर ध्यान देते थे कि उनमें मार्ग योग्यता कितनी है और वे टिकाऊ कितनी हैं, किन्तु अब जापान की सडकें पहले से बहुत अच्छी हो गई हैं इसलिए वे उनकी गति और त्वरण क्षमता पर ईंधन की बचत पर, आरामदेह होन तथा बाहर और भीतर के डिजाइनो पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। जापान मे मोटर गाडियाँ बनाने की दृष्टि से कितनी प्रगति हुई है इसकी एक शानदार मिसाल यह है कि 1965 मे मैक्सिको की ग्रांड प्री म दौडने वाली कारो के मुकाबले मे जापान की होंडा फामला प्रथम की जीत हुई थी। जापानी मोटर उत्पादन ने 1959 से 1969 की दस वर्षीय अवधि मे मोटर-गाडी उत्पादन मे लगभग चालीस गुना वृद्धि की है। 1959 मे जहा दस लाख मोटर गाडियाँ बनाने की क्षमता थी वहाँ 1969 मे चालीस लाख गाडिया प्रतिवर्ष बनाने की क्षमता हो गई। 1977 मे लगभग 85 लाख मोटर गाडियो का उत्पादन किया गया। जापानी मोटर उद्योग का भविष्य बहुत उज्ज्वल है और यह जापान का प्रमुख उद्योग बन गया है। जहाँ 1966 में जापान ने लगभग 93 लाख मोटर गाडियाँ पजीकृत थीं वहाँ 1976-77 मे पजीकृत मोटर वाहनो की सख्या 355 लाख तक पहुँच गई। जापान मे प्रति 3-6 व्यक्तियों के पीछे एक कार है। जापान अपने मोटर उत्पादन का लगभग आधा भाग निर्यात कर देता है। 1977 में लगभग 85 लाख मोटर वाहनो का उत्पादन हुआ जिनमें से लगभग 40 लाख का नियात किया गया था।

इन्जीनियरिंग उद्योग

(Engineering Industry)

जापान के इजीनियरिंग उद्योग की नींव भी मेजी पुनसस्थापन के समय ही पडी। अत तभी से विभिन्न कालो मे इसके विकास का वर्णन करना उपयुक्त होगा।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व तक—मेजी सरकार ने राजनीतिक कारणों से इजीनियरिंग उद्योग को बढावा दिया, तथापि वह 1930 तक समुचित आकार ग्रहण नही कर सका। उद्योग की एक शाखा जहाज निर्माण की थी जिसने अपेक्षाकृत अधिक उन्नति की। आठवें दशक मे शिबाउरा इजीनियरिंग वर्क्स (Shibaura Engineering Works) की स्थापना हुई। इस सस्थान में सामान्य इजीनियरिंग के काम के अलावा विद्युत मशीनरी और औजारो का उत्पादन भी किया जाने लगा। लगभग इसी समय और भी नई फर्मों ने इस उद्योग म प्रवेश किया। सन् 1906 मे मे रेलवे के राष्ट्रीयकरण के बाद रेल सामग्री का उत्पादन काफी बढा। 1908 मे रेल कारखाने का निर्माण हुआ। 1910 के बाद विद्युत शक्ति उत्पादन की सख्या बढ़ी और जल विद्युत शक्ति का उपयोग किया जाने लगा। टोकियो विद्युत कम्पनी का पुनर्गठन हुआ तथा 'माजदा' निर्मित किए जाने लगे। इन्सुलेटरो के लिए भी एक कम्पनी की स्थापना की गई। साइकिल उद्योग भी काफी पनप गया।

1914 से 1929 तक का काल—इजीनियरिंग उद्योग की जहाज निर्माण शाला ने प्रथम महायुद्ध के दौरान बहुत अधिक उन्नति की। इजीनियरिंग की अन्य शाखाओं ने भी इस अवधि मे काफी प्रगति दिखाई। यह प्रगति मुख्यतः इसलिए हुई क्योकि एक तो युद्ध के दौरान प्रतियोगिता का अभाव था, दूसरे ससार मे गोला बारुद व शस्त्रास्त्रो की अधिक मांग थी तथा तीसरे, जापान का आन्तरिक बाजार भी विस्तृत हो गया था। इन सब कारणो से विद्युत सामग्री, टैक्सटाइल, मशीनरी और वैज्ञानिक यन्त्रो के अलावा इजीनियरिंग उद्योगो का काफी विस्तार हुआ और 1920 के समाप्त होते-होते जापान इन वस्तुओ का बहुत कम आयात करने लगा फिर भी सम्पूर्ण मशीनरी की दृष्टि से जापान अभी विदेशी स्रोतो पर निर्भर था, क्योकि उसके औद्योगीकरण के लिए भारी मात्रा मे विभिन्न प्रकार की मशीनरी की आवश्यकता थी।

महायुद्ध के बाद जब मन्दी का दौर शुरू हुआ तो अनेक नये उत्पादक तबाह हो गये, किन्तु इस समय भी, एलन के शब्दो में, "इजीनियरिंग व्यापारो—खासतौर से शक्ति के प्रमुख सचालको, बिजली की मशीनो और सयन्त्रो, वस्त्र मशीनरी तथा वैज्ञानिक औजारो से सम्बन्धित व्यापारो की प्रगति होती रही और तीसरे दशक के मध्य से बाद के जापान मे ऐसे माल का आयात कम हो गया।"

इस अवधि मे साइक्लो के निर्माण का उद्योग महत्त्वपूर्ण हो गया। सन् 1929 तक जापान ने साइक्लो के पुर्जो का आयात बन्द कर दिया। अपनी साइकिलो की सम्पूर्ण मांग की पूर्ति वह स्वय करने लगा।

यद्यपि जापान ने इजीनियरिंग के क्षेत्र मे अच्छी प्रगति कर ली, किन्तु जैसे-जैसे उसका औद्योगीकरण बढता गया, उसकी मशीनो और औजारो की पूर्ति के लिए विदेशी स्रोतो पर निर्भरता भी बढती गई।

मन्दी के झटको को पार करने के बाद महायुद्ध के पूर्व तक इजीनियरिंग व्यापारो ने काफी प्रगति की। जापान मे उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि, किस्म मे सुधार और क्षेत्र मे विस्तार किया। जहाँ 1929 से पहले दस हजार किलोवाट से अधिक क्षमता के टरबाइनो का आयात होता था वहाँ 1937 तक अधिकाश भाग की पूर्ति घरेलू ससाधनो द्वारा की जाने लगी। इस अवधि के प्रारम्भ मे जापान सभी बायलर नलियो का आयात करता था वहाँ इस अवधि के अन्त मे वह अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए अच्छी किस्म की नालियो का उत्पादन करने लगा। ढलाई की तकनीक मे काफी सुधार किया गया। सन् 1932 से पूर्व जापान में बडी-बडी इस्पात की ढली हुई वस्तुओं का उत्पादन नहीं हो सकता था, लेकिन 1936 तक यह भली प्रकार सभव हो गया। अब इजीनियर इन वस्तुओं को स्थानीय पूर्ति के स्रोतो से ही बिना किसी कठिनाई से प्राप्त कर सकते थे। जापान की इजीनियरिंग श्रमिको की कार्यकुशलता भी इतनी बढ गई कि जहाँ पहले विदेशी विशेषज्ञ उनकी कमियों की शिकायतें करते थे वहाँ अब उनके प्रशसक बन गय।

महायुद्ध काल और बाद का समय—महायुद्ध काल में इजीनियरिंग उद्योग

और भी तेजी से बढा । सन् 1944 मे 1937 के मुकाबले तिगुने से अधिक इजीनियरिंग माल उत्पादित होने लगी । यद्यपि महायुद्ध काल मे जापान के कई बड़े इजीनियरिंग सस्थान नष्ट भ्रष्ट हो गये, तथापि युद्ध के बाद भी इस उद्योग मे जापान की काफी क्षमता बनी रही । फिर भी कुछ विशेष कठिनाइयो के कारण इस उद्योग का तेजी से पुनरुद्धार कुछ समय के लिए रुक गया । प्रथम तो अमेरिकन सैनिक प्रशासन ने जापान के उन भारी इजीनियरिंग व्यापारो पर प्रतिबन्ध लगा दिए थे जिनसे जापान की सैनिक शक्ति मे वृद्धि की सम्भावना थी । दूसरे कच्चे माल का आयात रुक गया । तीसरे आर्थिक अस्थिरता और अराजकता छाई हुई थी । चौथे, इसके सगठन के छिन्न भिन्न हो जाने से भी इजीनियरिंग उद्योग को धक्का लगा था ।

किन्तु शीघ्र ही एक-एक करके सभी समस्याएँ मिटने लगी । जापान के प्रति अमेरिकन साथी राष्ट्रो की नीति मे भी परिवर्तन हुआ । फलस्वरूप इजीनियरिंग उद्योग पुन पनपने लगा । कोरिया युद्ध से इस उद्योग को विशेष गति मिली । जहाज निर्माण शाखा ने सबसे अधिक आश्चर्यजनक उन्नति की, अन्य इजीनियरिंग व्यापारो मे भी काफी प्रगति हुई और 1951 मे मशीनरी का उत्पादन 1937 के उत्पादन से भी अधिक होने लगा । 1955 तक इजीनियरिंग उद्योग का विस्तार इतना अधिक हो गया जितना 20 वर्ष पहले भी नहीं था ।

1955 के बाद जापानी इजीनियरिंग उद्योग का असाधारण गति से विस्तार हुआ । 1955 से 1957 के बीच ही उत्पादन लगभग दुगुना हो गया और आगे भी प्रगति की रफ्तार जारी रही । सन् 1963 के 1955 के मुकाबले 5 गुना और युद्ध पूर्व के स्तर से दस गुना अधिक इजीनियरिंग माल बना । आज यह उद्योग जापान का सबसे बडा उद्योग बन गया है । वहाँ इस उद्योग से सम्बन्धित हर प्रकार की वस्तु का भारी मात्रा मे उत्पादन होता है ।

जापान के यन्त्र-उद्योग का कितना विकास हुआ है, उसमे कितनी विविधता है और उसका कितना ऊँचा तकनीकी स्तर है—इसका प्रमाण दुनिया के प्राय हर कोने मे मिल सकता है । जापानी यार्डों के बने जहाज आज सातो समुद्रो पर तैरते दिखाई पडते हैं । जापानी कैमरों, ट्रांजिस्टर, रेडियो और सिलाई मशीनो के बहुत अच्छे होने के बाद आज सभी जानते-मानते हैं और दुनिया के बाजारो मे आज उनकी माँग है । जापानी कारें, बसें, लारिया और रेलो के डिब्बे पाँचो महाद्वीपो मे परिवहन की आवश्यकताएँ पूरी करने म सहायता दे रहे हैं । जापान के बने बिजली के जनित्र एशिया, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण और उत्तरी अमेरिका के घरो और उद्योगो मे बिजली और विद्युत-शक्ति का सम्भरण करते हैं । कताई और बुनाई की जापानी मशीनें एशिया और दुनिया के दूसरे हिस्सो मे कपडा-उद्योग के विकास मे सहायता कर रही हैं ।

कुछ अन्य उद्योग
(Some Other Industries)

जापान के कुछ और भी प्रमुख उद्योग हैं जिनमे वह विश्व के अनेक देशो की तुलना मे बहुत बढा हुआ है।

लकडी की लुग्दी और कागज उद्योग
(Pulp and Paper Industry)

जापान सम्पूर्ण एशिया मे लकडी की लुग्दी और कागज बनाने के उद्योग मे अग्रणी है। यहाँ अनेक प्रकार का कागज बनाया जाता है क्योकि कागज के अनेक उपभोगो का यहाँ काफी प्रचार है। उदाहरणार्थ, कागज से रूमाल, तौलिया, छाते, लालटेन, बोरे आदि बनाए जाते हैं। जापान भूकम्पो का देश है, अत यहाँ मकानों की भीतरी दीवारें मोटे कागज अथवा गत्ते से बनाई जाती हैं। इस देश मे कागज को चमडे की जगह प्रयोग मे लाया जाता है। जापान में लगभग 11 5 लाख मीट्रिक टन बढिया कागज प्रतिवर्ष बनता है।

लुग्दी के उत्पादन मे भी जापान काफी आगे है। प्रतिवर्ष लगभग 16 लाख मीट्रिक टन लुग्दी बनाई जाती है, इनमे 60 प्रतिशत रासायनिक लुग्दी होती है। जापान मे लुग्दी कागज की अधिकांश मीले होक्काइडो द्वीप मे हैं। लुग्दी के अलावा धान के छिलको, शहतूत की पत्तियो, वनस्पति रेशो से भी कागज बनाया जाता है। यह कागज मोटा और मजबूत होता है तथा मुख्यत कुटीर प्रणाली पर घरो में बनाया जाता है।

सीमेंट (Cement)

इमारतें बनाने के इस आधुनिक मसाले का एशियाई देशो मे जापान सबसे बडा उत्पादक है। यह लगभग 1 करोड मीट्रिक टन से भी अधिक सीमेंट प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है। सीमेंट निर्माण के 40 से भी अधिक कारखाने हैं। चूँकि देश की माँग से अधिक सीमेंट तैयार किया जाता है अत यहाँ से सीमेंट का निर्यात भी होता।

काँच उद्योग (Glass Industry)

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान का काँच उद्योग बहुत उन्नत था और यहा काँच की नाना वस्तुएँ बनाई जाती थी। काँच की चादरो के उत्पादन मे तो यह देश सबसे आगे था। महायुद्ध काल मे अन्य उद्योगो के समान ही काँच उद्योग को भी भारी क्षति पहुँची। युद्ध के बाद इस उद्योग को पुन सगठित किया गया है। जापान का काँच उद्योग आज काफी उन्नत दशा मे है। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र टोकियो, नागोया, ओसोका, याकोहामा, मौजी और तोबाता है।

विमान उद्योग

जापान के विमान निर्माण उद्योग का इतिहास 1911 से आरम्भ होता है और विमान निर्माण के क्षेत्र मे उसने दुनिया का नेतृत्व किया है। आज इस उद्योग मे प्रमुखत यात्री-विमानो का और निजी तथा सामूहिक उपयोग के लिए हल्के मानो का उत्पादन हो रहा है।

परिलक्षित होती है। YS-11 और MV-2 के काम की और सुरक्षा के रिकार्ड को जापान के उड्डयन-उद्योग को दुनिया भर मे ख्याति मिल चुकी है।

दो तरह के हवाई जहाजो को दुनिया भर मे ख्याति मिल चुकी है। YS-11 को जो 60 यात्रियो का लघु परिसर टर्बा प्राप उपयोगिता-यान है और MV-2 को, जो 6 से 9 यात्रियो तक का टर्बा प्राप उपयोगिता-यान है। अमेरिका के फॅडरल विमान-एजेन्सी ने दोनो को टाइप सर्टीफिकेट दिए हैं। इन दोनो में ही थोडी जगह मे उडान भरने और उतरने वाले विमानो की दिशा मे प्रगति परिलक्षित होती है। YS-11 और MV-2 के काम की और सुरक्षा के रिकार्ड की विदेशो मे ज्यो-ज्यो अधिकाधिक प्रसिद्धि होती जा रही है, त्यो-त्यो अधिकाधिक सख्या मे उनका निर्यात हो रहा है।

उद्योग मे दो और किस्मो के छोटे-छोटे जहाज भी बनाए जा रहे हैं—चार सवारियो वाला N-62 ईगलेट और चार ही सवारियो वाला F-200। इनके उडने के लिए थोडी दौड पर्याप्त होती है और इनको चलाने और रख-रखाव का काम बडा सरल होता है।

इस समय जापान के विमान-उद्योग मे वी० स्टाल (ऊर्ध्वाधर : थोडी जगह मे उडान भरने और उतरने वाले) जहाज के बनाने के बारे मे अनुसधान हो रहा है।

जापान मे औद्योगीकरण की वर्तमान विशेषताएँ
(Salient Features of Modern Industrialisation)

हम जापान के कतिपय प्रमुख उद्योगो का विवरण दे चुके हैं। यहाँ सक्षेप में जापानी औद्योगीकरण की कुछ विशेषताओ पर अलग से दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा—

1 **पूँजी-प्रधान उद्योगो के प्रति विशेष आग्रह**—वर्तमान शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे जापानी अर्थ-व्यवस्था मे श्रम-प्रधान उत्पादन का बोलबाला था, पर आज पूँजी-प्रधान उद्योगो के प्रति विशेष आकर्षण है अर्थात् उत्पादन का क्रम हल्के से भारी उद्योगो की ओर रहा है।

2 **गुण-वृद्धि पर बल**—महायुद्धोत्तर युग मे जापानी उद्योगो के विकास क्रम में परिमाण के विस्तार का नही, गुण की वृद्धि का दौर है। इसके पूर्व सबसे ज्यादा जोर परिमाण के विस्तार पर रहा था।

3 **पूँजी का भरपूर उपयोग**—पूँजी के भरपूर उपयोग से ही जापान की औद्योगिक सुविधाओ का द्रुत आधुनिकीकरण हुआ है। एक अध्ययन के अनुसार नई वैयक्तिक पूँजी के निवेश की औसत प्रतिवर्ष समग्र राष्ट्रीय उत्पादन की 30 से 35 प्रतिशत है। यह औसत अमेरिका के स्तर से लगभग दुगुनी है।

4. **औद्योगिक सरचना में परिवर्तन**—जापानी औद्योगिक सरचना मे भी परिवर्तन आया है। जहां पहले सूती एव रेशमी उद्योगो की प्रमुखता थी वहां अब रासायनिक और शैल-रासायनिक उद्योग तथा भारी मशीन उद्योग प्रमुख हैं। इन उद्योगो के फलस्वरूप ही आज जापान की गणना विश्व के सबसे ऊँचे औद्योगिक राष्ट्रो मे होती है।

5. **तकनीकी विकास**—जापानी उद्योग अपनी तकनीकी क्षमता के निरन्तर

विकास की ओर सजग हैं। तकनीकी स्तरों का निरन्तर और क्रमश. ऊँचा उठना तथा उद्योगों में नई शिल्प वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रयोग—इन बातों का जापान के आर्थिक विकास से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। जापान अपना शिल्प-विज्ञान दूसरे देशों को भी भेज रहा है--विशेष रूप से संचार, इलैक्ट्रानिकी तथा रासायनिक उत्पादनों के क्षेत्र में।

6. सरकारी नीति और सहयोग—जापान के औद्योगिक विकास में सरकारी सहयोग का विशेष महत्त्व है। सरकार इस क्षेत्र में मार्ग-दर्शक, वित्तीय प्रबन्धक, बुद्धिमान नियन्त्रक और समयानुकूल संरक्षक रही है। यह आश्चर्य की बात है कि एक साम्यवादी अथवा समाजवादी राष्ट्र न होते हुए भी जापान के औद्योगिक विकास में वहाँ के शासन का अन्य पूँजीवादी देशों के मुकाबले अधिक महत्त्वपूर्ण हाथ और नेतृत्व रहा है।

7. प्राकृतिक साधनों का अभाव—जापानी उद्योगों के सामने सबसे बड़ी समस्या देश में प्राकृतिक साधनों की कमी है। जापान में खनिज-साधन बहुत ही कम है और एक सम्पन्न राष्ट्र के लिए आवश्यक माने जाने वाले अधिकांश साधन यहाँ नही पाए जाते। उदाहरणार्थ बॉक्साइट, तेल, कच्चे लोहे, पत्थर के कोयले जैसी आधारभूत सामग्री जापान को बाहर से मगानी पड़ती है। पैट्रोलियम का उत्पादन नगण्य-सा है और इस दृष्टि से विदेशी आयात पर जापान का अस्तित्व निर्भर है। सीसा, जस्ता, गधक, चूना पत्थर, जिप्सम, डोलोमाइट आदि अनेक साधन केवल इतने पाए जाते है जिनसे घरेलू माँग पूरी हो सके।

8. व्यक्तिगत एव निजी साहस—जापानी उद्योगों में निजी साहस का विशेष महत्त्व है। कतिपय राजकीय एकाधिकारों को छोड़कर अधिकाश उद्योग निजी साहसियों के हाथ में हैं जो देश की अर्थ-व्यवस्था की सम्पूर्ण इकाइयां हैं। हम कह चुके हैं कि जापान में पिछले कुछ वर्षों से निजी अथवा वैयक्तिक पूँजी-निवेश का औसत अमेरिकी औसत से भी लगभग दुगुना रहा है।

9 श्रमिक-सुविधाओं का विस्तार—जापानी औद्योगीकरण में श्रमिक सुविधाओं के विस्तार के प्रति विशेष रुचि पाई जाती है। जापान में श्रम-कल्याण अपनी चरम सीमा पर है। श्रमिकों के कार्य करने की दशाएँ बहुत ही उन्नत हैं। नई तकनीकों द्वारा उनकी कार्य-क्षमता का निरन्तर विकास किया जाता है। श्रमिकों में कर्त्तव्य और श्रम के प्रति जितनी निष्ठा जापान में पाई जाती है, उतनी अन्यत्र नहीं।

10 लघु एव मध्यम श्रेणी के उद्योग—जापान के औद्योगिक ढांचे में लघु एव मध्यम श्रेणी के उद्योगों का जैसा बोलबाला है वैसा विश्व में और कहीं नहीं है। इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की प्रतिष्ठा भी है। एक अध्ययन के अनुसार कुल उद्योगों का लगभग चौथाई भाग से भी कम बड़े उद्योग हैं और दो-तिहाई भाग से अधिक उत्पादन लघु-स्तरीय तथा मध्यमवर्गीय उद्योगों से होता है।

11. उच्च-बचत अनुपात—जापान में बचत की दर अन्य देशों के मुकाबले

कही ऊँची है। राष्ट्रीय आय का लगभग 50 से 55 प्रतिशत वैयक्तिक उपभोग पर व्यय किया जाता है, शेष विनियोग-माध्यम ढूँढ लेता है। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र मे पूँजी निरन्तर लगती रहती है।

12 लघु और बड़े उद्योगों मे सहयोग—जापान मे लघु एव कुटीर उद्योग बडे उद्योगो के पूरक और सहायक के रूप मे कार्य करते हैं, प्रतियोगी के रूप मे नहीं। दोनो मे सहयोग और समन्वय का सुन्दर उदाहरण विश्व के दूसरे देशो के लिए अनुकरणीय है।

13 उच्च-राष्ट्रीय भावना जापानी औद्योगीकरण की सबसे बडी विशेषता वहाँ के हर नागरिक मे उच्च राष्ट्रीय भावना का होना है जिससे वे अपने देश के विकास के लिए तन-मन-धन लगाकर कार्य करते हैं।

14 उच्च कोटि के समन्वय की उपलब्धि—कार्टेल एव ट्रस्ट द्वारा यहाँ सगठित उद्योगो मे उच्च कोटि का समन्वय है और भी विभिन्न प्रकार के सगठन है। प्राय सभी उद्योग अपने अलग अलग सगठनो में आ जाते हैं। अत वे एक समन्वित सगठन उपलब्ध कर सके हैं जो कि जापान के औद्योगिक विकास मे अत्यन्त सहायक रहा है।

15 विदेश व्यापार-क्षमता—विदेश व्यापार जापान का प्राण है। जापानी अर्थ-व्यवस्था की गति, जापान के विदेश व्यापार पर निर्भर रहती है। चूँकि देश की आबादी निरन्तर बढ रही है, उसके पास प्राकृतिक साधनो का अभाव है और भूमि क्षेत्र भी सीमित है, अत आर्थिक दृष्टि से जीवित रहने के लिए जापान विदेश व्यापार पर अत्यधिक निर्भर रहता है।

सक्षेप मे,जापान का समूचा औद्योगिक सयत्र विकासशील और विवेकपूर्ण है। युद्धोत्तर काल मे जापान ने जो द्रुत औद्योगिक विकास किया है उसे देखते हुए यह भविष्यवाणी की जाती है कि अगले कुछ दशको मे जापान औद्योगिक उत्पादन में विश्व का सिरमौर राष्ट्र होगा।

जैबत्सु और उसके आर्थिक प्रभाव

(Zaibatsu and Their Economic Influences)

जापानी उद्योगो पर कुछ ही परिवारो का स्वामित्व है—ये सामन्तशाही घराने के हैं। इनमे मित्सुई, मित्सुबीश, सुमोतोमे और यसुदा प्रमुख है। स्थानीय भाषा में इन्हे "जैबत्सु" कहते हैं।

जैबत्सु का जापान की आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। देश के अधिकांश वित्तीय, औद्योगिक और वाणिज्यिक क्षेत्र में इनका एकाधिकार-सा है। निर्माणकारी, बैंकिंग, बीमा, सौदागरी तथा जहाजरानी के उद्योग इन्ही के हाथ में हैं। एक अध्ययन के अनुसार कम्पनियो की चुक्ता पूँजी, सचितो ऋण पत्र तथा कुल विनियोग की तीन-चौथाई पूँजी पर जैबत्सु का ही अधिकार है और नए तथा लघु उद्योगो के कच्चे माल एव वित्त की पूर्ति इन्ही के द्वारा की जाती है। जैबत्सु के आठ घराने जापान की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर छाये हुए हैं।

मेजी पुनर्स स्थापन के बाद मेजी सरकार ने देश के आर्थिक-सामाजिक एव औद्योगिक विकास के लिए उपयुक्त व्यक्तियो राजनीतिज्ञो तथा वित्तीय व्यवस्थाओ की आवश्यक्ता थी। चूंकि मेजी शासन के आविर्भाव के पूर्व जैबत्सु इन सभी कार्यो को कर चुके थे, अत स्वाभाविक था कि मेजी सरकार को इन्हे (जैबत्सु) को अपनाना पडा। जैबत्सु घरो ने शासन को औद्योगिक क्षेत्रो मे अत्यधिक मदद पहुँचाई। सरकार का इन्हे वरद्-हस्त प्राप्त हुआ। ठेकेदारी, सरकारी व्यापार, राजकीय सम्पत्ति के क्रय आदि मे इन्ह प्राथमिकता दी गई। इन्ह हर क्षेत्र मे काफी छूट और सुविधाएँ मिली। फलस्वरूप आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण इनके हाथ मे होता गया। वे विदेशी व्यापार मे भी घुस गए और आधुनिक शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे एक-परिवार छोटे उद्योगो मे भी इन्होंने अपना आधिपत्य और प्रभाव जमाना शुरू कर दिया।

बैंकिग व्यवस्था पर भी जैबत्सु का आधिपत्य था। 1972 के बैंकिग सकट में सभी छोटे बैंको को पाँच बडे बैंको में सम्मिलित कर दिया गया जिसमें जैबत्सु परिवार ही प्रमुख था। जैबत्सु घराने वास्तव में जापान की समस्त अर्थ-व्यवस्था पर छा गए। विशेषता यह थी कि देश मे तो वे आपस में प्रतियोगिता भी करते थे, पर विदेशी अथवा बाहरी प्रतियोगी का एक होकर सामना करते थे। देश मे इन्होने सम्मिलित ढग से भी बहुत से उद्योगो में विनियोग किया। सरकारी क्षेत्र में पर्याप्त प्रभाव, सरकार से अच्छे सम्बन्ध, देश के महत्त्वपूर्ण उद्योगो पर अधिकार और व्यापक औद्योगिक प्रक्रियाओ के फलस्वरूप सन् 1929 तक इनका जापान के आर्थिक क्षेत्र मे विशेष स्थान रहा। वास्तव मे अर्थ-व्यवस्था का कोई भी अ ग ऐसा नही था जहाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जैबत्सु घराना की उपस्थिति न हो। स्थिति यहाँ तक थी कि सरकार एक प्रकार से इन्ही के निर्देशानुसार सचालित हो जाती थी।

लेकिन 1929 के बाद महान आर्थिक मन्दी ने जैबत्सु की स्थिति पर घातक प्रहार किया। महान आर्थिक सक्रान्ति के फलस्वरूप मेजी सरकार की नीति बदनाम हो गई और जब नई सरकार आई तो जैबत्सु का प्रभाव समाप्त होने लगा। यह आरोप लगाया गया कि जैबत्सु घर अपने हितो के लिए शासन को खतरे मे डालने से नही चूकते। इनके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया की लहर उठ खडी हुई और 1932 मे इनके प्रमुख सचालक की हत्या कर दी गई। अब जैबत्सु सामान्य कृषि उत्पादनो स अपना हाथ खीचने लगे और आर्थिक क्षेत्र मे इनकी स्थिति लडखडा गई। ये पुन जमने का प्रयत्न करने लगे। नई सरकार ने विभिन्न नियन्त्रण लगाकर उन्हे समाप्त करने का प्रयत्न किया, पर विभिन्न बाधाओ के बावजूद जैबत्सु अपने अस्तित्व को बनाए रखने मे सफ. हो गए, उन्हे समाप्त नही किया जा सका।

4

लघु-स्तरीय उद्योग-धन्धों का योगदान
(ROLE OF SMALL SCALE INDUSTRIES)

लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धो के क्षेत्र मे जापान को जितना अनुभव है, उतना सम्भवत विश्व के बहुत कम देशो को है। लघु-स्तरीय उद्योग-धन्धो में जापानियो की कुशलता सदा से विश्वविख्यात रही है। ये उद्योग-धन्धे प्राचीन काल मे तो जापानी अर्थ-व्यवस्था के मुख्य आधार थे ही, किन्तु आज भी आर्थिक क्षेत्र मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

जापानी लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धो का विकास
(Development of Small Scale Industries in Japan)

जापान मे आधुनिक तरीके के भारी उद्योगो के विकास की आधारशिला 1868 मे मेजी पुनर्स्थापन के बाद रखी गई, किन्तु लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धे जापानी अर्थ-व्यवस्था पर सदियो पहले से छाए हुए थे। उस समय एक मात्र ये उद्योग धन्धे ही सम्पूर्ण जापानी अर्थ-व्यवस्था का आधार थे।

मेजी पुनर्स्थापन काल मे भारी उद्योगो की नींव पडी और शनै -शनै उनके विकास के साथ जापानी अर्थ-व्यवस्था के दो मुख्य आधार-स्तम्भ बन गये—भारी पैमाने के उद्योग तथा कुटीर एवं लघु उद्योग। जापानी अर्थ-व्यवस्था की मुख्य विशेषता इस बात मे रही कि वहाँ भारी पैमाने के उद्योगो ने लघु-स्तरीय उद्योगों को विनिष्ट करने अथवा उन्हे क्षति पहुँचाने की नीति नही अपनाई। इसके विपरीत लघु-उद्योग भारी उद्योगो के लिए सहायक और पूरक का काम करते रहे। एक-दूसरे के सम्बल से जापान की अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ होने मे बडी सहायता मिली।

एक ओर तो जापान पश्चिमी ढग पर अपना औद्योगीकरण करता रहा और दूसरी ओर लघु तथा कुटीर उद्योग धन्धे भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये रहे। इन लघु उद्योग-धन्धो द्वारा बनाई गई वस्तुओ का विदेशों में भारी मात्रा मे निर्यात होता रहा और इनसे प्राप्त होने वाली आय ने जापान के आधुनिक औद्योगीकरण को आगे बढाया। जापानी किसान परिवार कोकून पैदा करते थे और अपने कृषि-घरो मे रेशम उत्पन्न करते थे। विभिन्न प्रकार की अन्य वस्तुएँ छोटे-छोटे सस्थानो अथवा लघु-स्तरीय औद्योगिक इकाइयो मे बनती थी। इन्होंने ही जापानी अर्थ-व्यवस्था की नीव डाली।

जापान मे औद्योगिक ढाँचा एक क्षेत्र मे बड पैमाने के सस्थानो और दूसरे क्षेत्र मे लघु-स्तरीय इकाइयो का सम्मिश्रण बना रहा। सन् 1930 में भी यह

स्थिरता थी कि जापान के कुल व्यावसायिक प्रतिष्ठानो मे लगभग 54 प्रतिशत एक व्यक्ति सस्थान थे अर्थात् इन लघु औद्योगिक इकाइयो मे केवल एक-एक व्यक्ति काम करता था। सन् 1938 मे जापान के कुल कारखानो मे से लगभग 96 2 प्रतिशत सस्थान ऐसे थे जिनमे 5 से 100 के बीच व्यक्ति लगे हुए थे। निर्यात के क्षेत्र मे बडे पैमाने और छोटे पैमाने के उद्योगो का लगभग बराबर भाग था। सन् 1933 में जो कुल निर्यात किया गया उसमें मात्रा की दृष्टि से 60 6 प्रतिशत और मूल्य की दृष्टि से 57 1 प्रतिशत भाग लघु तथा मध्यम आकार के उद्योगो से प्राप्त हुआ था।

जापान के निजी निर्माण उद्योगो के क्षेत्र मे लघु-स्तरीय उद्योगो की जो महत्त्वपूर्ण स्थिति थी, उसका एक अनुमान लोकवुड (Lockwood) द्वारा दिए गए सन् 1930 के वर्ष के निम्नलिखित आँकडो से लगता है—

सस्थानों का आकार	लगे हुए व्यक्तियो का प्रतिशत
स्वतन्त्र	14 0
1–4 तक कार्य करने वाले	44 3
5–99 तक कार्य करने वाले	20 8
100–499 तक कार्य करने वाले	10 6
500 अथवा अधिक कार्य करने वाले	6 00,10 3

यद्यपि लोकवुड ने लिखा है कि उपर्युक्त आँकडे जापानी अर्थ-व्यवस्था मे लघु-उद्योगो के महत्त्व को बढा-चढा कर प्रस्तुत करते है तथापि इससे इनकार नही किया जा सकता कि उस समय जापान की औद्योगिक व्यवस्था में इनका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान था। गुन्थर स्टीन (Guenther Steen) के अनुसार, सन् 1932 में काम करने वाले श्रमिको के आधार पर फैक्ट्रियो का जो वितरण था वह लघु-स्तरीय इकाइयो के महत्त्व का प्रमाण था। उनके अनुसार लगभग 97 प्रतिशत फैक्ट्रियाँ लघु अथवा मध्यम आकार की थी। श्री स्टीन द्वारा दिए गए आँकडे इस प्रकार है—

श्रमिको की सख्या के आधार पर फैक्ट्रियों का वितरण (1932)

सस्थान	कुल काम करने वालो का प्रतिशत
5–9 लोगो को रखे हुए सस्थान	18
10–49 ,, ,, ,,	26
50–500 ,, ,, ,,	36
500 से अधिक ,, ,, ,,	25

इन आकडो से प्रकट है कि लगभग 39 प्रतिशत लोग छोटी इकाइयो मे 86 प्रतिशत मध्यम आकार की इकाइयो मे और 25 प्रतिशत बडी फैक्ट्रियो में लगे हुए थे। कुल उत्पादन मे छोटी फैक्ट्रियो का भाग 29 प्रतिशत, मध्यम आकार की फैक्ट्रियो का भाग 35 प्रतिशत और बडे आकार की फैक्ट्रियो का भाग 25 प्रतिशत था। कहने का आशय यह हुआ कि उस समय कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 64

से उसका वडा महत्त्व है। जापानी लोग अपने स्वभाव से भी कुटीर व लघु उद्योगो के प्रेमी हैं। अत. इस उद्योग का बने रहना अस्वाभाविक नही है।

जापान के कुछ लघु एवं कुटीर उद्योग
(Some Small Scale Industries of Japan)

जापानी सरकार के अनुसार लघु उद्योग उन्हे कहा जाता है जहाँ श्रमिको की सख्या थोडी, प्रबन्ध एक व्यक्ति के हाथ में, पूंजी का विनियोग छोटा, आर्थिक क्रियाओं का क्षेत्र छोटा हो तथा उद्योग के विनियोग-सम्बन्ध किसी निगम के साथ न हो। जापान में बहुत से लघु उद्योग सरकार द्वारा लाभ प्राप्त कर अपनी प्रगति कर रहे हैं। वस्त्र-उद्योग में कपास, ऊन, हौजरी, टॉवल, रूमाल, टेबिल-कवर, तैयार बने वस्त्र, मछली पकडने के जाल आदि लघु उद्योग हैं। मशीनरी उद्योग के क्षेत्र मे कृषि औजार, आरे, दरातियाँ, मशीनो के पुर्जे, बिजली एव सचार के सामान आदि के लघु उद्योग हैं। धातु उद्योग मे ढलाई के काम, जालियाँ, तार, स्टेन-लैस-स्टील के सामान आदि के लघु उद्योग हैं। इसके अतिरिक्त कांच, इनामिल छत ढकने की चद्दरें, *दियासलाई, हल्की धातु के सामान, लौह इस्पात के दैनिक जीवन के सामान*, चमडे, लकडी, प्लास्टिक एव स्टेशनरी के सामान, सिलाई मशीनें, सुइयाँ, स्टोप, चाकू, छुरियाँ चम्मच, रबड़ का सामान, लाख का सामान, प्लेट, घरेलू सजावट के सामान, बांस के बने-सामान आदि के अनेको लघु उद्योग हैं।

जापानी लघु उद्योग बड़े उद्योगो के सहायक और पूरक का काम करते हैं। बहुत से लघु उद्योग बडे उद्योगो के लिए उनके आर्डर के मुताबिक सामान, पुर्जे आदि तैयार करते हैं। ये लघु उद्योग छोटी जगहो पर घरो मे और छोटे-छोटे वर्कशॉपो मे चलाए जाते हैं। बडी सख्या मे लघु उद्योग अपने अस्तित्व के लिए सरकारी आर्डरो पर निर्भर हैं। अनेक लघु उद्योग प्रगति करके बड़े उद्योगों की राह पकड लेते हैं।

सन् 1948 से ही जापानी सरकार का लघु उद्योग बोर्ड (Board of Small Scale Industries) लघु उद्योगो के विकास, नियमन और सफल सचालन की दिशा मे उल्लेखनीय भूमिका निभा रहा है। बोर्ड लघु उद्योगो मे नई तकनीक के विकास, कारीगरो के प्रशिक्षण की व्यवस्था, आदर्श कारखानो की स्थापना, अल्पावधि प्रशिक्षण कोर्स, अनुसधान व सर्वेक्षण की अवस्था, समस्याओ के निरीक्षण, उपयोगी परामर्श आदि के लिए प्रयत्नशील रहता है। प्रशिक्षण के क्षेत्र मे सरकार की ओर से समुचित नि शुल्क प्रबन्ध है।

जापान में लघु एव बृहद् उद्योगों का सम्बन्ध
अथवा
लघु उद्योगों पर बृहद् उद्योगों का प्रभाव

हम कह चुके हैं कि जापान में लघु और कुटीर उद्योग सदियो पहले से चले आ रहे हैं और जब भारी उद्योगों का विकास हुआ तो लघु उद्योग गौण नहीं हुए बल्कि बृहद् अथवा बड़े पैमाने के उद्योगों के सहायक के रूप में काम करते रहे।

वास्तव मे जापानी अर्थ-व्यवस्था में ये दोनो ही क्षेत्र एक-दूसरे के सहयोगी रहे और अपने देश की अर्थ-व्यवस्था को मजबूत बनाने मे उल्लेखनीय योग देते रहे। जापान के निर्यात व्यापार मे द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक लघु और मध्यम दर्जे के उद्योग-धन्धों का महत्त्व बृहद् उद्योग-धन्धो से तुलनात्मक रूप मे अधिक ही रहा। लघु उद्योगो ने अपनी उत्पादन प्रणाली मे सुधार करके तथा अपना आधुनिकीकरण करके अपने आपको बडे उद्योगो का सहयोगी बनाए रखने की सफल चेष्टा की।

जापानी औद्योगिक व्यवस्था मे लघु और बृहद् दोनो ही प्रकार के उद्योगो के बीच एक निश्चित सम्बन्ध बना रहा जो आज भी कुछ अंश तक विद्यमान है। लघु उद्योगो ने बड़े उद्योगो से प्रतियोगिता नहीं बल्कि उनके पूरक का काम किया। वे बडे पैमाने की विक्रय-व्यवस्था, यातायात और वित्त से लाभ उठाते रहे। लघु और कुटीर संस्थान बडे कारखानो को कच्चे पदार्थ और सेवाएँ देते रहे या उत्पादन प्रक्रिया मे किसी विशिष्ट कार्य का सम्पादन करते रहे। इस प्रकार दोनो क्षेत्रो में परस्पर सहायक सम्बन्ध पलते-फूलते गए।

जापान मे लघु और बृहद् उद्योगो मे परस्पर सहायक सम्बन्ध का विकास इसलिए भी हुआ कि जापान के बृहद् उद्योग वहाँ के मूल उद्योगो से नही उपजे थे, बल्कि पश्चिमी देशो से आयातित थे। इस प्रकार बडे उद्योगो के महल छोटे उद्योगो की कीमत पर खडे नही हुए थे। इसके अतिरिक्त बडे उद्योग अधिकांशतः सैनिक और पाश्चात्य सामान का उत्पादन करने मे लगे थे, अत वे मूल छोटे उद्योगो के प्रतियोगी नहीं थे जो कि जापान के परम्परागत माल का उत्पादन करते थे।

सारांशतः लघु और बृहद् दोनो उद्योग जापान की आर्थिक गाडी के दो पहिए थे जिन्होंने मिलकर देश की औद्योगिक क्रान्ति को आगे बढाया। पर इसका यह अभिप्राय नही है कि छोटे उद्योगों के विकास मे कोई बाधा ही नहीं आई। वास्तव मे इन उद्योगो को अपनी ही श्रेणी के उद्योगो की आन्तरिक प्रतियोगिता का सामना करना पडा। ये प्रतियोगितामक समस्याएँ अधिकांश लघु एव मध्यम आकार के जापानी उद्योगो के सामने बनी रहीं।

लघुस्तरीय उद्योगों की समृद्धि के कारण

जापान में लघु एवं कुटीर उद्योग सदा से समृद्ध रहे हैं और आज देश के अत्यधिक औद्योगीकरण के युग मे भी अपना महत्त्व बनाए हुए हैं। निश्चय ही इन उद्योगो की इस समृद्धि और शक्ति के मूल में अनेक कारण निहित हैं। कुछ कारण तो पहले के हैं जो आज भी अपना फल दिखा रहे हैं और कुछ कारण नवीन हैं जो आधुनिक परिस्थितियो के अनुकूल हैं। संक्षेप मे ये सभी कारण इस प्रकार हैं—

(1) जापान के लघु और मध्यम आकार के उद्योग मेजी शासन काल मे कृषि जनसख्या के लिए पूरक आय के स्रोत बने रहे। फलस्वरूप रेशम, मछली आदि उद्योगो को बडा प्रोत्साहन मिला।

(2) मेजी युग में विदेशी व्यापार में सतुलन रखना आवश्यक था। इस आवश्यकता ने लघु और मध्यम आकार के उद्योगो के महत्त्व में वृद्धि की। जापान

को औद्योगिक आधारभूत सामान के आयात के कारण विदेशो को काफी भुगतान करना होता था। जापान के मूल लघु उद्योगो द्वारा उत्पन्न कच्चा रेशम, चाय, चटाई आदि के निर्यात द्वारा प्राप्त आय से इन भुगतानो मे बडी सहायता मिल सकती थी। अत इन उद्योगो को समृद्ध बनाए रखने की चेष्टा की गई।

(3) जब जापान मे पश्चिमी देशो के अनुसार औद्योगीकरण होने लगा तो लघु उद्योगो ने भी अपनी उत्पादन प्रणाली में सुधार करके अपनी क्षमता बनाए रखने की सफल चेष्टा की।

(4) लघु उद्योगो ने बडे पैमाने के कच्चे पदार्थ, कार्यशील पूँजी, बाजार आदि के सगठन से उपलब्ध बडे पैमाने की मितव्ययिताओ से लाभ उठाकर अपने पैर मजबूत किए।

(5) जापान के लघु उद्योग लकीर के फकीर नही बन रहे। बडे व्यवसायो के प्रभाव में आकर उन्होंने भी अपने क्षेत्रो का आधुनिकीकरण किया। साथ ही वे परम्परागत माल के उत्पादन तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि नए-नए उद्योग धन्धो के क्षेत्र मे भी प्रवेश करने लगे।

(6) जापान की जनसख्या मे जब तेजी से वृद्धि होने लगी तो इस बढती हुई जनसख्या को उत्पादन कार्य मे लगाने के लिए जापान ने प्रधानत लघु उद्योगो का सहारा लिया।

(7) लघु उद्योग लोगो की भिन्न-भिन्न रुचियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन करते रहे, अत उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई।

(8) जापान में यातायात व सवादवाहन की सुविधाओ के विस्तार से लघु-उद्योगो को प्रोत्साहन मिला। इन उद्योगो को कच्चा माल पहुँचाने और निर्मित वस्तुओ को बाजार मे ले जाने की पूरी सुविधा हो गई। फलस्वरूप यह सम्भव हो गया कि जापान के सभी क्षेत्रो मे लघु पैमाने के उद्योग पनप सकें।

(9) मेजी सरकार ने निर्यात के क्षेत्र मे लघु उद्योगो के महत्त्व को समझते हुए अनेक ऐसे कानून पास किए जिनका उद्देश्य इन उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुओ की किस्म को जाँचना और सुधार की प्रेरणा देना था। इन कानूनो के फलस्वरूप लघु उद्योग में परस्पर अनावश्यक प्रतियोगिता भी कम हो गई। इन कानूनो ने लघु उद्यमकर्त्ताओ तथा व्यापारियो मे पारस्परिक सहयोग को प्रोत्साहन दिया।

(10) लघु उद्योगो ने बडे पैमाने के उद्योगो से कोई प्रतियोगिता नही की बल्कि पूरक और सहायक का कार्य किया।

(11) सस्ते श्रम और विद्युत की उपलब्धि के कारण इन्हे काफी सहायता मिली। सस्ते श्रमिको के रूप में निर्धन किसानो की लडकियाँ सूती वस्त्र और अन्य लघु उद्योगों के उत्पादन को बढाने में बडी सहायक हुई।

(12) महान मन्दी काल के समय सरकार ने लघु उद्योगो को सहायता देने की सक्रिय नीति अपनाई। मन्दी का रेशम उद्योग पर सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पडा, अत सरकार ने इस उद्योग की सभी शाखाओं को आर्थिक सहायता दी। मन्दी काल

के दौरान लघु पैमाने के लिए निर्माता गिल्ड और निर्यात गिल्ड सगठित किए गए जिन्हें सरकार द्वारा कम ब्याज पर ऋण और अनुदान दिए जाने लगे ताकि वे सहकारिता के आधार पर क्रय विक्रय कर सकें।

(13) 1933 मे जापानी मुद्रा (येन) के अवमूल्यन के फलस्वरूप जब विश्व में जापानी वस्तुओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई तो लघु और कुटीर उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। इस समय सरकार ने इन्हे अपने सरक्षण मे निर्यात की मात्रा और मूल्य को नियन्त्रित करने का अधिकार दिया।

(14) सन् 1948 मे जापान सरकार ने एक लघु उद्योग परिषद् की स्थापना की जिसका कार्य इन उद्योगों के विकास का प्रयास करना रखा गया। यह परिषद् आज भी बडा उपयोगी कार्य कर रही है। लघु उद्योगों के विकास के लिए यह सभी प्रकार के प्रयत्न करती है।

(15) 1948 में ही सरकार ने ग्रामीण पुनर्निर्माण की एक योजना भी क्रियान्वित की जिससे गांवो मे उद्योग और कृषि को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

(16) जापानियों की रुचि, कुशलता और कार्यक्षमता लघु उद्योगों की समृद्धि बनाए रखने मे सर्वाधिक सहायक हुई है। जापानियों की इस प्रवृत्ति से भी लघु-उद्योगों को बडा भारी सहारा मिला हुआ है कि जिन क्षेत्रों में वस्तु की प्रकृति ऐसी है कि उसका उत्पादन कम पूंजी वाले तरीकों से किया जा सकता है, वहाँ उस वस्तु का उत्पादन-कार्य लघु पैमाने के उद्योगों के हाथ मे ही छोड दिया गया है।

इन सभी कारणों और परिस्थितियों का ही सम्मिलित परिणाम है कि आज के महान् औद्योगिक देश जापान में भी लघु व कुटीर उद्योग अपने सम्मानजनक अस्तित्व बनाए हुए हैं।

लघु उद्योगों का महत्त्व और योगदान
(Importance and Contribution of Small Scale Industries)

जापान की अर्थ-व्यवस्था मे लघु और कुटीर उद्योगों का सदैव से महत्त्व रहा है। यद्यपि वर्तमान प्रवृत्ति पूंजी-प्रधान बड़े उद्योगों पर विशेष आग्रह की है, तथापि लघु उद्योग देश की अर्थ-व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। जापान की आर्थिक सरचना मे इनके महत्त्व और योगदान को हम निम्न रूप मे व्यक्त कर सकते हैं—

1. अर्थ-व्यवस्था में विशिष्ट स्थान—देश की अर्थ-व्यवस्था में लघु उद्योगों का प्रारम्भ से ही विशिष्ट स्थान रहा है। प्रारम्भ मे आन्तरिक और बाह्य आवश्यकताओं की अधिकांश पूर्ति इन्हीं उद्योगों द्वारा होती थी और निर्यात व्यापार मे भी इनका महत्वपूर्ण स्थान था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच तो इन उद्योगों ने इतना तीव्र विकास किया कि गुण, मात्रा और मूल्य—सभी दृष्टियों से इनके द्वारा उत्पादित माल विश्व-बाजारों मे छा गया और पश्चिमी, राष्ट्रों को विवश होकर जापान पर यह आरोप लगाना पड़ा कि वह राशिपातन (Dumping) की नीति अपना रहा है। भारत सरकार ने कुछ वर्षों पूर्व अपना जो लघु उद्योग

अध्ययन दल जापान भेजा था उसकी रिपोर्ट के अनुसार जापान जैसा सुविशाल औद्योगिक साम्राज्य अपनी शक्ति इन्ही लघु एव कुटीर उद्योगो से प्राप्त करता है। लघु एव कुटीर उद्योग क्षेत्र मे लगभग 54 प्रतिशत एक-व्यक्ति कर्मशालाएँ तथा 40 प्रतिशत अन्य छोटे सस्थान हैं जिनमे 5 व्यक्तियो से कम व्यक्ति काम करते हैं।

2 **बडे उद्योगो के पूरक और सहायक**—जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, जापान के लघु एव कुटीर उद्योग देश के वृहद पैमाने के उद्योगो के पूरक और सहायक के रूप मे काम करते हैं। बडी सख्या मे लघु उद्योगो द्वारा बडे उद्योगो के आर्डरो के अनुसार माल उत्पादित और सप्लाई किया जाता है। लघु उद्योगो में काम करने वाले व्यक्ति बडे अनुभवी और कार्य-कुशल हैं तथा बडे उद्योगो के लिए सहायक माल तैयार कर उनकी लागत व्यय को नीचा रखते हैं। लघु उद्योगो द्वारा बडे उद्योगो को कच्चा माल, पदार्थ, सहायक पुर्जों, हिस्सो, सेवाओ आदि की पूर्ति की जाती है। साथ ही बडे उद्योगो की विक्रय-व्यवस्था, पूँजी, यातायात आदि से लाभ उठाकर ये लघु-उद्योग अपनी प्रतियोगी क्षमता को भी बनाए रखते हैं।

3 **रोजगार तथा उच्च जीवन-स्तर मे सहायक**—जापानी लघु और कुटीर उद्योग भारी सख्या में देशवासियो को रोजगार का अवसर प्रदान करते हैं। ये लोगो के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हैं। लघु एव कुटीर उद्योगो की जितनी विभिनता जापान में पाई जाती है, उतनी अन्यत्र नही। ये उद्योग उपभोक्ताओ की विभिन्न रुचियों का सामान तैयार करते हैं और आय-स्रोतो की वृद्धि मे विशेष रूप से सहायक होते हैं।

4 **अर्थ-व्यवस्था के सन्तुलन मे सहायक**—लघु एव कुटीर उद्योग जापानी अर्थ-व्यवस्था को सन्तुलित बनाए रखने मे सहायक हैं। जिन क्षेत्रो मे वस्तुओ की प्रकृति ऐसी है कि कम पूँजीवादी तरीके अपनाकर उसका निर्माण सम्भव है, वहाँ उत्पादन-कार्य लघु स्तरीय उद्योगो के हाथ मे ही है। जिन क्षेत्रो मे बडे पैमाने के औद्योगिक सस्थानों की गुँजाइश नही है अथवा कम है वहाँ लघु स्तरीय उद्योग ही रिक्त स्थानो की पूर्ति करते हैं।

5 **सरकारी सहयोग और लघु उद्योगों का प्रसार**—जापान के लघु और कुटीर उद्योग देश की अर्थ-व्यवस्था मे कमाऊ बेटे की भाति है, अत सरकार सदैव इन्हें प्रोत्साहित करती रहती है। सरकार का यह प्रयत्न है कि लघु उद्योगो के उत्पादन में वृद्धि हो, उनकी कार्य-क्षमता बढे, उत्पादित माल की किस्म अच्छी हो और उद्योगो में निरन्तरता लाई जाय ताकि नए नए उद्योगा का विकास हो सके। लघु उद्योग बोर्ड (Board of Small Industries) इस दिशा मे कितना सक्रिय है, इसका सकेत पिछले पृष्ठो मे दिया जा चुका है। सरकारी सहयोग और अनुकूल वातावरण के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से जापान मे लघु उद्योगो ने बढा हुआ उत्पादन दिया है। इन उद्योगों का प्रसार इतनी तेजी से हो रहा है कि बडे उद्योगो के लिए अब ये समस्या रूप में प्रस्तुत होने लगे हैं।

6 आर्थिक क्रियाओं को अधिक गतिशीलता देना—जापानी लघु और कुटीर उद्योग आर्थिक क्षेत्र में इतने छाए हुए हैं कि न केवल इनसे यातायात और सन्देश-वहन के साधनों को अधिक गति मिली है वरन् बैंकिंग व्यवसाय, व्यापार, कच्चे माल की माँग और तैयार माल की पूर्ति आदि को भी काफी बढ़ावा मिला है।

वास्तव में जापानी लघु और कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था में अपनी जड़ें अधिकाधिक गहरी जमाते जा रहे हैं। जापान अपनी हस्तकला और अन्य लघु एवं मध्यम उद्योगों के लिए विश्व विख्यात बन चुका है। जापानी जनता का इन उद्योगों के प्रति इतना गहरा प्यार है कि यह आशा करना ही व्यर्थ है कि पूँजी-प्रधान उद्योगों के प्रति आकर्षण की लहर इन्हें निकट या सुदूर भविष्य में समाप्त कर देगी।

लघु उद्योगों के बने रहने के कारण

जापान में लघु एवं कुटीर उद्योगों के बने रहने के मुख्य कारण निम्न-लिखित हैं—

(1) जिन आर्थिक क्षेत्रों में कम पूँजी से काम चलाया जा सकता है उनमें लघु एवं कुटीर उद्योग ही पनपते हैं।

(2) बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ रोजगार के अवसरों की माँग बढ़ती जा रही है और लघु एवं कुटीर उद्योग रोजगार की बढ़ती हुई माग की पूर्ति में विशेष सहायक हैं। देश में बेरोजगारी की समस्या उपस्थित न होने देने में इनका विशेष योगदान है।

(3) इन उद्योगों द्वारा उपभोक्ताओं की विभिन्न रुचियों और आवश्यकताओं के अनुकूल सस्ती पर सुन्दर वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

(4) पर्याप्त यातायात की उपस्थिति और कच्चे माल के शीघ्र वहन के साधनों में लघु उद्योगों के विकास को सम्भव बनाया है।

(5) अधिकाँश लघु उद्योग बड़े उद्योगों से सम्बन्धित हैं और इनमें आपसी प्रतियोगिता नहीं है।

(6) लघु उद्योग अपनी कार्य-क्षमता को आवश्यकतानुसार बढ़ाते रहते हैं और बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ विकसित तकनीक को लागू करते रहते हैं।

(7) सस्ते स्त्री श्रमिकों की उपलब्धि भी इन उद्योगों के विकास में सहायक है।

(8) सरकार भी इन उद्योगों की क्षमता बढ़ाने में पर्याप्त सहयोगी रही है।

(9) जापानी जनता अपनी प्रकृति से लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा इनके द्वारा उत्पादित माल की प्रेमी है।

लघु उद्योगों के प्रति सरकारी नीति

(Govt. or State Policy Towards Small Scale Industries)

जापान में लघु उद्योगों की समृद्धि और कार्यक्षमता के बने रहने में सरकारी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। लघु उद्योगों के प्रति जापानी सरकार की सक्रियता

का प्रारम्भ हम मेजी पुनर्संस्थापन काल से ही स्पष्ट रूप से देखते हैं। उस समय सरकार ने यद्यपि इस दिशा मे उतनी रुचि नही दिखाई जितनी बडे उद्योगो के विकास मे, तथापि वह इस ग्रोर बिलकुल उदासीन भी नही रही है। निर्यात-व्यापार मे लघु एव मध्यम आकार के उद्योगो के महत्त्व को सरकार ने भाँप लिया, अत उसका प्रयत्न रहा कि इनकी कार्य-क्षमता बढे और ये सुधरे हुए तथा उन्नत किस्म का माल उत्पादित करें।

सन् 1884 के बाद सरकार के अनेक कानूनो का मुख्य उद्देश्य छोटे उद्योग-पतियो और व्यावसायियो के बीच सहकारिता को प्रोत्साहन देना रहा ताकि उत्तम श्रेणी की वस्तुओ का उत्पादन सम्भव हो सके। सरकार ने अस्वस्थ प्रतियोगिता को रोकने की सफल चेष्टा की, जिससे घटिया उत्पादन हतोत्साहित हुआ।

सन् 1925 मे सरकार ने एक नियम द्वारा गिल्ड जैसी स्वेच्छिक सस्थाओ की व्यवस्था की ताकि लघु उद्योगो की वस्तुओ के गुणो की समय समय पर अच्छी तरह जाँच हो सके। वास्तव मे सन् 1930 तक सरकार की नीति का मुख्य उद्देश्य यही रहा कि लघु उद्योगो तथा निर्यात के लिए उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ के गुणो मे उत्तरोत्तर सुधार हो। सरकार ने प्रत्यक्ष हस्तक्षेप और नियन्त्रण की नीति पर न चलकर अपरोक्ष रूप मे ही अपनी नीति को ही अधिक सचालित किया, परोक्ष रूप मे केवल जाँच और सुधार तक ही सरकार ने अपने को सीमित रखा।

मन्दी काल मे सरकार ने लघु उद्योगो को आर्थिक सहायता देकर सरक्षण दिया। कम ब्याज पर ऋण और छोटे-छोटे अनुदान देने की व्यवस्था की गई। लघु उद्योगो को निर्माता गिल्डो और निर्यात गिल्डो के रूप मे सगठित करने का प्रयत्न किया गया ताकि वे सहकारिता के आधार पर अधिक अच्छी तरह क्रय-विक्रय कर सके। मुद्रा के अवमूल्यन के समय भी सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगो की सहायता की।

महायुद्ध-काल मे जापानी लघु और कुटीर उद्योगो को काफी आघात पहुँचा तथा पुनर्निर्माण काल मे भी बडे उद्योगो मे अधिकाधिक विनियोग और विकास का प्रयत्न किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से इन उद्योगो द्वारा उत्पादित कई वस्तुओ की माँग घटी। पर शीघ्र ही सरकार द्वारा लघु उद्योग बोर्ड, ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना आदि का गठन और क्रियान्वयन किया गया जिससे लघु, कुटीर, मध्यम आकार के उद्योगो को काफी प्रोत्साहन मिला। लघु उद्योग बोर्ड (Board of Small Industries) जो मार्च, 1948 मे स्थापित किया गया, लघु उद्योगो के विकास, नियमन और सफल सचालन की दिशा मे महत्त्वपूर्ण शस्त्र बना हुआ है। जैसा कि पिछले पृष्ठो में बताया जा चुका है, इस बोर्ड का काम सूचनाओ की प्राप्ति, विश्लेषण, लघु उद्योगो की समस्याओ का निरीक्षण और सुलझाव, उनमे नई तकनीको और सुविधाओ का विकास, नये पदार्थों को प्रोत्साहन, समुचित अनुसन्धान और सर्वेक्षण, आदर्श कारखानो की स्थापना, अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना आदि हैं। प्रशिक्षण क्षेत्र मे सरकार की ओर से नि शुल्क प्रबन्ध हैं।

सरकार की नीति लघु उद्योगो को हतोत्साहित करने की नही है, वरन् जिन क्षेत्रो मे ये उद्योग अधिक उपयोगी हैं, उनमे इन्हें प्रोत्साहन ही दिया जाता है।

इस अध्याय के सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि जापान की वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था मे लघु एव कुटीर उद्योगो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बडे उद्योगो का प्रसार हो रहा है तथापि लघु उद्योगो का न केवल प्रभावशाली अस्तित्व बना हुआ है बल्कि दिनो-दिन अपने विकसित रूप मे, ये बडे उद्योगो के लिए समस्या-रूप लेते जा रहे हैं। जापान मे लघु उद्योगो का भविष्य उज्ज्वल है, तथापि इनके अत्यधिक प्रसार के प्रति सरकार सजग है। सारांश रूप में, जापानी अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो को लघु, कुटीर एव मध्यम आकार के उद्योगो ने काफी प्रभावित कर रखा है।

5

जापानी विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएँ

(Salient Features of Japanese Trade)

"सन् 1968 के बाद जापान के विदेशी व्यापार में क्रान्तिकारी वृद्धि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।"

—प्रो लॉकवुड

विदेशी व्यापार जापान का प्राण है। जापान की आबादी बढ़ती जा रही है, उसके पास प्राकृतिक साधनों का अभाव है। और उसका भूमि क्षेत्र भी सीमित है, ऐसी स्थिति में आर्थिक दृष्टि से जीवित रहने के लिए जापान विदेश व्यापार पर निर्भर रहता है। जापानी अर्थ-व्यवस्था की गति जापान के विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है। महायुद्ध के बाद से तो जापान विदेशी व्यापार पर पहले से भी अधिक निर्भर रहने लगा है। युद्ध से पहले देश की आबादी 6 करोड़ से भी कम थी और आज लगभग 10 करोड़ हो गई तथा निरन्तर बढ़ती जा रही है। बढ़ती हुई आबादी की दैनिक जीवन की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए जरूरी है कि जापान अपने बहुत सारे खाद्य पदार्थ और अधिकतर कच्चा माल बाहर से मगाए और इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि इनकी कीमत का भुगतान करने के लिए वह कच्चे माल का परिष्कार करके उनसे तैयार और अर्द्ध-तैयार चीजें बनाएँ तथा दुनिया की मण्डियों से उन्हें बेचे।

विदेशी व्यापार ने जनता की आर्थिक समृद्धि के चार चांद लगा दिए हैं और आज यह देश विश्व के चार महान समृद्ध राष्ट्रों में गिना जाता है। जापानी माल संसार के सभी बाजारों में छाया हुआ है। जापान के विदेशी व्यापार की विशेषताओं और उसके लक्षणों को भली प्रकार समझने के लिए उपयुक्त होगा कि हम मेजी पुनर्संस्थापन से लेकर अब तक जापान के विदेशी व्यापार के विकास को देखें। इससे हमें समय-समय पर इसमें प्रकट होने वाली प्रवृत्तियों का परिचय मिल सकेगा और हम यह जान सकेंगे कि किन लक्षणों और परिस्थितियों ने जापान के विदेशी व्यापार को समय-समय पर गति दी है।

जापानी विदेशी व्यापार के विकास की गाथा

(History of Growth of Japanese Trade)

जापान के विदेशी व्यापार के विकास को मोटे रूप में हम अग्रलिखित कालों में विभाजित कर सकते हैं—

सन्तुलन के अन्तर को पाटा नही जा सका। 1894 से 1913 की अवधि मे जापान के आयात निर्यात की निम्नलिखित स्थिति रही—

वर्ष	आयात	निर्यात (मिलियन येन मे)	व्यापार सन्तुलन
1894–98	223 0	139 2	–83 6
1909–13	544 1	495 6	–48 5

इन आँकडो से प्रकट है कि इस अवधि मे आयात और निर्यात दोनो ही क्षेत्रो मे जापान आगे रहा। निर्यात और आयात मे यह वृद्धि इस बात का द्योतक थी कि जापान निर्मित माल का एक प्रमुख निर्यातक देश बनने जा रहा है।

1914 से 1936 तक का काल

प्रथम महायुद्ध काल मे विदेशी व्यापार को बडा प्रोत्साहन मिला। 1914 से 1919 तक, विदेशी प्रतियोगिता का कोई भय न होने से जापान के निर्यात मे बहुत ही अधिक वृद्धि हुई। इन पाच वर्षों के दौरान उसने मित्र राष्ट्रो के अधिकाश पूर्वी बाजारो को हथिया लिया। मित्र राष्ट्र युद्ध मे व्यस्त होने के कारण प्रतियोगिता न कर सके। इस समय तक जापान ने अपने व्यापारिक जहाजो का अच्छा विकास कर लिया था अत वह अपना माल दूर-दूर के देशो तक भेज सका। इस अवधि म जापान का विदेशी व्यापार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। इस अवधि मे उसके आयात निर्यात की स्थिति यह रही—

वर्ष	आयात	निर्यात (मिलियन येन मे)	व्यापार सन्तुलन
1914–16	628 2	808 8	+180 76
1916–19	1625 9	1885 9	+260 0

महायुद्ध की समाप्ति पर 1920 से 1930 के दौरान जापान को पुन विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पडा। आधारभूत रूप से जापान अभी इतना समथ नहीं हुआ था कि वह पश्चिम के उन्नत देशो का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पूरा मुकाबला कर पाता। फलस्वरूप जापानी व्यापार और उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। 1923 के भूकम्प ने भी जापान के विदेशी व्यापार पर बुरा असर डाला। स्थिति मे सुधार लाने के लिए जापानी मुद्रा का अवमूल्यन किया गया, लेकिन कोई स्थाई सुधार नही हो सका। फिर भी 1923 के बाद निर्यात बढा। पर दूसरी ओर आयात भी अधिक हुआ क्योकि अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए भारी मात्रा मे विदेशी सामग्री और मशीनरी मगानी पडी। कुल मिलाकर 1920 से 1927 के के बीच निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक हुआ।

विदेशी व्यापार को उन्नत करने और विदेशी बाजारो मे पैर जमाने के लिए सरकार ने अपने उद्योगो का पुनर्गठन किया लेकिन तभी 1927 में वित्तीय सकट का और बाद मे 1929 की विश्वव्यापी मन्दी का सामना करना पडा। इन दो झटको ने जापानी उद्योगो की उन्नति को अस्त व्यस्त कर दिया और जापानी माल

की विदेशी माँग घट गई। 1921–24 के दौरान जापान के विपक्ष मे व्यापार सन्तुलन (–) 448 8 मिलियन येन था जो 1928–30 की अवधि मे (–) 3136 मिलियन येन हो गया।

मन्दीकाल के कुप्रभाव और विदेशी व्यापार की प्रतिकूल स्थिति को दूर करने की दृष्टि से व अन्य आर्थिक कारणो से जापान ने अपनी मुद्रा यन का पुन अवमूल्यन किया। इसके अतिरिक्त सरकार शस्त्रास्त्रो के उत्पादन पर अधिक व्यय करने लगी। फलस्वरूप जापान की अर्थ-व्यवस्था न केवल सम्भल गई बल्कि बडी तेजी से समृद्धि की ओर चल पडी। युद्ध-सामग्री के निर्माण पर विपुल व्यय करने से औद्योगिक क्रियाशीलता मे भारी वृद्धि हुई जिसका विदेशी व्यापार पर काफी अनुकूल प्रभाव पडा। जहाँ जापान मन्दी काल के झटके को आसानी से पार कर गया, वहाँ विश्व के अन्य प्रमुख देशो को बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा।

सन् 1931 से 1939 के बीच जापान का विदेशी व्यापार पहले की सभी सीमाओ को लाघ गया। उसके निर्यात व्यापार का आकार लगभग 83 से 85 प्रतिशत अधिक बढ गया जबकि आयात के आकार मे वृद्धि लगभग 30 प्रतिशत ही हुई। मुख्य बात यह थी कि जापान का विदेशी व्यापार उस स्थिति मे बढा जब कि कुल मिलाकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति सतोषजनक नही थी। जापान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में प्रमुखता अपने तीव्र औद्योगीकरण के फलस्वरूप प्राप्त कर सका। निर्मित माल के निर्यात के अनुपात मे कमी हो गई। दूसरी ओर कच्चे और अर्द्ध-निर्मित माल का आयात गिरा।

इस अवधि मे जापान यद्यपि विश्व के सभी बाजारो मे छा गया, लेकिन सुदूरपूर्व और सयुक्तराज्य अमेरिका जापानी विदेशी व्यापार के सबसे प्रमुख क्षेत्र थे। सुदूरपूर्व को जापान सूती माल और मशीनरी का निर्यात करता था तथा सयुक्त-राज्य अमेरिका को कच्चे रेशम, चाय, मछली आदि का। आयात के क्षेत्र मे सुदूरपूर्व से जापान कच्चा माल खरीदता था और अमेरिका स कपास, खनिज तेल, गेहूँ और इजीनियरिंग सामग्री।

(Trade Corporation) स्थापित किया जिसे युद्ध काल में देश की व्यावसायिक नीति के सम्बन्ध मे पूर्ण एकाधिकार था। युद्ध काल मे जीते गए उपनिवेशो में भी कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था की गई।

महायुद्ध मे प्रारम्भिक तूफानी विजयो के बाद धीरे-धीरे पलडा धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध होने लगा। बाद मे घटना-चक्र इस तेजी से घूमा कि जापान, जर्मनी, इटली आदि धुरी राष्ट्र एक-एक करके विजित प्रदेशो को खोते गए। मित्र राष्ट्रो की भीषण बम वर्षा ने जापानी उद्योगो मे अधिकाँश को तहस-नहस कर दिया। युद्ध की समाप्ति पर जब जापान ने आत्म समर्पण किया तो उसकी अर्थ-व्यवस्था एक प्रकार से तबाह हो चुकी थी और उसका विदेशी व्यापार ठप्प हो गया था।

द्वितीय महायुद्धोत्तर एव वर्तमान काल मे जापानी विदेशी व्यापार

महायुद्ध की समाप्ति पर जो मित्र राष्ट्रीय सैनिक शासन थोपा गया, उसने 1946 मे विदेश व्यापार निगम को भग करके उसके स्थान पर विदेश व्यापार बोड (Foreign Trade Board) की स्थापना की। सैनिक शासन के प्रारम्भिक दो वर्षों मे व्यापार-सचालन सरकार के हाथ में रहा, लेकिन 1947 मे निजी व्यापार को भी मुक्त कर दिया गया। इस समय जापान का निर्यात तो लगभग बन्द था, किन्तु आयात मे वृद्धि होती जा रही थी। इस प्रकार जापान सम्भ ना चाहकर भी सम्भल नही पा रहा था। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक चलने वाली नही थी। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो और साम्यवाद के भय से मित्र राष्ट्र बाध्य हो चुके थे कि वे जापान के पुनरुद्धार के द्वार खोल दें।

सैनिक प्रशासन की नीति में परिवर्तन के फलस्वरूप जापान के व्यापारिक असन्तुलन को अमेरिकन आर्थिक सहायता द्वारा अधिकाधिक दूर किया जाने लगा। जापान के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए एक नौ सूत्री कार्यक्रम बनाया गया। 1947 के बाद जापान के उद्योग पुन पनपने लगे, लेकिन विदेशी व्यापार की स्थिति मे अविलम्ब कोई सुधार नही हो सका। 1949 के प्रारम्भ तक जापानी विदेशी व्यापार मुख्यत सरकारी व्यापार सस्थानो और सैन्य प्रशासन के कठोर नियन्त्रण मे सचालित होता रहा। सन् 1948 मे जो निर्यात हुआ उसकी मात्रा 1934–36 के वार्षिक औसत के 8 प्रतिशत से अधिक नही थी, पर कुछ समय बाद 1950 के मध्य जो कोरिया युद्ध छिडा उसने जापानी अर्थ-व्यवस्था मे प्राण फूँक दिये। जापान ने सयुक्तराष्ट्र सघीय सेना को अपना माल बेचकर विशाल धन राशि उपार्जित की। इसके अतिरिक्त सन् 1951 मे 1949 की अपेक्षा निर्यात का मूल्य भी लगभग 165 प्रतिशत अधिक रहा। फलस्वरूप जापानी अर्थ-व्यवस्था तेजी से पनपी जिसका विदेशी व्यापार पर काफी अनुकूल प्रभाव पडा।

सन् 1952 मे पराधीनता से मुक्त हो जाने पर जापान के आर्थिक पख तेजी से फडफडाने लगे और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे वह तेजी से घुसता चला गया। सन् 1953 मे सरकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन के अनेक उपाय किये गये। सन् 1954 के बाद निर्यात की तुलना में आयात गौण हो गया। फिर भी

1955 तक उसका निर्यात युद्ध पूर्व के स्तर को नहीं छू सका, हालांकि औद्योगिक उत्पादन उस समय दुगुने से भी अधिक हो गया।

जापान ने अपने निर्यात व्यापार को बढाने के लिए नये-नये बाजार ढूँढना और आयात के लिए नये-नये साधन खोजना शुरू कर दिया। दूसरी ओर सयुक्त राज्य अमेरिका की दिलचस्पी जापान के विदेशी व्यापार की समृद्धि मे अधिकाधिक बढती गई चूँकि उसने समझ लिया कि एक समृद्ध जापान ही अमेरिकन हितो के लिए अधिक सुरक्षित हो सकता है। इन सभी कारणो से जापान का विदेशी व्यापार शीघ्र ही युद्ध पूर्व के स्तर को छूने लगा। निर्यात व्यापार की सरचना मे परिवर्तन से भी इसे प्रोत्साहन मिला जहाँ सन् 1956 मे निर्यात 250 1 करोड डॉलर का हुआ था वहाँ 1962 मे यह 491 6 करोड डॉलर का हुआ। उद्योगो को पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक सामान बाहर से मँगाने के फलस्वरूप आयात मे भी वृद्धि हुई। 1956 मे 322 9 करोड डालर का आयात हुआ था जबकि 1962 मे 563 7 करोड का। विगत कुछ वर्षो मे जापान के बढते हुए आयात-निर्यात का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है —

(मूल्य करोड डॉलर)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल व्यापार	व्यापार शेष
1947	52 6	17 4	70 0	–35 2
1965	816 9	845 2	1,662 1	+28 3
1970	1,888 1	1,931 8	3,819 9	+43 7
1974	6,200 0	5,600 0	1,18,000 0	–600 0
1977	7,076 0	8,051 0	15,127 0	+975 0

तुलना से स्पष्ट है कि महायुद्ध काल मे जापान के विदेशी व्यापार को इतना जबरदस्त आघात पहुँचा कि अनेक वर्षो तक व्यापार शेष उसके प्रतिकूल रहा। 1947 मे 52 6 करोड डॉलर के आयात की तुलना मे निर्यात केवल 17 4 करोड डॉलर का हुआ और कुल व्यापार 70 करोड डॉलर का हुआ। 1947 से, मुख्यत कोरिया युद्ध के कारण विदेशी व्यापार मे लगभग चौगुने से भी अधिक वृद्धि हुई और आयात एव निर्यात को मिलाकर कुल व्यापार 335 5 करोड डॉलर का हुआ। फिर भी आयात अधिक मूल्य का रहा, अत व्यापार शेष का घाटा 64 करोड डॉलर का हुआ। 1965 में लगभग 28 करोड डॉलर से व्यापार शेष अनुकूल रहा। कुल व्यापार लगभग 1,662 करोड डॉलर का हुआ जो 1947 की तुलना में लगभग 24 गुना अधिक था। 1970 में व्यापार शेष 43 7 डॉलर से पक्ष मे रहा और कुल व्यापार लगभग 3,820 डॉलर का हुआ जो 1947 की तुलना मे 54 गुना से भी अधिक था। 1974 में कुल व्यापार 11,800 डॉलर का हुआ किन्तु आयात 6,200 करोड डॉलर का था जबकि निर्यात 5,600 के थे, अत व्यापार शेष 600 करोड डॉलर से प्रतिकूल रहा। बाद के वर्षों में स्थिति में तेजी से सुधार हुआ और

1977 मे व्यापार शेष 975 करोड डॉलर से पक्ष मे रहा। इस वर्ष कुल व्यापार लगभग 15,127 करोड डॉलर का हुआ जो 1947 की तुलना मे 216 गुना अधिक था।

आज जापान का विदेशी व्यापार इतना अधिक समृद्ध है जितना पहले कभी नही था। जापान द्वारा आयात की जाने वाली चीजो मे मुख्य ये हैं—(क) खाद्य-पदार्थ–चावल, गेहूँ, नमक, चीनी (ख) औद्योगिक सामग्री–कपास, कच्ची ऊन, लोहा अयस्क, बाक्साइट, तांबा अयस्क, कोककारी कोयला, कच्चा रबड, कच्चा तेल आयात की सर्व प्रमुख चीजें कच्चा माल, ईंधन और खाद्य पदार्थ हैं। जापान प्राय अपने सारे के सारे कच्चे तेल के लिए, कपास और रबड के लिए, तथा 90 प्रतिशत से अधिक लौह अयस्क और चाँदी के लिए विदेशी स्रोतो पर निर्भर करता है। निर्यात की दृष्टि से प्रमुख चीजें ये हैं—समुद्री चीजें, कपडा और कपडे की चीजें, कच्चा रेशम, सूती धागा, रेयोनी धागा, नकली कपडे की चीजें, सूती चीजें, रेशमी चीजें, ऊनी चीजें, रेयोन की चीजें, बुने हुये रेयोन की चीजें, कपडे, औषधियाँ आदि तथा रासायनिक चीजें, रासायनिक उर्वरक, चीनी-मिट्टी के बर्तन, धातु और धातु की चीजें, लोहा और इस्पात, मशीनें, कपडे की मशीनें, सिलाई मशीनें, रेडियो सैट, मोटर गाडियाँ आदि, जहाज, प्लाईवुड, प्रकाशीय उपकरण, खिलौने आदि। धातु की चीजो, मशीनो और रासायनिक पदार्थों का निर्यात विशेष रूप से बढा है।

जापान के बदलते हुए औद्योगिक ढाँचे और विदेशों मे उसके नये व्यापार तथा अन्य कारणो से देश के विदेश व्यापार के स्वरूप मे और उसके प्रसार-क्षेत्रो मे स्पष्ट परिवर्तन आया है। जहाँ तक प्रसार-क्षेत्र का प्रश्न है युद्ध के बाद से एशिया के बजाय उत्तरी अमेरिका पर जोर बढ गया है। युद्ध से पहले, जापानी माल की सबसे अधिक निकासी एशियाई मडियो मे हुआ करती थी। महाद्वीपीय चीन, भारत और इडोनेशिया मे ही जापान के कुल निर्यात का 40 प्रतिशत हिस्सा खप जाता था। आज जापान का एक सबसे बडा व्यापारिक साझीदार अमेरिका है।

विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने के लिए सरकार पूरी तरह सक्रिय है। सार्वजनिक और निजी दोनो ही क्षेत्रो मे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया निरन्तर जारी है।

जापान के विदेशी व्यापार के तीव्र प्रसार के कारण

जापानी विदेशी व्यापार का जो चित्र खीचा गया है उससे न केवल इसकी विशेषताएँ और महत्ता स्पष्ट होती हैं, बल्कि इसके विकास के कारणो का भी आभास मिल जाता है। फिर भी स्पष्टता की दृष्टि से इसकी वृद्धि के कारणों को निम्नानुसार प्रकट करना उचित होगा—

(1) तोकुगावा शासन काल में जापानी अर्थ-व्यवस्था पूरी तरह कृषि प्रधान और पिछडी हुई थी। पृथक्करण की नीति के फलस्वरूप विदेशी-व्यापार नगण्य था, लेकिन मेजी सरकार ने पृथक्करण की नीति का परित्याग करके विदेशी व्यापार के द्वार खोल दिए।

( ) मेजी शासन-काल मे जापान के औद्योगीकरण की नींव डाली गई। पाश्चात्य औद्योगिक प्रणालियो को अपनाया गया। उद्योगो का विकास होने से निर्मित माल का निर्यात बढा।

(3) कुछ वस्तुओ के उत्पादन मे जापान को अन्य देशो के मुकाबले सदा प्रतियोगात्मक लाभ रहा। उदाहरणार्थ, रेशम के उत्पादन मे जापान की श्रेष्ठता ने उसे बडी सहायता पहुँचाई। इसके निर्यात के बल पर वह अपने औद्योगीकरण के लिए आवश्यक सामग्री का आयात कर सका। सूती वस्त्र उद्योग मे भी जापान ने इतनी प्रगति करली कि आगे चलकर वह इस क्षेत्र के 'राजा' ब्रिटेन से भी आगे निकल गया।

(4) प्रथम महायुद्ध काल मे विदेशी प्रतियोगिता के न रहने से जापान के विदेशी व्यापार को भारी प्रोत्साहन मिला। पश्चिमी देश युद्ध मे फँसे रहे और जापान ने उनके पूर्वी बाजारो को हथिया लिया।

(5) ससार की व्यापारिक गतिविधियाँ भी जापान के विदेशी व्यापार के अनुकूल रही। उदाहरणार्थ, अमेरिका जापान के रेशम का निरन्तर भारी ग्राहक बना रहा और व्यापार की शर्तें भी जापान के अनुकूल रही।

(6) जापानियो की सीखने और सुधरने की प्रवृत्ति ने उनके विदेशी व्यापार को बहुत आगे बढाया। सरकार ने विदेशी वस्तुओ के नमूने मगा-मगा कर जापानी उद्योगपतियो और निर्माताओ को दिए ताकि वे भी वैसी अथवा उनसे अच्छी वस्तुओ का निर्माण करके विदेशी माँग को प्रोत्साहन न दे।

(7) जापान मे श्रम के सस्ते होने से माल की उत्पादन लागत कम रही। फलस्वरूप वह पश्चिमी देशो की शक्तिशाली प्रतियोगिता का मुकाबला कर सका।

(8) जापान की विक्रय व्यवस्था भी बहुत अच्छी रही। जापानी एजेन्टो ने विदेशी बाजारो की माँग का अच्छी तरह अध्ययन किया और तदनुसार पूर्ति को बढाया। जापानियो ने सदैव विविध प्रकार की ऐसी वस्तुओ को बनाने की चेष्टा की जो सस्ती भी हो और आकर्षक तथा अच्छी भी। जापानी उत्पादन उपभोक्ताओ की रुचियो के अनुसार बदलता रहा, अत उसकी लोकप्रियता मे स्थायी कमी कभी नहीं आ पाई।

(9) जैबत्सु सगठन ने विदेशी व्यापार का विस्तार करने में भारी भूमिका अदा की। जबत्सु परिवारो के पास बडे-बडे उद्योग, बैंक, बीमा और जहाजी निगम रहे। फलस्वरूप ये सभी (बीमा, जहाजी और बैंकिंग सगठन) सयुक्त रूप मे प्रभावशाली ढग से काम कर सके और अपने देश के विदेशी व्यापार को गति दे सके।

(10) विदेशी व्यापार को बढाने मे सरकार ने सदैव सक्रिय रुचि ली और समय-समय पर उपयोगी कदम उठाए। विदेशो मे वाणिज्य मिशन भेजे गए। ऐसे नियम बनाए गए जिनसे वस्तुओ की किस्म सुधरी हुई निकले। छोटी औद्योगिक इकाइयो के गिल्ड बनाए गए जिनका निर्यात व्यापार में बडा सहयोग रहा। सरकार ने निर्यात की दृष्टि से उपयोगी वस्तुओ को बढाने वाले लघु और कुटीर उद्योगो को

आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया। समय-समय पर मौद्रिक व्यवस्था में सुधार करके या परिवर्तन करके विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया। निर्यात किए जाने वाले माल के समुचित निरीक्षण की व्यवस्था की गई। जहाजरानी का तेजी से विकास किया गया ताकि जापानी माल विश्व के बाजारों में आसानी से भेजा जा सके। निर्यात व्यापार के क्षेत्र मे लोचशीलता रखी गई। जापान उदार व्यापारिक व्यवस्था का समर्थक रहा और इससे भी उसके विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला। सरकार ने अधिकांशत उन्ही सामग्रियो का आयात किया जिनसे देश का औद्योगीकरण हो ताकि उन उद्योगो मे माल बनाया जाकर बाहर भेजा जा सके।

(11) विगत कुछ वर्षों से जापान सरकार ने आयात-नियन्त्रण को भी अधिकाधिक ढीला करने की नीति अपनाई है। इसके अतिरिक्त, अधिकाधिक प्रतियोगिता की सम्भावनाओ का सामना करने के लिए जापान के निजी उद्योगो ने अपने यन्त्रो और साज सामान को आधुनिक बनाने की दृष्टि से औद्योगिक पूँजी-निवेश का एक विस्तृत कार्यक्रम लागू किया है।

इन्ही सब कारणो से जापान की अर्थ-व्यवस्था और विदेशी व्यापार की स्थिति अत्यधिक समृद्ध बन सकी है।

जापान के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएं
(Salient Features of Japanese Foreign Trade)

जापान के विदेशी व्यापार के विकास की कहानी पढ़ने के उपरान्त उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं—

1. विदेशी व्यपार की प्रधानता—विदेशी व्यापार जापानी अर्थ-व्यवस्था की समृद्धि और गति का मुख्य आधार है। निरन्तर बढ़ती हुई जनसख्या, प्राकृतिक साधनो की कमी और सीमित भू-क्षेत्र की परिस्थितियो में आर्थिक दृष्टि से जीवित रहने के लिए जापान विदेशी व्यापार पर अत्यधिक निर्भर है। 1870 मे जापान का विदेशी व्यापार 70 लाख डॉलर था पर अब यह लगभग 2,000 करोड डालर से भी अधिक हो गया है।

2. विदेशी व्यापार में निरन्तर वृद्धि—जापान का विदेशी व्यापार निरन्तर वृद्धिशील है। यह वृद्धि आयात और निर्यात दोनो ही क्षेत्रो मे हो रही है। उदाहरणार्थ 1967 मे आयात-मूल्य 1167 करोड डॉलर था जो 1970 में बढकर लगभग 1888 करोड डॉलर हो गया और इसी प्रकार निर्यात-मूल्य 1967 मे 1045 करोड डॉलर था जो बढकर 1970 मे लगभग 1931 करोड डॉलर हो गया।

3 विदेशी व्यापार सरचना मे परिवर्तन—जापान के बदलते हुए औद्योगिक ढांचे और विदेशो मे इसके नये व्यापार आदि के फलस्वरूप उसके विदेशी व्यापार के स्वरूप में और उसके प्रसार क्षेत्रो में स्पष्ट परिवर्तन आया है। युद्ध से पहले कपडा उद्योग के कच्चे माल का आयात कुल आयात का 32 प्रतिशत हुआ करता था और कपडे का निर्यात कुल निर्यात के आधे के बराबर था। लेकिन 1965 तक आते-आते कपडा उद्योग के कच्चे माल का आयात कुल आयात के 10 4 प्रतिशत के बराबर

रह गया और कपड़े का निर्यात कुल निर्यात के 18 67 के बराबर। अब तो इस स्थिति मे कुछ और भी परिवर्तन आया है। इसी प्रकार जापान के आयात-मूल्य का अधिकांश कच्चे माल और ई धन पर लगता है। लेकिन उसमे कमी आती जा रही है। उदाहरणार्थ युद्ध से पहले वह कुल आयात का 80 प्रतिशत होता था। 1965 मे 58 6 प्रतिशत हो गया और अब और भी कम। दूसरी ओर निर्मित माल के आयात मे पूर्वापेक्षा वृद्धि हुई है। प्रसार क्षेत्र की दृष्टि से युद्धोत्तर काल मे एशिया के बजाय उत्तरी अमेरिका पर जोर बढ गया है। निर्यात-क्षेत्र मे धातु की वस्तुओ मशीनो और रासायनिक पदार्थों का निर्यात बढता जा रहा है। पिछले कुछ वर्षो मे तैयार माल के निर्यात में विशेष प्रगति हुई है।

4 आयात नियन्त्रण ढीला करने की नीति—जैसा कि कहा जा चुका है, पिछले कुछ वर्षों से जापान सरकार ने क्रमश आयात-नियन्त्रण ढीले करते जाने की नीति अपनाई है। 1965 तक आयात व्यापार के 93 प्रतिशत पर से प्रतिबन्ध हटा लिए गए थे और अब तो शेष व्यापार प्रतिबन्ध भी शिथिल कर दिए गए हैं।

5 औद्योगिक पूंजी-निवेश में निरन्तर वृद्धि—अधिकाधिक प्रतियोगिता की सम्भावनाओ के सफल मुकाबले के लिए जापान के निजी उद्योगो ने अपने सयन्त्रो और साज-सामान को आधुनिक बनाने की दृष्टि से औद्योगिक पूंजी निवेश का विस्तृत कार्यक्रम अपनाया है जिससे कच्चे माल और मशीनों के आयात में वृद्धि हुई है।

6 लोचशील व्यवस्था—सम्पूर्ण जापानी अर्थ-व्यवस्था लोचशील है, अत समयानुकूल परिवर्तनो के माध्यम से जापान विदेशी व्यापार में सकटो को टालने अथवा उनका सफल मुकाबला करने की क्षमता रखता है। प्रो० एलन ने ठीक ही लिखा है कि "जापानी अर्थ-व्यवस्था की लोचशीलता ने उसे नये बाजार ढूँढने और नई प्रतिस्थापना वस्तुओ से उन बाजारो तथा वस्तुओ के होने वाले नुकसान से बचाया है जो बाजार और वस्तुओ के व्यापार में होने वाले परिवर्तनो से हुआ।" युद्धोत्तर काल मे विदेशी व्यापार की सरचना और दिशा मे जो परिवर्तन होते रहे हैं, वे इसकी लोचशीलता के परिचायक हैं।

7 निर्यात वृद्धि के प्रति जागरूकता—जापानी उद्योगपति निर्यात-वृद्धि के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं। वे उत्पादन लागत को कम करने के लिए आधुनिकीकरण और स्वचालितता की पद्धतियाँ तो अपना ही रहे हैं, पर साथ ही विश्व बाजार को अपने उत्पादनो से परिचित कराने के लिए प्रदर्शनियो, शिष्टमण्डलो, नमूनो की भेंट आदि उपायो का भी भरसक आश्रय लेते है।

8 सरकार की प्रोत्साहन नीति—जापान सरकार ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने की प्रभावशाली नीति अपना रखी है। निर्यात सवर्द्धन की प्रगतिशील नीतियाँ अपनाई गई हैं और निर्यात उद्योगो को विभिन्न रियायतें दी जाती हैं। आयातो को हमेशा उत्पादन तथा निर्यातोन्मुख (Production-cum Export Oriented) बनाने की नीति पर बल दिया गया है।

9. अमेरिकी प्रोत्साहन—जापानी विदेश व्यापार को प्रोत्साहित करने मे सयुक्त राज्य अमेरिका का विशेष योगदान रहा है। जैसाकि हम कह चुके हैं, आज जापान का एक सबसे बडा व्यापारिक साझेदार अमेरिका है। अमेरिका जापान के निर्यातो का सबसे बडा ग्राहक और जापान के आयातो का सबसे बडा विक्रेता रहा है।

10 अन्य—और भी अनेक बातें जापानी विदेशी व्यापार की समृद्धि को बढाने वाली हैं। उदाहरणार्थ जापानी लोग पक्के "बनिया" हैं जो अपने आर्थिक लाभ के लिए अपनी विदेश नीति मे समयानुसार हेर-फेर करने से नही चूकते। हाल ही के वर्षों मे जापान साम्यवादी देशो के साथ भी अपना व्यापार-सम्बन्ध बढा रहा है। भारत के साथ जापान के विदेशी व्यापार मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। जापान का विदेशी व्यापार पूर्वापेक्षा आज अधिक विविधता-पूर्ण है और अधिकाँश व्यापार सामुद्रिक मार्ग से होता है।

निष्कर्ष रूप में, जापान का विदेशी व्यापार उसके आर्थिक समृद्धि की रीढ की हड्डी है।

6

आ[illegible]क विकास में राज्य का योगदान

(Role of State in Economic Development of Japan)

"मेजी सम्राट के शासन-काल में जापान ने कुछ ही दशकों में वह सब पाने का प्रयत्न किया जिसे पाने में पश्चिम को सदियाँ लगी थीं। एक आधुनिक राष्ट्र अस्तित्व में आया ...।"

—विदेश-मन्त्रालय, जापान

लगभग एक शताब्दी पूर्व जापान पूरी तरह एक कृषि प्रधान देश था। सुदूरपूर्वी कृषि अर्थ-व्यवस्था के सभी लक्षण उसमें विद्यमान थे। दरिद्रता का बोल-बाला था, भूमि पर जनसंख्या का अनुचित भार था और कृषि उत्पादन क्षमता बहुत ही गिरी हुई थी। परम्परागत और पिछड़ा हुआ प्राविधिक ज्ञान था, राजनीतिक दृष्टि से देश सामन्तवादी प्रथा मे जकड़ा हुआ था और विदेशों से उसका सम्बन्ध नगण्य होने से विदेशी व्यापार नहीं के बराबर था। तोकुगावा शासन समाप्ति के के समय तक जापान की यही स्थिति थी।

लेकिन 1868 में मेजी पुनर्संस्थापन के बाद जापान की अर्थ-व्यवस्था तेजी से अगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुई। विदेश मन्त्रालय, जापान के एक प्रकाशन के अनुसार "मेजी काल (1868–1912) विश्व इतिहास के सबसे उल्लेखनीय युगों में से है। सम्राट मेजी के शासन काल में देश ने कुछ ही दशकों में वह सब कुछ पाने का प्रयत्न किया जिसे पाने में पश्चिम को सदियाँ लगी थी। एक आधुनिक राष्ट्र अस्तित्व में आया...उसमें आधुनिक उद्योग थे, आधुनिक राजनीतिक संस्थाएँ थी और समाज का आधुनिक ढाँचा था।" मेजी पुनर्संस्थापन के समय से ही जापान की आर्थिक प्रगति के द्वार खुल गए और राज्य की सक्रिय भूमिका के फलस्वरूप लगभग 75 वर्षों के अल्पकाल में ही जापान विश्व का एक अग्रणी औद्योगिक राष्ट्र बन गया। आज जापान को हम विश्व के चार महान समृद्ध औद्योगिक देशों में गिनते हैं और इसका मुख्य श्रेय इसी बात को है कि सरकार ने देश के आर्थिक विकास में निर्णयकारी भूमिका अदा की है। जापान के आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका को पृथक्-पृथक् शीर्षकों में देखना उपयुक्त होगा।

कृषि क्षेत्र मे राज्य की भूमिका
(Role of State in Agricultural Development of Japan)

यद्यपि कृषि क्षेत्र में कुछ रुचि तोकुगावा शासन ने भी ली, लेकिन राज्य की वास्तविक रूप से सक्रिय भूमिका का आरम्भ मेजी युग मे हुआ जो बढता ही गया। सरकार ने फार्म-व्यवस्थापन किया, कृषि वित्त की व्यवस्था की, कीमत-स्थायित्व लागू किया और कृषि के विकास की दृष्टि से विभिन्न कार्य किए। सरकार का योगदान मुख्यत इस रूप मे रहा—

1 कृषि वित्त की व्यवस्था के लिए 1896 मे एक कानून पास करके दस मिलियन येन की पूँजी से एक बैंक की स्थापना की गई जो किसानो को अचल सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण दे सके। इसके अलावा 46 कृषि एव औद्योगिक बैंक स्थापित किए गए। सरकारी वित्तीय सहायता सरकारी कार्य-गृहो और खाद-फैक्ट्रियो को प्रोत्साहन देने के लिए भी प्रदान की गई। 1922 मे किसानो को डाक-घर के सुरक्षित कोष और जीवन बीमा पालिसी से ऋण दिया जाने लगा। 1925 तक इस प्रकार के सैकडो वेयर हाउस स्थापित कर दिए गए जो किसानो के माल पर साख प्रदान करने की अनुमति दें। सन् 1920 मे एक केन्द्रीय सहकारी बैंक भी स्थापित किया गया जिसने 1924 के बाद काम करना शुरू कर दिया। सहकारी समितियो को प्रोत्साहन दिया गया जिनकी सख्या 1937 तक लगभग 16 हजार हो गई। 1932 मे विशेष ऋण और हानि मुआवजा कानून पास किए गए ताकि केन्द्रीय सहकारी बैंक व बन्धक बैंक किसानो को दीर्घकालीन और अल्पकालीन ऋण दे सकें। सरकार ने किसानो की नकद आय बढाने के लिए राहत कार्य भी शुरू किए मन्दी के समय रेशम की कीमत बनाये रखने के लिए वित्तीय सहायता दी गयी। राहत-सहायताओ का मुख्य भाग कृषि भूमि के लिए सुधार, देहाती नालियो और जल-व्यवस्था मे सुधार आदि के काम मे लिया गया।

2 राज्य ने कृषि क्षेत्र में कीमत-स्थायित्व का प्रयास किया। 1921 मे चावल-नियन्त्रण अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार सरकार को चावल की पूर्ति नियमित करने के लिए चावल खरीदने, बेचने और एकत्र करने की शक्ति मिली। 1925 मे एक अन्य कानून कीमतो पर नियन्त्रण लगाने के बारे मे पारित हुआ। इन प्रयत्नो से कृषि उत्पादन की कीमतो मे गिरावट रुक गई। पर मन्दी-काल में, विशेषकर महामन्दी के समय कीमतें तेजी से गिरी। सरकार ने 1930 मे दूसरा चावल कानून पास करके यह व्यवस्था की कि नियन्त्रण स्तर से कीमतें गिरने पर राज्य चावल की खरीददारी कर लेगा और अधिकतम स्तर से कीमतो के ऊपर उठने पर राज्य बिक्री कर देगा। 1933 मे सरकार ने न्यूनतम और अधिकतम कीमतें निश्चित करने तथा चावल-नियमन और चावलो के आयात पर लाइसेन्स लगाने के लिए एक चावल मण्डल की स्थापना की अनुमति दी।

3 सरकार ने 1930 मे रेशम कीमतें स्थाई बनाने के लिए अधिनियम पारित किया। इसी कानून के अनुसार रेशम उत्पादको के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था

की गई। गेहूँ के क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रयास किए गए। गेहूँ और आट पर करों की मात्रा बढाई गई तथा गेहूँ के उत्पादन के लिए सुधरे हुए साधनो व प्रणालियो को काम मे लाया जाने लगा। योजनाओ द्वारा गेहूँ के उत्पादन को 1937 तक लगभग 50 मिलियन बुशल तक बढाने की योजना बनाई गई और किसानो की आय को 30 प्रतिशत बढाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया।

4 मेजी सरकार ने किसानो को सामन्तवादी प्रतिबन्धो से मुक्त करके उन्हे खेती मे सुधरे हुए तरीको का प्रयोग करने को प्रोत्साहित किया। कृषि के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र मे वृद्धि की गई तथा सिचाई सुविधाओ का विस्तार किया गया। कीडो-मकोडो और विभिन्न प्रकार की कृषि बीमारियो पर नियन्त्रण आदि से कृषि का उत्पादन बढाया गया। आगे चलकर राज्य ने गहन कृषि को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया। राजकीय प्रयत्नो से कृषि का आधुनिकीकरण हुआ तथा कृषि यन्त्रो का प्रयोग किया जाने लगा।

5 राज्य ने भूमि-क्रय नीति और भूमि सुधार नीति द्वारा कृषि को प्रोत्साहित किया। प्रारम्भ मे एक 25 वर्षीय कार्यक्रम निश्चित करके आसामी को वह भूमि खरीदने की सुविधा दी गई जिसे वह खुद जोतता था। किसानो को अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया गया और अच्छे बीजो व अच्छी खाद को लोकप्रिय बनाया गया। महायुद्ध के बाद सैनिक शासन ने यह अनुभव किया कि कृषि सुधारने के लिए व्यापक भूमि-सुधार आवश्यक है। फलस्वरूप बड-बडे किसानो को समाप्त कर दिया गया और सभी जमीदारो से एक निश्चित मात्रा से अधिक भूमि लेकर उसे जनता के हाथ मे बेच दिया गया। जमीदारो को उनकी भूमि के बदले मुआवजा दे दिया गया। इन सुधारो से युद्ध के बाद जापान कृषक-स्वामियों का देश बन गया। 1952 मे सैनिक शासन की समाप्ति के बाद भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सरकार का यह प्रयत्न निरन्तर जारी है कि कम से कम भू-क्षेत्र मे अधिक से अधिक कृषि उत्पादन किया जाए। सरकारी प्रयत्नो और निजी परिश्रम का ही यह सम्मिलित परिणाम है कि जापान मे प्रति एकड उपज विश्व मे सबसे अधिक होती है।

कृषि क्षेत्र मे जापान के अनुभवों से लाभ उठाते हुए भारत-सरकार को कीमत-स्थायित्व, देहाती वित्त, फार्म-व्यवस्थापन, गहन-कृषि आदि के उपायो को प्रभावशाली ढग से अपनाकर और जापानी खेती को प्रोत्साहन देकर अपनी कृषि समस्याओ का बहुत कुछ निराकरण कर सकती हैं।

औद्योगिक विकास में सरकार की भूमिका
(Role of Govt. in Industrial Development)

जापान के आधुनिक औद्योगिक रूप का श्रेय बहुत कुछ सरकार के सक्रिय सहयोग को है। मेजी युग में सरकार ने आवागमन, व्यापार और उद्योग की स्वतन्त्रता पर लगाए गए अधिकांश प्रतिबन्धों को समाप्त करके उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहित किया। सरकार ने जापानी व्यापार व उद्योग का पश्चिमीकरण करने की

नीति अपनाई। फलस्वरूप आवश्यक विदेशी उपकरणो का आयात किया गया और आधारभूत उद्योग स्थापित किए गए। प्रारम्भ मे राज्य ने पहले के बहुत से कारखानो की व्यवस्था स्वय अपने हाथ मे लेकर उनका गठन किया। इसके अतिरिक्त अनेक वस्तुओ के निर्माण के लिए राज्य ने खुद आधुनिक ढग के नए-नए कारखानो की स्थापना की। गैर-सरकारी उद्यम को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य द्वारा विदेशी मशीनो का आयात किया गया और उन्हे आसान किस्तो पर निजी उद्यम कर्त्ताओ को बेच दिया गया। राज्य द्वारा वस्त्र-निर्माण, युद्धपोत निर्माण, सीमेंट उत्पादन आदि के उद्देश्य से विभिन्न कारखाने स्थापित किए गए। व्यापारिक जहाजो के विकास पर भी सरकार ने बहुत अधिक ध्यान दिया। न केवल देश मे ही जहाजो का निर्माण आरम्भ किया गया बल्कि विदेशो से जहाज खरीदकर बाद मे जापानी फर्मों को सौंप दिए गए।

आगे चलकर 1882 के बाद मेजी सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र मे स्वय कार्य करने की नीति को छोडकर सरकारी औद्योगिक सस्थानो को निजी उद्योगपतियो के हाथ बडे रियायती और सुविधाजनक दरो पर बेच दिए। इस नीति के फलस्वरूप निजी क्षेत्र को भारी प्रोत्साहन मिला। राज्य ने आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप बन्द नहीं किया, वरन् समुचित आर्थिक विकास की दृष्टि से देश के औद्योगिक विकास-सचालन मे अपना महत्त्वपूर्ण हाथ बनाए रखा। सरकार द्वारा निर्यात व्यापार को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने से जापान के उद्योग-धन्धो को भारी प्रेरणा मिली।

जापानी सरकार विकासशील उद्योगो को आवश्यकतानुसार सरक्षण व आर्थिक सहायता देती रही। भूकम्प और मन्दी काल के समय सरकार द्वारा उद्योगों की सरचना तथा युक्तिकरण की नई नीति अपनाई गई जिससे देश के औद्योगिक उत्पादन मे काफी प्रगति हुई। महान मन्दी के परिणामस्वरूप सूती वस्त्र व रेशम के निर्यात मे बहुत अधिक कमी आ जाने तथा अन्य आर्थिक अस्त-व्यस्तताएँ उत्पन्न हो जाने से सरकार बहुत चिंतित हुई। उसने परिस्थिति मे सुधार के लिए पहले तो कुछ अन्य उपाय किए, किन्तु बाद मे अपनी मुद्रा का अवमूल्यन कर दिया। यद्यपि तात्कालिक परिणाम अच्छे नही निकले, लेकिन आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कुछ अन्य ठोस उपाय करने पर शुभ परिणाम निकलने लगे। सरकार ने सम्पूर्ण औद्योगिक व्यवस्था की सरचना के उद्देश्य से एक 'इडस्ट्रियल रेशनलाइजेशन ब्यूरो' (Industrial Rationalisation Bureau) की स्थापना की। इसके अतिरिक्त अनुचित आन्तरिक प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए और कम्पनियो मे आपसी समझौतो के आधार पर कार्टेल्स (Cartels) की स्थापना के लिए 1931 मे 'स्टेबल इडस्ट्रीज कट्रोल एक्ट' (Stable Industries Control Act) पारित किया। इन उपायों को अपनाने से पूर्व इग्लैंड व अन्य देशो द्वारा स्वर्णमान त्याग देने पर जापान ने भी इनका अनुकरण करते हुए येन का पुन अवमूल्यन किया जिससे जापानी अर्थ-व्यवस्था पर काफी अच्छा प्रभाव पडा।

महामन्दी से द्वितीय महायुद्ध के बीच की अवधि मे जापानी सरकार ने

सन्त्रालयों के निर्माण को अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जिससे सारे औद्योगिक क्षेत्र में सक्रियता आ गई। ज्यों-ज्यों जापान में सैनिक नियन्त्रण बढ़ता गया, त्यों-त्यों उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण अधिकाधिक होता गया। युद्ध की तैयारियों के लिए सरकार ने बड़े पैमाने के उद्योगों को अपने हाथ में लेना शुरू कर दिया। सन् 1934 में पारित एक नियम के अधीन सरकार ने लोहा व इस्पात निर्माण करने वाली सभी निजी कम्पनियों के नियन्त्रण को अपने हाथ में ले लिया। 1935 में 'पेट्रोलियम इण्डस्ट्रीज ला' (Petrolium Industries Law) द्वारा पेट्रोल उद्योग पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया। इसी तरह 1936 के 'शिपिंग रूट कन्ट्रोल ला' (Shipping Route Control Law) के अनुसार सम्पूर्ण जहाजरानी को पूर्ण सरकारी नियन्त्रण के अन्तर्गत ले लिया गया। संक्षेप में द्वितीय महायुद्ध से पूर्व सरकार ने सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगों को अपने नियन्त्रण में लेकर युद्ध की पूरी *तैयारियाँ करली। अन्य उद्योगों में भी, युद्ध के उद्देश्य से, सरकार ने विभिन्न* प्रकार से प्रोत्साहन देना शुरू किया। सरकार का यह प्रयास रहा कि निर्यात की वस्तुओं के गुणों में सुधार हो।

महायुद्ध काल में प्रारम्भिक सफलताओं के बाद अन्त में जापान की भीषण पराजय हुई और पहले इस देश ने जो कुछ प्राप्त किया था, युद्ध के अन्त तक उसका अधिकांश विनष्ट हो गया। जापान की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था तहस-नहस हो गई। युद्ध के बाद सरकार देश के आर्थिक पुनर्निर्माण में जुट गई। जब सैनिक प्रशासन ने जापान के औद्योगिक पुनरुद्धार के मार्ग खोल दिए तो सरकारी प्रयासों की सक्रियता से जापान पुनः आर्थिक प्रगति की ओर छलांगें भरने लगा। सरकारी निवेश में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1958 तक सरकारी स्थाई निवेश कुल राष्ट्रीय उपज का लगभग 8 प्रतिशत हो गया। सरकार ने 1961 से 1970 तक के लिए एक दस वर्षीय योजना बनाई जिसका लक्ष्य राष्ट्रीय आय को दुगुना करना रखा गया। पिछले वर्षों की प्रगति यही बताती है कि जापान योजना के लक्ष्यों को भली प्रकार पूरा कर सका है।

औद्योगिक क्षेत्र में प्रारम्भ से अब तक के राजकीय योगदान से प्रकट है कि जापान का वर्तमान तीव्र औद्योगीकरण राज्य की सक्रियता का ही परिणाम है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में राज्य की भूमिका
(Role of Govt. in the Field of Small & Cottage Industries)

लघु और कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में जापान सदा से विश्व-विख्यात रहा है। आज के औद्योगिक जापान में भी लघु और कुटीर इकाइयों का अपना महत्त्व है। इन उद्योगों की समृद्धि और कार्यक्षमता बनाए रखने में मेजी पुनर्संस्थापन के समय से ही सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

मेजी युग में सरकार ने निर्यात व्यापार में लघु व मध्यम आकार के उद्योगों के महत्त्व को समझते हुए इस प्रकार के नियम बनाए जिनसे लघु उद्योग सुधरे हुए तथा उत्तम किस्म का माल उत्पादित करें। सन् 1914 से 1930 तक सरकार ने

विभिन्न प्रकार के कानून पारित किए। इन कानूनो के प्रमुख उद्देश्य ये रहे—(1) छोटे छोटे उद्योगपतियो और व्यावसायियो के बीच सहकारिता का विकास हो ताकि वे उत्तम कोटि की वस्तुओ का उत्पादन कर सकें, (11) अनावश्यक और नुकसानदेह प्रतियोगिता हतोत्साहित हो, (111) गिल्ड जैसी स्वेच्छिक सस्थाओ का विकास हो ताकि लघु उद्योगो द्वारा उत्पन्न माल की समय समय पर अच्छी तरह जाँच की जा सके एव (1V) निरीक्षण और जाँच की ऐसी व्यवस्था बन जाए जिससे लघु उद्योगो द्वारा निर्यात के लिए उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ मे उत्तरोत्तर सुधार को प्रोत्साहन मिले।

मेजी सरकार की इस नीति के कारण लघु व कुटीर उद्योगो की कार्यक्षमता और वस्तु उत्पादन की श्रेष्ठता का विकास हुआ। महायुद्ध के बाद जब मन्दी का दौर शुरू हुआ तो सरकार ने लघु व कुटीर उद्योगो को आर्थिक सहायता देकर उनका पोषण किया। कम ब्याज पर ऋण और छोटे-छोटे अनुदान देने की व्यवस्था की गई। लघु उद्योगो को निर्माता-गिल्डो के रूप मे सगठित किया गया ताकि वे सहकारिता के आधार पर अच्छी तरह क्रय विक्रय कर सकें। मुद्रा अवमूल्यन के दौरान भी सरकार ने लघु व मध्यम आकार के उद्योगो की सहायता की।

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल मे सरकार द्वारा लघु उद्योग बोर्ड, ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना आदि का गठन व क्रियान्वयन किया गया। इनका विस्तार से वर्णन लघु उद्योग सम्बन्धी पूर्ववर्ती अध्याय मे किया जा चुका है। यद्यपि सरकारी और निजी क्षेत्र की वर्तमान प्रवृत्ति जापान मे अधिकाधिक वृहद स्तरीय औद्योगिक सस्थानो का विकास करने की है, तथापि लघु व कुटीर उद्योगो के आवश्यक महत्त्व को उपेक्षित नही किया गया। जिन क्षेत्रो म ये उद्योग अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, उनमें यथासम्भव हस्तक्षेप नही किया जाता।

विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे सरकार की भूमिका
(Role of State in Foreign Trade)

तोकुगावा शासन काल मे सरकार की पृथक्करण की नीति के फलस्वरूप विदेशी व्यापार के रास्ते बन्द रहे, लेकिन मेजी सरकार ने विदेशो से आर्थिक सम्बन्धो के द्वार खोलकर विदेशी व्यापार का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मेजी शासन काल मे जापान के विदेशी व्यापार ने बडी उन्नति की। विदेशो से तकनीकी विशेषज्ञ बुलाए गए और आवश्यक सामग्री का आयात करके देश मे बडे पैमाने पर औद्योगीकरण की नीव डाली गई। इन उद्योगो द्वारा निर्मित माल के निर्यात को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया गया। सरकार ने लघु व मध्यम आकार के उद्योगो का भी इस ढग से नियमन किया कि वे सुधरे हुए व उन्नत माल का उत्पादन करें जिससे उनके निर्यात में वृद्धि हो सके। वास्तव मे मेजी सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध के लिए आवश्यक रूपरेखा प्रस्तुत करने मे सुदृढ भूमिका अदा की। जिन विभिन्न वस्तुओ का उत्पादन परम्परागत तरीके से होता था, उनके निर्माण के लिए आधुनिक तरीके के नए-नए कारखानो की स्थापना की गई। मौद्रिक व्यवस्था मे विभिन्न

व्यापार पहले से भी अधिक उन्नत हो गया। अब जापानी सरकार कुछ वर्षों से आयात नीति को भी अधिकाधिक उदार बना रही है।

यातायात के क्षेत्र मे सरकार की भूमिका
(Role of State in the Field of Transport and Communication)

तोकुगावा शासन के समय जापान मे यातायात की समुचित व्यवस्था का सर्वथा अभाव था, किन्तु मेजी शासन काल मे नई सरकार ने आर्थिक विकास की दृष्टि से यातायात के साधनो का महत्त्व समझा और इस दिशा में प्रभावशाली कदम उठाए। रेलवे के निर्माण पर सबसे अधिक जोर दिया गया। विदेशी पूंजी और तकनीक द्वारा रेलवे लाइनो का निर्माण किया गया। आवश्यक पूंजी के लिए सरकार ने आन्तरिक और बाह्य दोनो साधनो से कर्ज लेने की व्यवस्था की। निजी कम्पनियो को भी रेलवे निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया गया। रेलवे कम्पनियो को सरकार ने कम ब्याज पर ऋण दिया और भूमि की सुविधायें प्रदान की। यद्यपि रेलवे का द्रुत गति से विकास हुआ, तथापि सुनियोजित योजना क अभाव मे इसमे कई दोष आ गए तथा अनेक अनार्थिक लाइनो का निर्माण हो गया। अन्त मे रलवे को पूर्णत अपने अधीन न करने के लिए सरकार ने 1906 के बाद रेलो का राष्ट्रीय-करण कर दिया। 17 निजी लाइनें सावजनिक नियन्त्रण क्षेत्र मे आ गई। राष्ट्रीय करण के बाद इस क्षेत्र मे कई सुधार किए गए और नई लाइनो का निर्माण किया गया। सरकार ने मुख्य रेलवे लाइनो को अपने हाथ म लेकर एक प्रकार से सम्पूर्ण रेलवे पर अपना प्रभाव क्षेत्र विस्तृत कर लिया। सहायक लाइनो के निर्माण को यद्यपि निजी कम्पनियों के हाथ मे ही छोड दिया गया, पर वे स्वभावत सरकारी नियन्त्रण से अछूत न रही। सन् 1908 में जापान की सम्पूर्ण रेलो को एक रेलवे परिषद के अन्तर्गत रख दिया गया। सन् 1948 मे सभी राष्ट्रीयकृत रेलो का नियन्त्रण यातायात मन्त्रालय को सौप दिया गया।

वर्तमान समय में सम्पूर्ण जापान मे रेलो का जाल बिछा है जिनमे राजकीय और निजी दोनो रेले हैं। राजकीय रेलवे 1963–64 मे लगभग 21,180 किलो-मीटर थी जबकि निजी रेलवे लगभग 7,400 किलोमीटर। जापान नेशनल रेलवेज जो कि जापान का सबसे बडा औद्योगिक संस्थान है, एक सार्वजनिक निगम है।

रेलवे यातायात के समान ही सामुद्रिक यातायात के क्षेत्र मे भी मेजी पुनर्संस्थापन काल से ही राज्य का योग रहा है। मेजी युग में सरकार ने व्यापारिक और सैनिक दृष्टिकोण से जहाजरानी के विकास पर काफी ध्यान दिया। सामुद्रिक यातायात कम्पनियो की स्थापना की गई जिनमे सरकारी और निजी दोनो व्यवस्थायें रही। जापान सरकार ने जहाजरानी के विकास के लिए विभिन्न अधिनियम पारित किए। एक मुख्य अधिनियम (Navigation Subsidy Act) 1896 मे पास किया गया जिसके अन्तर्गत बडे-बडे जहाजो के निर्माताओ को अनुदान दिया जाने लगा। चूंकि सरकार पर आर्थिक सहायता का बोझ बहुत बढ गया, अत 1909 मे एक नया अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत सरकार कुछ खास प्रकार के जहाजो

को ही आर्थिक सहायता देने लगी। सरकार ने यह कदम जापान की जहाजरानी मे गुणात्मक सुधार के उद्देश्य से उठाया।

प्रथम महायुद्ध काल मे जापानी सरकार ने जहाजरानी के विकास को तेजी से आगे बढाया और सुदूर पूर्व के देशो मे जहाजरानी को जाने का अवसर दिया ताकि वहाँ के बाजारो मे जापानी माल छा सके। महायुद्ध के बाद जब मन्दी का दौर चला तो जापानी जहाज उद्योग को बडा धक्का लगा। समस्या का समाधान करने के लिए सरकार ने 1932 मे 'मिटाओ और बनाओ योजना' (Scrap and Build Plan, 1932) क्रियान्वित की जिसका उद्देश्य यह था कि पुराने जहाजो को समाप्त करके नए जहाजो का निर्माण किया जाए। सरकार का यह कदम जहाजरानी की क्षमता और कुशलता बढाने मे काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। सरकार ने जहाज निर्माण के क्षेत्र मे समुचित आर्थिक सहायता दी। सरकार की जागरूकता और सहायता तथा निजी उद्यम-कर्त्ताओ के परिश्रम आदि के फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के आते-आते जापानी जहाजरानी के अन्तर्गत बहुत बडी मात्रा मे नए और आधुनिकतम जहाज हो गए।

द्वितीय महायुद्ध काल के प्रारम्भ में जहाजरानी की क्षमता मे बहुत अधिक वृद्धि हुई, किन्तु महायुद्ध की समाप्ति पर जापान की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के विनाश के साथ ही जहाजी उद्योग भी प्राय नष्ट हो गया। जहाँ द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान के पास 5 हजार के आसपास सामुद्रिक जहाज थे वहाँ 1946 मे इनकी सख्या केवल 17 रह गई। सैनिक प्रशासन ने 1948 तक जापान को केवल तटीय जहाजो के निर्माण की अनुमति दी, परन्तु बाद में स्थिति मे सुधार हो गया। सैनिक शासन की समाप्ति के बाद स्वतन्त्र जापानी सरकार द्वारा नीचे ब्याज पर ऋण देने के फलस्वरूप जहाजरानी का तेजी से विकास शुरू हो गया। कोरियाई युद्ध से जहाज निर्माण उद्योग को भारी गति मिली। सरकार जहाज निर्माण उद्योग की प्रगति के लिए आवश्यक कानूनो और आर्थिक सहायता के प्रति जागरूक रही जिससे 1956 तक जापान विश्व का सबसे बडा सामुद्रिक जहाज निर्माता देश हो गया। सरकार ने 1961 से 1965 के बीच विभिन्न प्रकार के लगभग 40 लाख टन सामुद्रिक जहाज बनाने के लिए सशोधित पचवर्षीय योजना तैयार की जिसमे पूरी सफलता मिली। सरकारी प्रयासो मे जहाजरानी के सुनियोजित विकास का क्रम जारी है। वायु और सडक यातायात के क्षेत्र मे भी सरकार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

इस सम्पूर्ण विवरण से यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा उचित है कि आज हम जापान को शक्ति और समृद्धि के शिखर पर देखते हैं, इसके लिए राज्य को प्रधान श्रेय है। बिना सरकारी प्रयासो के जापान की इतनी अधिक उन्नति होना असभव था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान तहस-नहस हो गए जापान का यह आश्चर्यजनक विकास अधिकांशत सुनियोजित व जागरूक सरकारी प्रयासो का परिणाम है। सरकार द्वारा देश के आर्थिक विकास के लिए योजनाओ और नए-नए आर्थिक कार्यक्रमो का सहारा लिया गया है। सरकार का लक्ष्य जापान की कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति को 10 वर्ष पूर्व की स्थिति से लगभग दुगुना कर देना है।

7

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में आर्थिक विस्तार के कारक

(Factors Causing Post–World War II Economic Expansion)

जापान के आर्थिक विकास के पिछले अध्यायो मे किए गए विश्लेषण से यह भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है कि मेजी पुनर्संस्थापन-काल से जापान की आर्थिक प्रगति शुरू हुई और द्वितीय महायुद्ध काल से पूर्व तक जापान ससार के महान औद्योगिक राष्ट्रो मे गिना जाने लगा। लगभग 75 वर्षो के अल्पकाल मे ही छोटे-छोटे टापुओ पर बसे इस देश ने आश्चर्यजनक प्रगति कर दिखाई। उद्योग, कृषि, विदेशी व्यापार, जहाजरानी, सैनिक शक्ति, शस्त्र-निर्माण आदि सभी क्षेत्रो मे इस देश ने अपनी विलक्षण प्रगति मे ससार के उन्नत राष्ट्रो को आश्चर्य मे डाल दिया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर विनिष्ट जापान का चित्र

द्वितीय महायुद्ध का विस्फोट होने पर जापान ने जर्मनी और इटली का पक्ष लिया। मित्र राष्ट्रो के विरुद्ध प्रारम्भिक आश्चर्यजनक सैनिक सफलताओ के बाद अन्त मे उसकी घोर पराजय हुई। मेजी पुनर्संस्थापन (1868) के समय से द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश होने तक जापान ने आर्थिक और सैनिक क्षेत्र मे जो कुछ भी उपलब्ध किया था, वह सब विनिष्ट हो गया। 1945 मे आत्मसमर्पण करते समय जापान के पास विनिष्ट धर के अतिरिक्त और कुछ नही था। मित्र राष्ट्रो की भयानक बम-वर्षा के फलस्वरूप उसकी 30 से 40 प्रतिशत नगरीय जनता गृहहीन हो गई थी। उसके हिरोशिमा और नागासाकी जैसे विशालतम औद्योगिक नगर राख के ढेर बन चुके थे। महायुद्ध से पूर्व उसके सामुद्रिक जहाजो की सख्या 5 हजार के आसपास थी जो अब केवल 17 रह गई है। उसके 50 हजार से भी ऊपर हवाई जहाज बर्बाद हो गए थे। युद्धपोत, पोत-रक्षक, जगी जहाज, विध्वसक पनडुब्बी जहाज-निर्माण-केन्द्र सभी कुछ पूरी तरह विनष्ट हो गए थे। मित्र राष्ट्रो के विमानो ने जापान के 44 नगरो को धूल मे मिला दिया था। लाखो जापानी सैनिक काल की गोद में समा गए थे। केवल हताहत नागरिको की सख्या ही 8 लाख से ऊपर थी। जापान की अधिकांश मशीनरी, उसके रेल मार्ग और कारखाने मिट्टी में मिला दिए गए थे।

महायुद्ध के बाद जापान का सम्पूर्ण औपनिवेशिक साम्राज्य अतीत की कहानी बन गया। उसका प्रादेशिक प्रभुत्व केवल चार मौलिक द्वीपो—होनशु, शिकोकू, क्यूशु और होकाइडो तक सीमित रह गया। युद्ध के दौरान जापान की लगभग आधी औद्योगिक क्षमता नष्ट कर दी गई और शेष क्षमता भी अधिकांश वित्तीय सकटो व प्रतिबन्धो के कारण पगु बन गई।

आत्मसमर्पण के बाद जापान का वास्तविक नियन्त्रण सयुक्तराज्य अमेरिका की सैनिक कमान के नियन्त्रण मे आ गया। जापान में अमेरिकन सेनापति जनरल मैकार्थर को मित्र राष्ट्रो ने सर्वोच्च सेनाध्यक्ष का पद प्रदान किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण नाम-मात्र का रहा और व्यावहारिक शक्ति का उपयोग मैकार्थर ने किया। 1945 से 1947 के बीच मैकार्थर ने जापानी सरकार को लगभग एक हजार निर्देश दिए। जापान के युद्ध और नौ-सेना मन्त्रालय खत्म कर दिए गए, सैनिक सेवाओ से सभी जापानियो को हटा दिया गया, जापान की सुरक्षा संस्थाओं को उपयोगिताहीन बना दिया गया, शस्त्रास्त्रो व गोला-बारूद के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, विस्फोटक पदार्थों को समुद्र मे डुबो दिया गया और लगभग 65 लाख जापानी सैनिको व सामान्य नागरिको को एशिया तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपो मे इधर-उधर भेज दिया गया।

सैनिक प्रशासन की प्रारम्भिक नीति जापान को हर प्रकार से कुचल देने की रही ताकि वह पुन शक्ति और समृद्धि का सचय न कर सके। विदेशो मे जापानी नागरिको की सम्पत्ति उन देशो को क्षति-पूर्ति के रूप मे प्रदान कर दी गई। जापान की विदेशी सम्पत्ति, जो लगभग 3 अरब डॉलर के मूल्य की थी हस्तगत करली गई। सन् 1946 मे राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा भेजे गए 'पाले मिशन' ने जापान की भावी शक्ति का सर्वेक्षण करके यह सिफारिश की कि, "जापान की युद्ध-क्षमता शक्ति से कुचल दी जानी चाहिए ताकि उसका जीवन-स्तर न्यूनतम हो जाय।" इस मिशन के सुझाव पर जापान के विभिन्न महत्त्वपूर्ण उद्योगो को पूरी तरह नष्ट कर दिया गया और अनेक कारखानो की सख्या अत्यधिक कम कर दी गई। चूँकि अमेरिका को जापान की जनता के लिए भोजन-सामग्री जुटाने पर प्रतिदिन लगभग 10 लाख डॉलर व्यय करने पड रहे थे, अत अमेरिका की नीति यही रही कि जापान से इसे कब्जे का व्यय और क्षति-पूर्ति एकत्रित की जानी चाहिए। साराँशत मित्र राष्ट्रो के सर्वोच्च सेनाध्यक्ष (SCAP) की नीति जापानी साम्राज्यवाद के भौतिक आधार को पूर्णत नष्ट कर देने की रही और क्षति पूर्ति इस तरह लादी गई जिससे जापान की औद्योगिक युद्ध-क्षमता का पुनर्निर्माण न हो सके।

पर यह स्थिति अधिक समय तक नही बनी रही। शीघ्र ही जापान के नियन्त्रक सैनिक प्रशासन को अपनी नीति बदलनी पडी और बाद मे 1952 मे शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर होने के उपरान्त जापान पुन एक स्वाधीन राष्ट्र हो गया। जापानियो ने आश्चर्यजनक नीति से अपना पुनरुद्धार किया। अद्भुत साहस, प्रवीणता, कार्यक्षमता और परिश्रम का परिचय देते हुए 1955 के आते आते जापानियो ने अपने

युद्ध के घाव भर लिए और आर्थिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया सम्पन्न कर ली। इसके बाद अपूर्व तेजी से जापान ने औद्योगिक प्रगति की। उन्होंने अपने नष्ट-भ्रष्ट देश को समृद्धि के उस शिखर पर पहुँचा दिया कि आज जापान का स्थान ससार के चार महान समृद्ध राष्ट्रो मे गिना जाता है तथा वह समय दूर नही है जब उसे ससार का राष्ट्र नम्बर तीन गिना जाने लगेगा।

इस पृष्ठभूमि के उपरान्त अब हमे देखना चाहिए कि द्वितीय महायुद्धोत्तर काल मे जापान के इस आश्चर्यजनक आर्थिक विस्तार मे किन कारणो और परिस्थितियो ने सहयोग दिया।

महायुद्धोत्तरकाल मे आर्थिक विस्तार के कारक

जापान के आर्थिक पुनरुद्धार और विस्तार को मुख्यत दो कालो मे बाँटना उपयुक्त है—(क) 1946 से 1955 तक का काल, जिसमे आर्थिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया (The Process of Economy) लगभग पूर्ण हो गई एव (ख) 1956 से वर्तमान काल तक, जिसमे आर्थिक विस्तार की गति आश्चर्यजनक रही।

(क) 1946 से 1955 तक का काल

इस अवधि मे आर्थिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया में मुख्यत निम्नलिखित कारको व परिस्थितियो ने सहयोग दिया—

1. सैनिक प्रशासन की परिवर्तित नीति—जापान के सैनिक, आर्थिक और औद्योगिक पतन से विकट समस्याएँ पैदा हो गई। एक तरफ तो अमेरिका को जापानी खाद्य सामग्री का अभाव दूर करने और आवास, चिकित्सा आदि समस्याओ का हल खोजने में विपुल धनराशि व्यय करनी पड रही थी और दूसरी ओर जापान पूर्ण पतन से यह चिन्ता पैदा हो गई थी कि पूर्वी एशियाई बाजारो पर कही रूस । उसके गुट का कोई अन्य राज्य प्रभुत्व न जमा ले। महायुद्ध के बाद मास्को एशिया के निर्धन राज्यो मे साम्यवाद के प्रचार को हर प्रकार से उत्साहित कर रहा था। वह जापान के छात्रो व श्रमिको मे साम्यवाद फैलाने मे सफल होने लगा था। इसके अतिरिक्त 'पूर्व और 'पश्चिम' के बीच शीत युद्ध ने जन्म ले लिया था। अब इस बात की तीव्र आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी कि स्वतन्त्र विश्व' अपनी पूरी शक्ति के साथ अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद से सघर्ष करे। चीन मे तेजी से पनपता हुआ साम्यवाद भी एशियाई राज्यो के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर रहा था।

उपरोक्त परिस्थितियो मे अमेरिका के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह जापान को पुन आदर और सम्मानपूर्ण स्तर प्रदान करे तथा उसके पुनरुद्धार की दिशा में आगे बढे। बढते हुए साम्यवाद के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए और प्रशान्तसागरीय क्षेत्र मे अपने हितो की सुरक्षा के लिए अमेरिका ने जापान के पुनर्जागरण को अनिवार्य मान लिया।

इस अनुभूति के बाद अमेरिका न सर्वप्रथम एक 'नौ सूत्री आर्थिक स्थिरता कार्यक्रम' बनाया। इसका उद्देश्य बजट को सन्तुलित करना, कर एकत्रित करने व कार्य को सुगम बनाना, वेतन-क्रम स्थिर बनाना, मूल्य नियन्त्रण को सुदृढ करना,

विदेशी व्यापार और विदेशी मुद्रा-नियन्त्रण में सुधार करना, राशनिंग व्यवस्था को सुधारना, कच्चे माल और तैयार शुदा माल के उत्पादन में वृद्धि करना, खाद्य सामग्री एकत्र करने के कार्यक्रम को सुधारना आदि था। सैनिक प्रशासन ने जापान के पुनरुद्धार की दृष्टि से इस कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किया। जापानी सरकार को आवश्यक निर्देश दिए गए और उसकी प्रार्थनाओं को बहुत कुछ स्वीकार किया गया। सन् 1948 में कुछ विख्यात अमेरिकन व्यवसायियों के एक प्रतिनिधि-मण्डल ने जापान की यात्रा की। इस मण्डल ने अपनी सरकार को यह सुझाव दिया कि जापान को यथा-शीघ्र अमेरिकन निर्भरता से मुक्त कर दिया जाय।

अब अमेरिकन प्रशासन ने जापान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र का स्तर देने की नीति पर विशेष सक्रिय रूप से चलना शुरू कर दिया। जापान की आर्थिक दशा सुधारने के लिए क्षतिपूर्ति को स्थगित कर दिया गया और हड़तालों पर विभिन्न प्रतिबन्ध लगा दिए गए ताकि उत्पादन कार्य बन्द न हो सके। दिसम्बर, 1948 में जापानियों को निर्यात के लिए उत्पादन में अधिकाधिक वृद्धि करने का अधिकार दे दिया गया। जापान को संसार की गतिविधियों में पुन भाग लेने का अधिकार भी दिया गया। जापान के औद्योगिक उत्पादन के पुनरुद्धार के लिए आवश्यक कच्ची सामग्री उपलब्ध कराई गई। यह सामग्री विशेषतः अमेरिका से मिली।

सैनिक प्रशासन की इस परिवर्तित नीति से जापान के आर्थिक पुनरुत्थान की आधारशिला तैयार हो गई।

2 **जापानी अधिकारियों की विशेष उत्पादन नीति**—सैनिक प्रशासन की नीति से प्रोत्साहित होकर जापानी अधिकारियों ने एक विशेष उत्पादन नीति अपनाई। इस नीति के अन्तर्गत कोयला, लोहा और इस्पात को प्राथमिकता दी गई क्योंकि इन्हें उत्पादन के क्षेत्र से विषैले चक्र को तोड़ने के लिए आधारभूत सामग्री समझा गया। इस नीति के फलस्वरूप 1948 में कोयले का उत्पादन लगभग 35मिलियन टन तक जा पहुँचा अर्थात् 1934-36 की अवधि का 90 प्रतिशत कोयला उत्पादित किया गया। लोहे और इस्पात के उत्पादन में भी तीव्र वृद्धि हुई। सन् 1948 में और 1949 में कच्चे लोहे का उत्पादन युद्ध पूर्व काल का क्रमश 43 प्रतिशत और 82 प्रतिशत हुआ। इसी तरह इस्पात पिण्ड और ढला हुआ इस्पात 1948 व 1949 में युद्ध पूर्व स्तर का क्रमश 34 व 60 प्रतिशत हुआ। कृत्रिम उर्वरकों और सूती धागों के उत्पादन को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया जो कि जापान की आत्म-निर्भर व्यवस्था के लिए आवश्यक था।

3 **उत्पादकों को वित्तीय सहायता**—जापानी सरकार और केन्द्रीय वित्तीय अधिकारियों ने आधारभूत सामग्री के उत्पादकों को खुलकर वित्तीय सहायता दी। 1946 के अन्त तक बैंक ऑफ जापान ने अन्य बैंकों को औद्योगिक पुनर्निर्माण में वित्तीय सहायता देने के लिए उदारतापूर्वक साख प्रदान की। फरवरी, 1947 में स्थापित पुनर्निर्माण वित्तीय बैंक (Reconstruction of Finance Bank) ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस बैंक ने अनिवार्य उद्योगों को पुनर्जीवन प्रदान

करने के लिए ऋण दिए और इस प्रकार जापान के औद्योगिक पुनरुद्धार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

4 श्रम-शक्ति का उपयोग—औद्योगिक विनाश और सगठन के विघटन आदि के कारण जापान में विशाल श्रम-शक्ति बेकार हो गई। आर्थिक-पुनरुद्धार के समय उस श्रम-शक्ति को यथा-साध्य उपयोग में लाया गया। सस्ती किन्तु कार्य-कुशल श्रम शक्ति के कारण उत्पादन की लागत कम रही और निर्यात के विस्तार को प्रोत्साहन मिला। युद्धोत्तरकाल मे कृषि पर आश्रित जनसंख्या घटती गई और अधिकाधिक लोग औद्योगिक क्षेत्र में प्रविष्ट होते गए। फलस्वरूप जापान के औद्योगिक विस्तार में बहुत अधिक सुविधा हुई।

5. कोरिया युद्ध—जून, 1950 के कोरिया युद्ध में विस्फोट ने जापानी अर्थ-व्यवस्था को जबरदस्त सहायता पहुँचाई। जापान ने संयुक्तराष्ट्र सघीय सेना को विभिन्न सामान बेचकर विपुल धनराशि अर्जित की। इस युद्ध से जापान के निर्यात व्यापार को भारी प्रोत्साहन मिला और वह विशाल डॉलर सुरक्षित कोष निर्मित कर सका। कोरिया युद्ध के दौरान जापान का औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व के स्तर को छू गया। अर्जित धन को जापान ने उद्योगों का आधुनिकीकरण करने और नई तकनीकों का प्रयोग करने मे लगाया। वास्तव में कोरिया युद्ध ने जापान के रुग्ण आर्थिक शरीर में रक्त का संचार कर दिया जिससे उसकी भावी समृद्धि निश्चित हो गई।

6 आधारभूत उद्योगों में पूँजी-निवेश—इन प्रारम्भिक वर्षों मे पूँजी-निवेश आधारभूत उद्योगों में करने की नीति अपनाई गई। विद्युत-शक्ति उत्पादन, जहाज निर्माण उद्योग, विद्युत मशीन का निर्माण, इंजीनियरिंग उद्योग आदि के विकास पर अधिकाधिक ध्यान दिया गया। टिकाऊ उपभोक्ता सामानों के उद्योगों का भी विकास किया गया। जापान के शस्त्रास्त्र निर्माण उद्योग भी, सीमाओं में रहते हुए पनपने लगे। प्राथमिकता के उद्योगों को सरकारी सहायता दी गई। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप जापान की आर्थिक व औद्योगिक क्षमता मे तेजी से सुधार हुआ।

7 श्रम संघ, भूमि सुधार और मुद्रा-स्फीति का प्रभाव—युद्धोत्तर काल मे कृषि क्षेत्र में भूमि-सुधार के लिए एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम अपनाया गया और श्रमिक संघों को नए सिरे से संगठित किया गया। लगभग 50 लाख एकड़ भूमि अनुपस्थित जमींदारों व जागीरदारों से लेकर किसानों को वितरित कर दी गई। जमींदारों की कुल भूमि का लगभग तीन चौथाई भाग रैयत को दे दिया गया। फलस्वरूप किसानों की आय काफी बढ़ गई और कृषि-अवस्था मे उल्लेखनीय सुधार हुआ। सैनिक शासन ने युद्धकालीन श्रम-नियमों को समाप्त करके श्रमिकों के वैधानिक संगठनों को प्रोत्साहित किया।

श्रमिकों और किसानों की आर्थिक हालत सुधरने से आन्तरिक बाजार का विस्तार हुआ जिससे औद्योगिक पुनर्निर्माण को काफी बल मिला। औद्योगिक उत्पादन माँग की तुलना मे कम होने से मुद्रा-स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो गई। इस मुद्रा-स्फीति से आर्थिक विकास को परोक्ष रूप से बड़ा प्रोत्साहन मिला। पूँजी-निर्माण

तेजी से हुआ। यद्यपि सैनिक शासन ने मुद्रा स्फीति विरोधी नीति पर अमल किया, लेकिन कोरिया युद्ध तक मुद्रा स्फीतिक स्थिति बनी ही रही।

8 **सैनिक व्यय मे कमी**—महायुद्धोत्तर काल में जापान के सैनिक व्यय मे भारी कमी हो गई। शस्त्रास्त्र निर्माण सम्बन्धी और सैन्य संगठन सम्बन्धी प्रतिबन्धो के अधीन रहते हुए जापानी सरकार के लिए यह सम्भव न था कि वह अपनी सैनिक शक्ति का सचय करती। जहां सन् 1940 मे कुल व्यय का लगभग 63 8 प्रतिशत भाग सेना पर व्यय किया गया था वहां 1960 मे कुल सरकारी व्यय का केवल 5 9 प्रतिशत भाग ही सेना पर व्यय पर हुआ। सैनिक खर्च मे इस भारी कमी से औद्योगिक क्षेत्र मे अधिकाधिक विनियोग सम्भव हुआ जिससे जापान के आर्थिक विकास मे द्रुतगति से वृद्धि हुई।

9 **तकनीकी प्रगति**—युद्धोत्तर काल के प्रारम्भ मे जापान तकनीकी क्षेत्र मे कोई प्रगति नही कर सका। 1948 के बाद जब जापान को ससार की गतिविधियो मे पुन भाग लेने का अधिकार दिया गया तो जापानी विद्वानों और नेताओं ने एशिया व यूरोप की विस्तृत यात्राएँ की। प्राविधिक योग्यता प्राप्त विभिन्न जापानियो ने विदेशो का भ्रमण किया। जापान ने वाणिज्य और व्यापार के लिए विदेशो में अपनी एजेंसियाँ स्थापित की और स्वदेश मे उन्नत तकनीकी का प्रसार करने की भरपूर चेष्टा की। 1955 से 1959 के दौरान तकनीकी के क्षेत्र मे तीव्र प्रगति हुई। औद्योगिक क्षेत्र मे नए-नए तरीके अपनाए गए जिससे उत्पादन बहुत ही अधिक बढ गया। जैबत्सु के विघटन और एकाधिकार विरोधी नियमो से भी तकनीकी प्रगति को विशेष बल मिला।

विभिन्न रूपो में सरकारी सहायता—सरकार ने देश के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए औद्योगिक सस्थानो को केवल वित्तीय सहायता ही नही दी बल्कि अन्य उपायो से भी उन्हे प्रोत्साहन दिया। सरकार ने ऐसे विभिन्न कदम उठाए जिनसे देश के आर्थिक विकास को गति मिली। 1950-51 और 1953 मे साधनो के पुनर्मूल्यन (Revaluation of Assets) की व्यवस्था की गई। पर चूंकि पुनर्मूल्यन स्वैच्छिक था, अत खासकर बडे उद्योगपतियो को ही लाभ हुआ। सरकार ने औद्योगिक सस्थानो के आधुनिकीकरण और विनियोग की वृद्धि के लिए व्यावसायियो के स्थाई साधनो के अग्रिम घिसावट की व्यवस्था की। उदाहरणार्थ यन्त्रो व सामुद्रिक जहाजो के लिए तीन वर्षों मे 50 प्रतिशत से अधिक घिसावट का प्रावधान रखा गया। विशेष घिसावट की व्यवस्था से यद्यपि सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के तीव्र विकास की आशा की गई, लेकिन लाभ मुख्यत बडे उद्योगपतियो और व्यावसायियो को ही हुआ। सरकार ने अपनी कर-नीति मे सुधार द्वारा भी आर्थिक विकास को आगे बढाया। विभिन्न प्रकार के सुरक्षित कोषो की व्यवस्था की गई जिनमे व्यावसायिक सस्थानो के पूंजीगत साधनो मे काफी वृद्धि हुई। सरकार ने कुछ इस प्रकार के सुरक्षित कोष खोले जिनमे रखी जाने वाली रकम को कर-निर्धारण के लिए घाटे के अन्तर्गत लिया जाता था। इस प्रकार की व्यवस्था से पूंजी निर्माण में

कई गुना वृद्धि सम्भव हुई। उदाहरणार्थ कम्पनियो द्वारा प्रयोग मे लाई गई पूँजी मे 1952 से 1959 के बीच लगभग 3 17 गुना और करो से छूट प्राप्त कोषो की मात्रा से लगभग 10 2 गुना वृद्धि हुई। सरकार ने बचत व पूँजी-निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक करो मे छूट की व्यवस्था की।

इन सभी कारणो पर परिस्थितियो का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि 1955 तक जापान ने अपने महायुद्धकालीन घाव भर लिया और आर्थिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया लगभग सम्पन्न कर ली।

(ख) 1956 से वर्तमान तक का काल

1955 के बाद जापान ने आर्थिक व औद्योगिक क्षेत्र मे इतनी आश्चर्यजनक गति से प्रगति की जिसका उदाहरण विश्व के किसी भी देश मे देखने को नहीं मिलता। Prof Sakae Tsunoyama ने जापान के अपने आर्थिक इतिहास में सयुक्त-राष्ट्र सघ द्वारा प्रकाशित आँकडो को दिया है जिनसे पता चलता है कि 1955 से 1961 के बीच जापान के औद्योगिक उत्पादन का विकास विश्व के अन्य किसी भी राष्ट्र की अपेक्षा अधिक हुआ। ये आँकडे इस प्रकार है —

प्रमुख देशो मे औद्योगिक उत्पादन के गुणनांक (Indices) (1955-1961)

(1955=100)

सन्	जापान	यू एस ए	इग्लैण्ड	फ्राँस	पश्चिमी जर्मनी	इटली	रूस
1955	100	100	100	100	100	100	100
1956	125	104	100	110	108	107	108
1957	143	104	102	120	114	114	123
1958	145	97	101	125	118	119	135
1959	180	110	106	130	126	132	150
1960	226	113	113	145	140	152	164
1961	270	114	115	153	148	169	178

1961 के उपरान्त वर्तमान समय तक जापान की औद्योगिक क्षमता और भी अधिक बढ गई है। सयुक्तराष्ट्र सघ की एक विज्ञप्ति के अनुसार सन् 1958 से 1967 के बाद जहाँ औद्योगिक विकास मे रूस मे 121, इटली मे 113, अमेरिका मे 71 और ब्रिटेन मे 38 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहाँ जापान मे 245 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी जो विश्व मे सर्वाधिक थी।

युद्धोत्तर काल मे जापान ने राष्ट्रीय और प्रतिव्यक्ति आय म काफी वृद्धि की है। स्थिर मूल्यो के आधार पर जापान की राष्ट्रीय आय मे 1955-60 के अवधि मे विकास की औसत वार्षिक दर लगभग 9 प्रतिशत रही थी 1960-64 की अवधि मे यह लगभग 10-8 प्रतिशत वार्षिक रही और 1967 मे विकास दर 14 प्रतिशत से कुछ ही कम रही। यह विकास दर आश्चर्यजनक ही मानी जायेगी क्योकि पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, सयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन मे राष्ट्रीय

उत्पादन में औसत वार्षिक दर प्राय 3 प्रतिशत से 8 प्रतिशत तक रही है। जापान में 1976-77 में राष्ट्रीय आय में लगभग 13 प्रतिशत वृद्धि जबकि वास्तविक आय में लगभग 7 प्रतिशत। 1960-70 की अवधि में जापान में राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि की दर लगभग साढे ग्यारह प्रतिशत रही जो विश्व का कोई भी राष्ट्र प्राप्त नहीं कर सका। जहाँ 1950 में जापान में प्रति व्यक्ति आय लगभग 123 अमेरिकी डॉलर थी वहाँ 1970 में यह लगभग 1122 अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गई और 1976-77 में 4930 अमेरिकी डालर तक। औद्योगिक उत्पादन में जापान ने जो आशातीत वृद्धि की है उसका उल्लेख पिछले एक अध्याय में किया जा चुका है। 1970 को आधार वर्ष लें तो औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 1977 में लगभग 125 हो गया था। विदेशी व्यापार में भी जापान ने अप्रत्याशित वृद्धि की है। पिछले लगभग 2 दशको में जापान ने 1950 के मुकाबले 26 गुना से भी अधिक निर्यात व्यापार और बीसगुना से भी अधिक आयात व्यापार किया है। जापान का विदेशी व्यापार जो महायुद्ध के बाद अनेक वर्षों तक घाटे में चल रहा था अब भारी बचत में बदल गया है। 1977 में जापान का व्यापार शेष लगभग 975 करोड डॉलर पक्ष में था। अकेले 1977 में ही जापान के निर्यातो में लगभग 20 प्रतिशत वृद्धि हुई जबकि आयात कुल 9 प्रतिशत ही बढा 1977 में जापान का विदेशी विनिमय कोष लगभग 18000 करोड डॉलर था। जापान श्रम-उत्पादकता में भी आगे रहा। उत्पादकता में वृद्धि की दर वेतनो की अपेक्षा अधिक रही है। 1970-77 की अवधि में वास्तविक वेतक वृद्धि की दर 8 प्रतिशत से कुछ ही अधिक रही जबकि उत्पादकता दर लगभग 13 प्रतिशत थी। कृषि उत्पादन में 1952 के आधार वर्ष के अनुसार लगभग 3 गुना वृद्धि देखने को मिलती है। 1950 में कुल कृषि उत्पादन सूचकांक 95 था जो 1977 में बढकर लगभग 195 हो गया। जापान ने आज इतना आर्थिक विकास कर लिया है कि सयुक्तराज्य अमेरिका, सोवियत रूस और पश्चिमी जर्मनी के बाद विश्व में जापान का ही स्थान आता है तथा यह आशा की जाती है कि एक-दो वर्षों में ही पश्चिमी जर्मनी को पीछे छोडते हुए जापान का स्थान विश्व म तीसरे नम्बर पर पहुँच जाएगा। आज सामुद्रिक जहाज के निर्माण में जापान सबसे आगे है। विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत यह अकेला उत्पन्न करता है। लोहा और इस्पात के उत्पादन में अमेरिका व रूस के बाद जापान का ही नम्बर आता है। मोटरो के उत्पादन में ससार में अमेरिका के बाद जापान ही की गिनती होती है। रसायन उद्योग के क्षेत्र में भी अमेरिका और जर्मनी के बाद जापान का ही स्थान है।

जापान के इस अद्भुत आर्थिक विकास के लिए मूल रूप से वे आर्थिक कारण ही उत्तरदाई हैं जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं। लेकिन किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए कुछ दीर्घकालीन तत्त्व स्थाई रूप से उत्तरदाई होते हैं। अग्रिम पंक्तियो में हम महत्त्वपूर्ण दीर्घकालीन तत्त्वो अथवा कारको का उल्लेख करेंगे।

1 **वित्तीय ढांचा तथा जापानियों की विनियोग-प्रवृत्ति**—महायुद्ध काल के तुरन्त बाद जापान अपना आर्थिक पुनरुद्धार इसीलिए कर सका क्योंकि देशवासियो ने व्यापार व उद्योग के क्षेत्र मे विनियोग करने की प्रवृत्ति दिखाई जो 1952 म पराधीनता काल से मुक्त होने के बाद बहुत ही तीव्र हो गई। फलस्वरूप जापान ने आर्थिक क्षेत्र के प्रत्येक पहल मे अद्भुत तेजी से विकास किया। व्यावसायी बैंको, बैंक ऑफ जापान आदि की तरफ से जापानी उद्योगपतियो को सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा। जापान का सम्पूर्ण बैंकिंग और वित्तीय ढाचा इस रूप मे गठित किया गया जो देश के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करे।

2 **आर्थिक व्यवस्था की दोहरी प्रवृत्ति**—जापान के आर्थिक विकास का बहुत कुछ श्रेय वहाँ की दोहरी अर्थ व्यवस्था की दोहरी प्रकृति को है, अर्थात् जापान मे जहाँ बडे पैमाने के उद्योगो का बोलबाला है वहाँ लघु एव कुटीर उद्योगो का महत्त्व भी कम नही है। द्वितीय महायुद्ध काल से पूर्व तो लघु और मध्यम आकार के उद्योगो ने जापान के आर्थिक विकास मे सहयोग दिया ही था लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बाद भी इनकी भूमिका कम नही रही है। यद्यपि जापानी प्रवृत्ति आज विशाल पैमाने के उद्योगो की ओर है तथा वृहद् औद्योगिक सस्थानो के कारण ही जापान का इतना अधिक आर्थिक प्रसार हो सका है, तथापि कुछ क्षत्रो मे लघु उद्योग बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हे। जिन वस्तुओ के उत्पादन मे कम पूँजी ही अधिक सहायक हो सकती है, उन वस्तुओ का उत्पादन लघु उद्योगो के हाथ म ही छोड दिया गया है। इससे जापानी अर्थ-व्यवस्था को भारी बल मिलता है और बीच के रिक्त स्थान स्वत ही पूरे हो जाते है। रोजगार की दृष्टि से लघु उद्योग काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं जिससे जापानी आर्थिक प्रसार को भारी सहारा मिलता है।

3 **विदेशी व्यापार पर अधिकाधिक बल**—विदेशी व्यापार सदा से जापान की समृद्धि का मुख्य आधार रहा है। महायुद्ध की समाप्ति पर जापान का विदेशी व्यापार ठप्प हो चुका था। अमेरिकन सैनिक प्रशासन ने अपने उत्तरकालीन वर्षों मे जापान के विदेशी व्यापार पर से प्रतिबन्ध उठा लिया। जापानी सरकार की सक्रियता और विवेकपूर्ण नीति के कारण ज्यो ज्यो जापान की औद्योगिक क्षमता बढती गई त्यो-त्यो उसका विदेशी व्यापार भी चमकता गया। कोरिया युद्ध के दौरान इसे विशेष प्रोत्साहन मिला। पराधीनता की बेडियो से मुक्त होने के उपरान्त जापानी सरकार ने विदेशी व्यापार को बढाने के लिए विश्व मे नए नए बाजारो की खोज को, निर्यात-व्यापार की सरचना मे परिवर्तन किया, नई नई वैज्ञानिक तकनीको का औद्योगिक क्षेत्र मे प्रयोग किया और मौद्रिक व्यवस्था मे आवश्यक सुधार तथा परिवर्तन किए। सार्वजनिक और निजी प्रयासो के फलस्वरूप जापान का विदेशी व्यापार युद्ध पूर्व के स्तर से भी बहुत अधिक उन्नत हो गया जिसका सम्पूर्ण व्यवस्था पर बडा अनुकूल प्रभाव पडा।

4. **उच्च बचत अनुपात**—महायुद्धोत्तर काल मे जापान के तीव्र आर्थिक प्रसार को जापानियो की उच्च बचत की प्रवृत्ति ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

सन् 1959 मे कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति मे से जापान मे लगभग 54 5 प्रतिशत वैयक्तिक उपभोग व्यय था जबकि अमेरिका में यह वैयक्तिक उपभोग-व्यय कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति मे 82 1 प्रतिशत और जर्मनी मे 72 3 प्रतिशत था। व्यय की जाने योग्य वैयक्तिक आय मे से जहाँ जापान मे व्यक्तिगत बचत लगभग 18 5 प्रतिशत थी वहाँ अमेरिका मे यह बचत 7 6 तथा ब्रिटेन मे 5 0 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि जापान बचत अनुपात की दृष्टि से विश्व के उन्नत देशो मे बहुत आगे था। उच्च बचत अनुपात के कारण ही जापान मे विनियोग की दर भी बहुत उच्च रही जिससे देश का द्रुत गति से आर्थिक विकास सम्भव हो सका। जापानियो का बचत अनुपात उनकी आय का लगभग 25 प्रतिशत है जो विश्व के किसी राष्ट्र की तुलना मे बहुत अधिक है इसीलिए वार्षिक विनियोग राष्ट्रीय आय का लगभग 30% है।

5 **नियोजन का आश्रय**—देश की आर्थिक प्रगति की रफ्तार तेज करने के लिए जापानी सरकार न प्रभावशाली नियोजन का आश्रय लिया। वर्तमान जापान की आर्थिक नीति का सार 'स्थायित्व के साथ-साथ विकास' (Growth with stability) है। इस व्यापक आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन् 1961 मे जापान ने एक दसवर्षीय योजना (1961–70) बनाई जिसका लक्ष्य 1970 तक कुल राष्ट्रीय उत्पादन को दुगुना करने का रखा गया था। इसके बाद 1970–80 की द्वितीय योजना समाप्ति पर है।

इस सम्पूर्ण विवरण से प्रकट है कि महायुद्धोत्तर काल मे जापान के तीव्र आर्थिक विस्तार के मूल मे अनेक तत्त्व निहित रहे हैं। इस क्षेत्र में राज्य का योगदान बहुत ही मूल्यवान रहा है। जापानियो की कार्य क्षमता, लग्न, विनियोग क्षमता, उच्च तकनीक और अथक परिश्रम का योग निर्णायक सिद्ध हुआ है। छोटे-छोटे टापुओ पर बसा यह देश जिस रफ्तार स आगे बढ रहा है, उसका उदाहरण विश्व इतिहास मे देखने को नही मिलता। यद्यपि पश्चिमी जर्मनी और रूस की आर्थिक विकास की गति भी कम नहीं रही है तथापि जापान का पलडा इस दृष्टि से अधिक भारी रहा है। और हरमन काहन की यह भविष्यवाणी सिद्ध होने मे कोई असम्भव बात नजर नही आती कि "आगामी सदी (21वी सदी) मे जापान समग्र विश्व पर छा जायगा।"

प्रश्नावली

(University Questions)

अध्याय 1

1 मेजी पुनर्संस्थापन के दौरान जापान की अर्थ-व्यवस्था के विकास का वर्णन कीजिए। (1977)
Describe the development of Japanese economy during Meiji Restoration

2 मेजी पुनर्संस्थापन की अवधि मे जापानी कृषि विकास का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए। (1978)

3 मेजी शासन काल में जापान की कृषि की स्थिति की समीक्षा कीजिए। इस अवधि मे कृषि के क्षेत्र मे क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए ? (1978)
Discuss the Conditions of Japanese agriculture in the Meiji period. What important changes were made in the field of agriculture during this period ?

4 मेजी युग के समय जापानी कृषि सुधारो का वर्णन कीजिए। इनका क्या प्रभाव हुआ ? (1977)
Give an account of Japanese Agricultural Reforms during the Meiji Period What was their effect ?

5 जापान मे तोकुगावा शासन के पतन के कारणो का विवेचन कीजिए तथा मेजी पुनर्संस्थापन काल मे जापानी अर्थ-व्यवस्था के विकास का विवरण दीजिए। (1977)
Discuss the causes of the downfall of Tokugawa Regime in Japan and explain the development of Japanese Economy during Meiji Restoration

6 मेजी पुनर्संस्थापन के द्वारा लाये गए परिवर्तनो के तात्कालिक परिणाम क्या थे ? (1978)
What were the immediate effects of changes brought about by the Meiji Restoration ?

7 मेजी पुनर्स्थापना के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनो की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (1978)
Critically examine the social, economic and political changes brought about by the Meiji Restoration

अध्याय 2

8 द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान म अपनाए गए भूमि सुधारो की व्याख्या कीजिए। (1978)
Give a brief idea of the land reform measures adopted in Japan since the second world war

9 जापान मे युद्धोत्तरकाल मे कृषि विकास का मूल्यांकन करते हुए बताइए कि भारत तथा अन्य विकासशील देश उससे क्या मार्ग दर्शन ले सकते हैं ? (1977)
Evaluate the development of agriculture in post war period in Japan and show how it can guide the developing countries and India

10 जापान में कृषि विकास का संक्षिप्त विवेचन कीजिए और उसकी वर्तमान प्रवृत्तियो तथा स्थिति की समीक्षा कीजिए। (1977)
Discuss briefly the development of agriculture in Japan and also examine critically the present trends and position of agriculture

11 द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् से जापानी कृषि विकास की प्रमुखताओ का उल्लेख कीजिए और कृषि की आधुनिक प्रवृत्तियो व समस्याओ का विवेचन कीजिए। (1978)

अध्याय 3

12 जापान के मुख्य उद्योगो की गणना कीजिए। जापान के औद्योगिक विकास की क्या मुख्य विशेषताएँ हैं ?
Enumerate the main Industries of Japan What are the chief characteristics of Japan's Industrial development ?

13 जापान के आधुनिक उद्योगो की कुछ प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिए। (1978)
Describe briefly some salient features of the modern industries of Japan

14 जापान की आर्थिक समृद्धि का प्रमुख कारण वहाँ के बडे उद्योग है। इस सदर्भ मे जापान के किसी एक बडे उद्योग की स्थापना, विकास, समस्याओ व भावी सम्भावनाओ पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए। (1978)

15 जापान सरकार की औद्योगिक नीति की समीक्षा कीजिए। अपने देश के लिए इससे हम क्या सीख सकते हैं ? (1978)
Survey the industrial policy of the Govt of Japan What lesson can we draw from it for our country ?

16 निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(i) जापान का सूती वस्त्र उद्योग,
(ii) जापान का लोहा तथा इस्पात उद्योग, एव
(iii) जापान का कोयला उद्योग। (1977)
Write short notes on any two of the following—
(i) Cotton Textile Industry of Japan,
(ii) Iron and Steel Industry of Japan, and
(iii) Coal Industry of Japan

अध्याय 4

17 "जापान मे लघु उद्योग वृहत् उद्योगो के सहायक तथा पूरक हैं– प्रतिद्वन्द्वी नही।" इस कथन की पुष्टि कीजिए। (1978)
"In Japan small scale industries are not competitive but complementary to large scale industries" Comment on the truth of this statement

18 जापान की अर्थ-व्यवस्था के विकास मे कुटीर और लघु उद्योगो की क्या भूमिका रही है ? (1977)
What has been the role of cottage and small scale industries in Japanese economic development ?

19 जापान की अर्थ-व्यवस्था मे कुटीर एव लघु उद्योगो के महत्त्व का सक्षिप्त विवेचन कीजिए। (1978)
Discuss in brief the importance of cottage and small scale industries in the economy of Japan

20 जापान मे लघु उद्योगो की समृद्धि के कारण एव महत्त्व का विवेचन करते हुए बताइए कि अल्पविकसित (विकासशील) देशो के लिए जापान के लघु उद्योग किस प्रकार प्रेरणा एव मार्गदर्शन दे सकते है। (1977)
Discuss the causes and importance of the prosperity of small scale industries in Japan Explain how small scale industries of Japan can inspire and guide the developing countries ?

अध्याय 5

21 जापान मे द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् से जापान के विदेशी व्यापार की रचना, विकास और बदलती प्रवृत्तियो का विवेचन कीजिए। (1978)

22 जापान की अर्थ व्यवस्था मे विदेशी व्यापार के महत्त्व की व्याख्या कीजिए। (1978)
Describe the importance of foreign trade in the economy of Japan

23 जापान की अर्थ व्यवस्था मे विदेशी व्यापार का क्या महत्त्व है ? पिछले दशक मे इसमे वृद्धि के क्या कारण रहे ? (1977)
What is the importance of foreign trade in the Japanese Economy ? Discuss the factors responsible for its growth during the last decade

24 जापान के प्रमुख आयात-निर्यात का विवरण देते हुए जापान के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषताओ का विवेचन कीजिए। (1977)
Giving main items of export and import of Japan Discuss the features and characteristics of foreign trade of Japan

अध्याय 6

25 जापान के आर्थिक विकास में राज्य के योगदान को स्पष्ट कीजिए। (1978)
Explain the role of state in the economic development of Japan

26 जापान के आर्थिक विकास मे आधुनिक उद्योगो की भूमिका निर्धारित कीजिए और औद्योगिक विकास मे राज्य सरकार का योगदान बतलाइए। (1978)

27 जापान के आर्थिक विकास से विकासशील देश क्या शिक्षाएँ ग्रहण कर सकते हैं? (1978)
What lessons can be developing countries draw from the economic development of Japan?

अध्याय 7

28 दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् जापान के आर्थिक विस्तार के कारणों का विश्लेषण कीजिए। (1978)
Analyse the causes of Japan's economic expansion after the second world war

29 युद्धोत्तर काल मे जापान के उद्योगो के पुनर्निर्माण की व्याख्या कीजिए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान के द्रुतगति से औद्योगीकरण के लिए उत्तरदायी कारणों की व्याख्या कीजिए। (1978)
Discuss the reconstruction of Japanese industries in the post-war period What are the factors behind the rapid industrialization of Japan after the Second world war?

30 युद्धोत्तरकाल मे जापान के तीव्रगति से औद्योगीकरण के कारणो का विवरण दीजिए तथा उद्योगो की वर्तमान स्थिति एव समस्याओ का विवेचन कीजिए। (1977)
Explain the causes of rapid industrial development of Japan during post war period and discuss its present position and problems

31 दूसरे विश्वयुद्धोत्तर काल मे जापान के द्रुतगति से आर्थिक पुनरुत्थान के तत्त्वो की व्याख्या कीजिए। (1978)
Discuss the factors responsible for the rapid economic recovery of Japan in the post war years

32 निम्नलिखित पर नोट लिखिए—
(अ) जापान म उच्च आर्थिक विकास की दर का भविष्य।
(ब) जापान की दस वर्षीय (1961-70) योजना। (1978)
Write short notes on—
(a) Future of high rate of growth in Japan.
(b) Ten year Economic Plan (1961-70) of Japan

SUGGESTED READINGS

1. *W. G. Beasley* : The Modern History of Japan.
2. *William W. Lockwood.* The Economic Development of Japan : Growth and Structural Change.
3. *G. C. Allen* : A Short Economic History of Modern Japan 1867–1960.
4. *E. S. Crawcour* : "The Japanese Economy of the Eve of Modernization". The Journal of the Oriental Society of Australia, Vol. 2, No. 1. 1963.
5. *Yasuzo Horie* : "The Problem of the Modernization of Japan".
6. *Thomas C Smith* : Political Change and Industrial Development in Japan.
7. *S. Tsuru* *Essay on the Japanese Economy, Tokyo.*
8. *Economic Planning* : New long Range Economic Plan Agency of Japan, 1961–70.
9. *H. Aoyama and T. Nishikawa* "Japanese Economy in the Inter-war Period"
10. *Mitsubishi Economic Research Bureau*: Japanese Trade and Industry - Present and Future.
11. *E. B. Schumptere* . The Industrialisation of Japan and Man chuko, 1930–1940.
12. *T. Uyeda and associates* : The Small Industries of Japan
13. *H Nishi* : "Japan's Economic Devept 1951-61"
14. *Cohen, J B* : Economic Progress of Free Japan
15. *Lockwood, W W* The Economic Development of Japan (1954), Princeton, New Jersey.
16. *Allen G. C.* A Short Economic History of Modern Japan.
17. *Allen G C.* : Japan's Economic Recovery (1960), Oxford University Press.
18. *Allen G. C.* : Japan's Economic Expansion
19. *CohenJ B.* : Japan's Economy in War and Reconstruction.
20. *Story Richard* A History of Modern Japan
21. *Rostow, W. W.* : The Stages of Economic Growth
22. *Norman, E. H.* : Japan's Emergence as a Modern State.
23. *Cowan C D.* : The Economic Development of China and Japan.
24. *Shinohara, M.* : Growth and Cycles in the Japanese Economy.
25. *Economist Correspondents* : Consider Japan (1963), Gerald Duck-worth & Co, Ltd., London.
26. *United Nations* Economic Survey of Asia and the Far East, 1961. Govt of Japan : The Japan of to-day.
27. *Sakae Tsunoyanea* : *A Concise Economic History of Modern* Japan.
28. *Japan To-day*
29. *Statistical Handbook of Japan.*

———

सोवियत रूस

के

आर्थिक विकास में सीमा-चिन्ह

(Landmarks in the Economic Development of U S S.R)

1 नई आर्थिक नीति
(New Economic Policy)

2 प्रथम पंचवर्षीय योजना के ठीक पूर्व आर्थिक दशा
(Economic Condition on the Eve of the First Five Year Plan)

3 सामूहीकरण
(Collectivisation)

4 1954 से सोवियत कृषि-विकास
(Soviet Agricultural Development since 1954)

5 तीव्र औद्योगीकरण की समस्याएं
(Problems of Rapid Industrialisation)

6 नियोजन और आर्थिक विकास में नवीन प्रवृत्तियां
(Recent Trends in Planning and Economic Development)

"सामाजिक उत्पादन-व्यवस्था मे लगे हुए लोग कुछ ऐसे स्थिर और निश्चित सम्बन्ध स्थापित कर बैठते हैं जो उनकी इच्छा पर निर्भर नहीं होते। ये उत्पादन-सम्बन्ध भौतिक शक्तियो की एक विशेष अवस्था से मिलते-जुलते हैं। इन्हीं सम्बन्धों के योग से समाज के आर्थिक ढाँचे और प्रणाली का निर्माण होता है। समाज का यही आधार है जिस पर कानून और राजनीति का भवन बनता है।"

—कार्ल मार्क्स

1

नवीन आर्थिक नीति

(New Economic Policy)

"नवीन आर्थिक नीति रूस को भावी विनाश और उसके आर्थिक जीवन को अव्यवस्था से बचाने तथा औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों की उत्पादन मात्रा को युद्धपूर्व के स्तर तक लाने मे सफल हुई।"

दयूरिन

अक्तूबर, 1917 की क्रान्ति के फलस्वरूप रूस मे साम्यवादी शासन की स्थापना हुई और तभी से इस देश ने अपने सर्वांगीण विकास मे सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया है। आज के रूस का सभी दृष्टियो से विश्व में दूसरा स्थान है। लगभग 2 24 00,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल रखे हुए यह विश्व का सबसे बडा देश है। जनसख्या 23 करोड से भी अधिक है। वन सम्पदाओ, नदियो और झीलो की दृष्टि से यह अग्रणी राष्ट्र है। यहा प्राय सभी खनिज पदार्थ उपलब्ध हैं। 16 महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थों मे 13 मे रूस का प्रथम स्थान है। रूस ही वह प्रथम देश है जिसने आर्थिक विकास क क्षेत्र मे केन्द्रीकृत नियोजन का मार्ग बडे भारी पैमाने पर अपनाया है। सफल आर्थिक नियोजन का ही यह परिणाम है कि रूस एक अत्यन्त पिछड़ा राष्ट्र से आज का एक अत्यन्त आधुनिक, विकसित और उद्योग प्रधान राष्ट्र बन गया है। रूसी अर्थव्यवस्था एक समाजवादी अर्थव्यवस्था है जिसमे उत्पादन के सभी साधनो पर राज्य का स्वामित्व और नियन्त्रण है।

रूसी अर्थव्यवस्था को हम मुख्यत चार चरणो मे बाँट सकते हैं—नियन्त्रित अथवा राजकीय पूँजीवाद (नवम्बर 1917–जून 1918), यौद्धिक समाजवाद (जून 1918–मार्च 1921) नवीन आर्थिक नीति (अप्रैल 1921–1927), एव योजनाओ का काल (1928 से अब तक)। यहाँ हम रूसी अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन नवीन आर्थिक नीति की अवधि से करेंगे।

नवीन आर्थिक नीति कारण एव उद्देश्य

(New Economic Policy : Causes and Objectives)

रूसी अर्थ-व्यवस्था के तृतीय चरण नवीन आर्थिक नीति अप्रैल, 1921 स

1927 तक प्रभावी रही। यह नीति समाजवाद का आधार प्रस्तुत करने के लिए निर्मित की गई। इस अवधि मे आर्थिक नीतियो मे अनेक परिवर्तन किए गए। यह अनुभव किया गया कि रूस का भविष्य औद्योगीकरण मे निहित है और आर्थिक गति को तीव्रता देने के लिए भविष्य मे नियोजन का मार्ग अपनाया जाना चाहिए।

नवीन आर्थिक नीति अपनाने के कारण

(1) **आर्थिक आधार मे परिवर्तन**—युद्ध समाप्ति के उपरान्त श्रमिको और किसानो मे मतभेद उठ खडे हुए किसान अपनी वस्तुओ की स्वतन्त्र बिक्री का अधिकार चाहते थे जबकि श्रमिको की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकार के पास खाद्यान्नो का होना जरूरी था। इन दोनो ही बातो का समन्वय करने के लिए नवीन आर्थिक योजना की आवश्यकता थी।

(2) **मुद्रा के प्रयोग की अनिवार्यता**—किसान अपने उत्पादन की स्वतन्त्र बिक्री चाहते थे। यह माँग तभी पूरी हो सकती थी जब बाजार-व्यवस्था को पुन प्रारम्भ किया जाता। इसे पुन चालू करने के लिए नवीन आर्थिक नीति लागू करना आवश्यक हो गया। इस नीति के अन्तर्गत ही मौद्रिक प्रयोग और पारस्परिक लेन-देन करने वाले बैंको की पुन शुरुआत हुई।

(3) **व्यापारिक असतोष का निवारण**—देश में व्यापारिक असतोष व्याप्त था। इस असतोष को मिटाने और आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए एक नई और प्रभावशाली नीति जरूरी थी।

(4) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की माँग**—रूस मे उस समय व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की माग जोरों से उठ खडी हुई। लोग विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता चाहने लगे। किसान अपनी भूमि और पशु-धन पर स्वतत्र अधिकार की इच्छा करने लगे। जनता मे फैल रही इस प्रक्रिया को शान्त करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि एक नवीन और रचनात्मक आर्थिक नीति अपनाई जाए।

नवीन आर्थिक नीति के उद्देश्य

मार्च, 1921 मे स्वीकृत इस नवीन आर्थिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य घोषित किए गए —

(1) **उत्पादन मे वृद्धि**—ऐसे कार्यक्रमो पर विशेष महत्त्व देने का उद्देश्य रखा गया जिनकी सहायता मे (क) उत्पादन वृद्धि हो, (ख) आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके, (ग) निर्यात व्यापार पुन प्रारम्भ हो सके, (घ) कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि हो और औद्योगिक उत्पादन-व्यवस्था पुनर्सगठित हो, (ड) कृषि क्षेत्र में चहुँमुखी प्रगति की जा सके।

(2) **खेतिहर वर्ग के असतोष का निवारण**—दूसरा मुख्य उद्देश्य कृषक वर्ग मे व्याप्त असतोष को दूर करना रखा गया। लेनिन ने कहा, "खेतीहर वर्ग की सहमति से ही रूस में समाजवादी क्रान्ति को बढाया जा सकता है कृषक वर्ग और सर्वहारा वर्ग (श्रमिक वर्ग) में सहयोग आवश्यक है।"

(3) **मिश्रित अर्थ-व्यवस्था**—इस नीति का तीसरा उद्देश्य मिश्रित अर्थ-व्यवस्था

को बनाना रखा गया। इस नीति के अन्तर्गत सीमित और आंशिक राष्ट्रीयकरण को ही स्थान दिया गया। समाजवादी तत्त्वो के विनास द्वारा पूँजीवादी तत्त्वो के विनाश पर बल दिया गया। इस तरह मिश्रित अर्थ-व्यवस्था निर्मित की गई। इसके मूल मे यह भावना निहित थी कि पूँजीवाद और साम्यवाद के आपसी सघर्ष को जब तक आर्थिक क्षेत्र मे नही लाया जायेगा तब तक साम्यवादी तत्त्वो की विजय नही हो सकेगी।

(4) जनकल्याण—नवीन आर्थिक नीति म जन कल्याण का उद्देश्य सर्वोपरि था। जनता का असन्तोष दूर हो, देश मे सुख-समृद्धि बढे, क्रान्ति की विजय, हो, यह इस नीति का लक्ष्य था।

नवीन आर्थिक नीति तत्कालीन सरकार को क्षणिक विश्राम देन वाली नीति थी। उस समय की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि पूँजीवादी तत्त्वो को कुछ सहारा दिए बिना राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो मे सुधार नही किया जा सकता था। टूरिन (Turin) के शब्दो में, नवीन आर्थिक नीति रूस को भावी विनाश और उसके आर्थिक जीवन को अव्यवस्था से बचाने तथा औद्योगिक एव कृषि क्षेत्रो की उत्पादन मात्रा को युद्धपूर्व के स्तर तक लाने में सफल हुई।

नवीन आर्थिक नीति के कार्यक्रम और उपलब्धियाँ
(Aspects, Programme and Achievements of New Economic Policy)

अब हमे देखना चाहिए कि नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि, उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रो मे क्या कार्यक्रम अपनाए गए।

कृषि (Agriculture)

इस नीति ने कृषि को विशेष रूप से प्रभावित किया। कृषि-क्षेत्र मे दो मुख्य उद्देश्य रखे गए—किसानो का असन्तोष दूर करना और कृषि-उत्पादन मे अधिकतम सम्भव वृद्धि करना। इन दोनो ही उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कृषि सम्बन्धी आज्ञप्ति निकाली गई और अनेक क्रियात्मक कदम उठाए गए। कुल मिला कर कृषि-क्षत्र मे निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाए गए।

(1) अनिवार्य वसूली का अन्त—किसानो से अनिवार्य वसूली समाप्त करदी गई ताकि सरकार को उनका राजनीतिक और आर्थिक समर्थन मिल सके। इसके स्थान पर एक कृषि-कर लगाया गया जिसके अन्तर्गत किसानो को एक निश्चित परिमाण मे अन्न सरकार को देना आवश्यक ठहराया गया। इस कर की वसूली आरम्भ म तो वस्तु के रूप में की गई, लेकिन मुद्रा-स्थिरता आने पर रूबल में होने लगी। कृषि-कर नीति का यह लाभ हुआ कि कर देने के उपरान्त शेष बचे हुए अतिरिक्त अन्न को किसान इच्छानुसार खुले बाजार में बेच सकता था और उससे प्राप्त धन का किसी भी रूप में व्यय कर सकता था। कर-व्यवस्था ऐसी थी कि सरकार को अनिवार्य वसूली से प्राप्त अन्न की मात्रा का लगभग 50 प्रतिशत प्राप्त हो जाता था। इस अन्न से वह सैनिको और महत्त्वपूर्ण उद्योगो से श्रमिको की माँग की बहुत-कुछ पूर्ति कर सकती थी।

(2) कृषि-उत्पादन मे वृद्धि के उपाय—नवीन कृषि-नीति के अन्तर्गत कृषि-उत्पादन बढाने के विभिन्न उपाय किए गए। किसानो में निजी प्रेरणा को प्रोत्साहन दिया गया। भूमि पर तत्कालीन व्यक्तिगत अधिकार को मान्यता देते हुए किसानो को सामुदायिक और व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की छूट दी गई। फसलें नष्ट होने की सूरत में उन्हे ऋण की सुविधाएं प्रदान की गई। विभिन्न रियायतें देकर किसानो को सहकारी और समाजवादी ढग से खेती करने को प्रोत्साहित किया गया। धनी किसानो पर वृद्धिमान दर से कर लगाया गया और उनकी आर्थिक समृद्धि को उचित रूप से सीमित कर दिया गया जबकि गरीब किसानो को प्रत्येक सम्भव सहायता दी जाने लगी।

(3) खाद्यान्नों के व्यापार की स्वतन्त्रता—कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए किसानो को यह छूट दी गई कि वे कृषि कर चुकाने के बाद बची अपनी अतिरिक्त उपज को कही भी और किसी प्रकार भी बेचें। प्रारम्भ मे उन्ह केवल स्थानीय बाजार मे ही स्वतन्त्र व्यापार का अधिकार दिया गया, लेकिन बाद मे यह प्रतिबन्ध भी हटा दिया गया। बाजारो के विस्तृत होने और खाद्यान्नो के विक्रय मे आजादी मिलने से किसानो का कृषि-कार्य मे आकर्षण बढा और साथ ही उनका अधिक आर्थिक कल्याण भी सम्भव हो सका।

(4) वेतनभोगी मजदूर रखने की सुविधा—किसानो को यह भी अधिकार दिया गया कि वे किराये के अथवा वेतनभोगी मजदूर (Hired labour) रख सके। इससे किसानो के मताधिकार पर कोई आंच आने की आशका भी समाप्त करदी गई।

(5) कृषि सहकारिता को प्रोत्साहन—कृषि-क्षेत्र मे सहकारिता के विकास पर बल दिया गया और सहकारी समितियो को पुनर्जीवित तथा विकसित किया गया। अक्तूबर, 1921 मे एक आज्ञप्ति निकाल कर सहकारी समितिया को स्वतन्त्र [illegible] अस्तित्व प्रदान किया गया। किसानो को यह सुविधा दी गई कि वे ऐच्छिक आधार पर व्यापारिक सुविधा के लिए अपनी सहकारी समितियाँ गठित करें।

नवीन कृषि-नीति की उपलब्धियां और असफलताएँ—नवीन कृषि-नीति के फलस्वरूप एक ओर तो किसाना का असन्तोष दूर हुआ तथा दूसरी ओर श्रमिक वर्ग के लिए सरकार खाद्यानो की पूर्ति भी कर सकी। इस नीति से किसाना और मजदूरो के बीच कटुता कम होकर मैत्री के एक नए आधार का सूत्रपात हुआ।

नवीन नीति से कृषि उत्पादन मे भारी वृद्धि हुई। अनाज का उत्पादन 1921-22 मे 423 लाख मीट्रिक टन से बढकर 1926-27 मे 783 लाख मीट्रिक टन हो गया। कृषि-क्षेत्रफल 1922-23 मे 662 लाख हैक्टर से बढ़कर 1926-27 मे 937 लाख हैक्टर हो गया। प्रतिशत की दृष्टि से कृषि-उत्पादन की मात्रा मे 1925-26 मे युद्धपूर्व के उत्पादन की मात्रा के 92 प्रतिशत के बराबर वृद्धि हुई। 1913 मे जो क्षेत्रफल था उसके 92 7 प्रतिशत भाग पर 1925-26 मे पुन कृषि-कार्य होने लगा। अगले वर्ष अर्थात् 1926-27 मे कृषि-क्षेत्रफल युद्धपूर्व के क्षेत्रफल के बराबर पहुँच गया। कपास, फ्लैक्स, तम्बाकू, चुकन्दर आदि का उत्पादन निरन्तर

बढता गया। कृषि मे विकास के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन और समृद्धि की पृष्ठभूमि स्वत बनने लगी। कृषि अर्थ-व्यवस्था मे सुधार होने से कृषि सम्बन्धी पशुधन मे भी वृद्धि हुई।

कृषि-क्षेत्र मे चहुँमुखी विकास होने पर भी गेहूँ, जौ आदि का उत्पादन 1913 के उत्पादन के बराबर नही पहुँच सका। 1922 मे फसल बहुत अच्छी हुई और रूसी जनता क्रान्ति के बाद पहली बार अन्न सकट से बहुत-कुछ मुक्ति पा सकी। इसी वर्ष रूस ने पहली बार अन्न का निर्यात शुरू किया। कृषि-उत्पादन बढाने के लिए सरकार ने यह नीति भी अपनाई कि सीमावर्ती क्षेत्रो मे जो किसान बसना चाहे उन्हे नि शुल्क भूमि दी जाए।

नवीन कृषि नीति से ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक स्थिति मे सुधार तो अवश्य हुआ, लेकिन वास्तविक लाभ मध्यवर्गीय किसानो तथा धनिक कुलक वर्ग को ही हुआ। छोटे-छोटे कृषि फार्मो की सख्या मे बहुत अधिक वृद्धि होने से खेती के लिए पर्याप्त कृषि योजनाओ की व्यवस्था मे बाधा पडी और कृषि के लिए औजारो की शीघ्र प्राप्ति नही की जा सकी। परिणाम यह हुआ कि प्रति व्यक्ति उत्पादन-क्षमता घट गई। कृषि-नीति के कारण पूँजीवादी तत्त्व पुन सिर उठाने लगे। मध्यवर्गीय और गरीब किसान देश की कुल उपज का लगभग 85 3 प्रतिशत भाग पैदा करते थे, लेकिन फसल का केवल 13 प्रतिशत भाग ही बाजार मे बेच पाते थे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जहाँ 1903 मे लगभग 21 मि टन अनाज बिक्री के लिए बाजार मे आता था वहाँ 1926–28 में केवल 8 मि टन खाद्यान्न ही बिक्री के लिए बाजार में लाया गया। स्थिति यहाँ तक बिगड गई कि किसानो ने राजकीय सस्थाओ को निर्धारित मूल्यो पर अनाज बेचने से इन्कार कर दिया। सरकार को अनाज बेचने की अपेक्षा उन्होने अपने जानवरो को अनाज खिला देना अधिक उपयुक्त समझा, क्योकि अनाज के बनिस्बत जानवरो का माँस बाजार मे बेचना अधिक सुगम था। यही नही, किसानो ने अनाज के स्थान पर व्यापारिक फसलो का बोना शुरू कर दिया। परिस्थिति बहुत विकट हो गई क्योकि अनाज का मूल्य बढाते ही औद्योगिक उत्पादन का मूल्य बढ जाता था जिससे जनता मे असन्तोष अधिक उग्र हो रहा था। जनता का सन्तोष सरकार के लिए जबर्दस्त चुनौती थी। इन परिस्थितियो ने सरकार के सामने इसके सिवाय कोई उपाय नही रहा कि अनाज वसूल करने के लिए कठोर उपायो का आश्रय लिया जाय और बल प्रयोग तक किया जाय।

इस प्रकार नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत अन्त में किसानो की दशा लगभग वैसी ही हो गई जैसी क्रान्ति से पहले थी। इतना ही नही, कृषि की स्थिति इतनी बिगड गई कि देश मे भयानक अकाल की आशका प्रबल हो गई। सरकार ने जो भी कदम उठाए वे कृषि सगठन को कमजोर करने वाले सिद्ध हुए। कृषि का पुनरुद्धार तभी सम्भव हुआ जब नवीन आर्थिक नीति को तिलांजलि देकर 1928 से नियोजन का मार्ग अपनाया गया।

उद्योग (Industry)

नवीन आर्थिक नीति से पहले सोवियत सरकार ने उद्योगो मे अत्यधिक केन्द्रीयकरण की नीति अपनाई थी। लगभग सभी औद्योगिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। इनका प्रबन्ध सचालन और नियन्त्रण सर्वोच्च आर्थिक परिषद् वेसेन्खा (Vasenkha) तथा उसके सहायक विभागो ग्ल।वकी (Glavkı) के हाथो मे केन्द्रित था। नवीन आर्थिक नीति के प्रारम्भिक काल मे इस प्रचलित औद्योगिक व्यवस्था मे कोई विशेष परिवर्तन नही किए गए लेकिन आगे चलकर विकेन्द्रित औद्योगिक प्रणाली स्थापित की गई जिसके अन्तर्गत औद्योगिक क्षेत्र मे प्रबन्ध एव नियन्त्रण मे विकेन्द्रीकरण तथा छोटे छोटे उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के कार्यक्रम अपनाए गए। इस नवीन औद्योगिक नीति के अनुपालन मे जो व्यवस्थाएँ की गई वे मुख्यत इस प्रकार थी—

(1) **मिश्रित अर्थ-व्यवस्था**—सरकार ने ऐसी नीति अपनाई जिससे व्यक्तिगत प्रेरणा को प्रोत्साहन मिले। इन दृष्टि से औद्योगिक क्षेत्र को दो भागो मे बाँटा गया निजी क्षेत्र और समाजवादी क्षेत्र। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पर बल दिया गया। तदनुसार बैंकिंग व्यवसाय, बिजली परिवहन, धातु तथा इन्जीनियरिंग आदि राष्ट्रीय महत्त्व के कुछ उद्योग सरकार के पूर्ण अधिकार और नियन्त्रण मे रखे गए तथा कुछ उद्योगो के प्रबन्ध और नियन्त्रण को विकेन्द्रीकृत कर दिया गया।

(2) **अराष्ट्रीयकरण**—नवीन औद्योगिक नीति के अन्तर्गत अराष्ट्रीयकरण की नीति का मार्ग अपनाया गया। 1920 के आग राष्ट्रीयकरण द्वारा जिन छोटे छोटे प्रतिष्ठानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था, उन्हे या तो सहकारी समितियो और निजी उत्पादको को सौंप दिया गया या वापिस लौटा दिया गया। 1922 तक लगभग 4 हजार ऐसे ग्रामीण तथा लघु औद्योगिक प्रतिष्ठानो का अराष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिनमे 10 या 20 से अ।धक श्रमिक कार्य नही करते थे। अब ये उद्योग वेसेन्खा तथा उसकी सहयोगी शाखाओ के नियन्त्रण से पूरी तरह मुक्त हो गई। सन् 1923 के आँकडो के अनुसार 1,65,781 औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे से 1,47,471 अर्थात् लगभग 88 5 प्रतिशत प्रतिष्ठान व्यक्तिगत नियन्त्रण मे रहे जबकि 4,613 अर्थात् लगभग 3 1 प्रतिशन प्रतिष्ठान सहकारी क्षेत्र के नियन्त्रण मे आए। महत्त्वपूर्ण राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठान केवल 13,597 अर्थात् लगभग 8 4 प्रतिशत ही थे, लेकिन उनमे काम करने वाले श्रमिको का प्रतिशत 84 1 था।

(3) **औद्योगिक प्रबन्ध व्यवस्था मे परिवर्तन**—यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत उद्योगो के नियन्त्रण और सचालन के लिए केन्द्रीयकरण की नीति अपनाई गई थी लेकिन नवीन आर्थिक नीति के दौरान औद्योगिक प्रबन्ध व्यवस्था को शिथिल करते हुए विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई जाने लगी। ऐसी व्यवस्था की गई कि प्रान्तीय आर्थिक परिषदें वेसेन्खा (Vasenkha) के नियन्त्रण से हटकर प्रान्तीय सोवियत राज्य सत्ता के मातहत हो गई। वेसेन्खा सगठन और उसकी कार्य-प्रणाली मे भी आवश्यक परिवर्तन तथा सुधार किए गए, उप-विभागो (Glavkı) की सख्या 53

से घटा कर 16 कर दी गई। यद्यपि आर्थिक एवं औद्योगिक गतिविधि का सामान्य नियन्त्रण केन्द्रीय सत्ता के अधीन ही रहा, लेकिन दिन प्रतिदिन की कार्य-व्यवस्था का विकेन्द्रीयकरण कर दिया गया।

नवीन औद्योगिक नीति के अन्तर्गत राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठानो की स्वायत्त प्रबन्धीय व्यवस्था को पुनर्संगठित किया गया। एक ही प्रकार की उत्पादन व्यवस्था के औद्योगिक प्रतिष्ठानो को मिला कर उनके सघ (Unions) बना लिए गए जिन्हे बाद मे "ट्रस्ट" (Trusts) कहा जाने लगा। 1921 के उत्तरार्द्ध और 1922 में ट्रस्टो का निर्माण बड़ी तेजी से हुआ। इन ट्रस्टो तथा बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानो को वेसेन्खा तथा उसकी सहायक सस्थाओं के प्रबन्ध नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया। जो ट्रस्ट बने उनमे औसतन 12 औद्योगिक प्रतिष्ठान सम्मिलित किए गए। 478 ट्रस्टो में लगभग 10 लाख श्रमिक कार्य करते थे।

सोवियत सरकार ने ट्रस्टो को तीन भागों मे विभाजित किया—सघीय ट्रस्ट, प्रादेशिक ट्रस्ट तथा स्थानीय ट्रस्ट। इन्हे क्रमश वेसेन्खा ग्लावकी (प्रादेशिक अर्थ-परिषद्) और सैन्टर्स (स्थानीय अर्थ-परिषद्) के नियन्त्रण मे रखा गया। 1922 में एक आदेश जारी करके ट्रस्टो के पुनर्संगठन को नियमित किया गया। अप्रैल, 1923 मे इन ट्रस्टो को स्वतन्त्र रूप से समझौते आदि करने की छूट दे दी गई। ट्रस्टो को बॉण्ड या ऋण-पत्र जारी करने का अधिकार भी मिला, किन्तु इस बारे मे राज्य ने अपने पर कोई भी उत्तरदायित्व नही रखा और न ही ट्रस्ट की हानि को पूरा करने की जिम्मेदारी सभाली। ट्रस्टो पर यह प्रतिबन्ध रहा कि वे वेसेन्खा अर्थात् सर्वोच्च आर्थिक परिषद की अनुमति के बिना स्थाई सम्पत्ति का विक्रय अथवा हस्तातरण नही कर सकते थे। चल सम्पत्ति के बारे मे अनुबन्ध करने की ही उन्हे पूरी स्वतन्त्रता थी। ट्रस्टो का मुख्य कार्य कारखानों के उत्पादन-कार्यक्रमो का निर्धारण और सुचारु सचालन था। वेसेन्खा को अधिकार था कि वह इन ट्रस्टो का विघटन करदे तथा अपनी इच्छानुसार उनके लाभांश का बटवारा करे। ट्रस्ट के अकेक्षण के लिए तीन अकेक्षका की एक समिति होती थी जिसमे एक श्रम-सघ का सदस्य अवश्य होता था। अकेक्षक ट्रस्ट के कागजात देख सकते थे, लेकिन ट्रस्ट के सचालन के बारे में उन्हे कोई अधिकार नही था। ट्रस्टियो की नियुक्ति वेसेन्खा द्वारा श्रम-सघो के सदस्यो की सलाह से की जाती थी। ये ट्रस्ट आन्तरिक रूप से वाणिज्य के सामान्य सिद्धान्तो के आधार पर कार्य करते थे। सरकारी प्रधानत मूल्य-नियन्त्रण के सम्बन्ध मे था।

नवीन औद्योगिक नीति के अन्तर्गत बाजार-व्यवस्था पुन स्थापित की गई तथा सहकारी सस्थाओ को भी समझौते आदि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई।

नवीन औद्योगिक नीति का मूल्यांकन—नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत लगभग सभी उद्योगो ने प्रगति की। केवल लौह उद्योग को छोड़कर अन्य सभी उद्योगो का उत्पादन 1926 27 मे उस स्तर तक पहुँच गया जो 1913 में था।

कुछ उद्योगो मे तो उत्पादन की गति और भी तेज रही। नवीन नीति के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादन की जो प्रगति हुई वह अग्रांकित सारणी से स्पष्ट है—

युद्ध पूर्व के मूल्य मिलियन रूबल मे

	1922-24	1924-25	1925 26
(क) राजकीय उद्योग			
(1) बडे पैमाने के	2383	3740	5309
(11) लघु एव कुटीर	17	21	24
(ख) सहकारी उद्योग			
(1) बडे पैमाने के	108	154	247
(11) लघु एव कुटीर	64	79	91
(ग) निजी उद्योग			
(1) बडे पैमाने के	136	167	241
(11) छोटे पैमाने के	706	879	1011
योग	3 414	5 0 0	6 923

विभिन्न उद्योगो मे जो उत्पादन वृद्धि हुई उसका अनुमान इस तालिका से स्पष्ट है—

उद्योग	इकाई	1913	1924–25	1925–26	1926–27	1927–28
कोयला	मि० टन मे	29 1	16 1	25 4	32 1	35 4
लोहा	मि० टन मे	4 2	1 3	2 2	3 0	3 3
इस्पात	मि० टन मे	4 2	1 9	—	—	4 3
तेल	मि० टन मे	9 2	7 0	8 5	10 3	11 8
विद्युत शक्ति	बिलियन किलोवाट	1 9	2 3	3 3	4 1	5 1

वास्तव में नवीन आर्थिक नीति औद्योगिक उत्पादन को बढाने में पूर्ण रूप से सफल हुई। कोयला, इस्पात, तेल, विद्युत-शक्ति, सूती वस्त्र एव कृषि यन्त्रो का उत्पादन 1913 की तुलना मे अधिक हुआ जबकि लोहे, चीनी, ऊनी वस्त्र आदि का उत्पादन कुछ कम रहा। फिर भी उत्पादन की किस्म मे कुछ अवनति ही हुई।

देशी या आन्तरिक व्यापार (Internal Trade)

राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न दोष दूर करने के लिए सरकार ने नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत मुक्त व्यापार-नीति को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार छोटे पैमाने पर उत्पादन द्वारा आर्थिक दशाओ की पूर्ति की दिशा मे एक प्रभावशाली कदम

उठाया गया। व्यापारियो को देशी व्यापार-क्षेत्र मे लाभ कमाने की छूट दी गई। किसानो को स्वतन्त्रता दी गई कि वे कर चुकाने के उपरान्त शेष बचे खाद्यान्नो, कच्चे माल और चारे को इच्छानुसार बाजार मे बेच कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ करें। आगे चल कर श्रमिको को भी इस प्रकार की सुविधा देना आवश्यक हो गया क्योकि वस्तु विनिमय के अन्तर्गत श्रमिको को इस तरह की व्यवस्था न होने पर आवश्यक वस्तुएँ मिलने मे भारी कठिनाई आती थी। इस प्रकार के वस्तु विनिमय को सुगम बनाने के लिए श्रमिको को अपने उत्पादन का एक भाग कृषि पदार्थों से विनिमय करने के लिए अलग रखने का अधिकार दिया गया। उन्हे यह भी अधिकार दिया गया कि वे एक निश्चित आधार पर उत्पादन का कुछ भाग अपने पास रख सकें।

आन्तरिक विनिमय की उपयुक्त व्यवस्था को प्रोत्साहित करने के साथ साथ राज्य मे उसे नियन्त्रित करने के भी प्रयत्न किए लेकिन इसमे सरकार को सफलता नही मिली। मई, 1921 मे एक नया आदेश निकाल कर स्थानीय व्यापार के क्षेत्र को पूर्वापेक्षा काफी विस्तृत कर दिया गया। सरकारी नीति के फलस्वरूप "नेपमेन" (Napaman)के रूप मे छोटे-बडे व्यापारियो के पुन दर्शन हुए। ये व्यापारी भारतीय महाजनो के समान थे। ये लोग किसानो से अनाज खरीद कर उसे निकट की मण्डियो और नगरो मे ले जाकर बेचने लगे। इसी तरह किसानो की मुर्गियाँ, साग-सब्जी, फल, अण्डे, आदि को भी खरीद कर ये उन्हे नगरो मे अपनी दूकानो पर बेचने लगे। यह व्यापारी वर्ग ट्रस्टो से थोक सामान खरीदने और उन्हे कच्चा माल उपलब्ध कराने मे सहयोग देने लगा। नवीन आर्थिक नीति के प्रथम दो वर्षों मे ही इन नैपमेन व्यापारियो ने थोक और खुदरा व्यापार पर अपना इतना प्रभाव जमा लिया कि औद्योगिक और सहकारी ट्रस्टो का लगभग 50 प्रतिशत व्यापार उन्ही के द्वारा सम्पन्न होने लगा। ये व्यापारी इतनी प्रगति इसलिए कर सके क्योकि विकेन्द्रीकरण की नीति के फलस्वरूप सरकार आरम्भ मे सरकारी व्यापार सगठन और सहकारी दूकानें अधिक सख्या मे नही खोल सकी। लेकिन धीरे-धीरे सहकारी और सरकारी विक्रय केन्द्रो की सख्या बढने लगी तथा विभिन्न उद्योगो ने अपनी अपनी खुदरा दूकानें खोल कर व्यक्तिगत व्यापार की प्रभुत्वकारी स्थिति समाप्त कर दी। 1922-23 मे कृषि और औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य मे भारी असन्तुलन आ जाने से आर्थिक सकट उत्पन्न हुआ। इससे भी व्यक्तिगत व्यापार को ठेस पहुँची इस सकट के कारण यह निश्चय किया गया कि व्यक्तिगत व्यापार को सीमित करके राज्य एव सहकारी व्यापारिक माध्यम बनाया जाए।

सन् 1922 के उपरान्त राजकीय एव सहकारी सस्थाओ की सख्या मे तेजी से विस्तार हुआ। औद्योगिक प्रन्यासो (Industrial Syndicates) ने थोक व्यापार के लिए अपने सगठन बना लिए और प्रान्तीय सरकारो द्वारा भी थोक तथा खुदरा व्यापार के लिए सस्थाएँ बनाई गई। सर्वोच्च आर्थिक परिषद "वैसेन्खा" ने केन्द्रीय स्तर पर व्यापारिक कम्पनियाँ स्थापित की। जहाँ सन् 1922 मे कुल व्यापार की

गतिविधि इस प्रकार थी—व्यक्तिगत व्यापार 75 3 प्रतिशत, राज्य द्वारा व्यापार 14 4 प्रतिशत, एव सहकारी समितियो द्वारा व्यापार 10 3 प्रतिशत, वहाँ इन विभिन्न आर्थिक परिवर्तनो के फलस्वरूप सन् 1928–29 मे निजी व्यापारियो के हाथ मे कुल थोक व्यापार का केवल 5 प्रतिशत भाग ही बच रहा और फुटकर व्यापार-क्षेत्र मे लगभग 20 प्रतिशत भाग। इस प्रकार कुल आन्तरिक व्यापार का लगभग 80 प्रतिशत राजकीय और सहकारी सस्थाओ के हाथ में आ गया।

इस प्रकार नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सरकार ने ऐसी स्थिति उत्पन्न की जिसमे यद्यपि पूँजीवाद को कुछ स्थान प्राप्त रहा तथापि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अन्य महत्त्वपूर्ण अगो की भाति देशी व्यापार पर सरकारी प्रभुत्व ज्यो का त्यों बना रहा।

विदेशी व्यापार (Foreign Trade)

यौद्धिक साम्यवाद के काल से विदेशी व्यापार पर रूसी सरकार का एकाधिकार था और नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत भी विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे मे राज्य का एकाधिकार ही सर्वोपरि रहा। अन्य क्षेत्रो की भाँति विदेशी व्यापार के क्षेत्र में छूट नहीं दी गई। सरकार का विचार था कि जब तक विदेशी व्यापार पर पूर्ण राजकीय नियन्त्रण नही होगा तब तक देश की बुनियादी समस्याओ का हल नही हो सकता। सरकार की यह नीति ठीक ही सिद्ध हुई क्योकि विदेशी व्यापार पर सरकारी एकाधिकार के कारण ही—(1) रूस ससार की पूँजीवादी मन्दी और तेजी से दुष्प्रभावो से अपनी अर्थ-व्यवस्था को बचा सका, (2) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से अपने औद्योगिक विकास की रक्षा कर सका, (3) आर्थिक स्थिरता बनाए रखने मे सफल हुआ, एव (4) आगे चल कर पचवर्षीय योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन आसानी से जुटा सका।

अपनी औद्योगिक क्रान्ति को आगे बढाने के लिए सोवियत सरकार को यन्त्रो और मशीनो की बडी आवश्यकता थी। प्रारम्भ मे रूस ने अपने स्वर्णकोष की सहायता से उनका आयात किया, लेकिन जब स्वर्णकोष सीमित हो गया तो हानि उठा कर भी अपना माल बेच कर इनका आयात किया जाने लगा। सोवियत सरकार ने विदेशी व्यापार का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भी किया। हानि पर माल खरीदने का लालच देकर राजनीतिक मान्यता प्राप्त करने के प्रयत्न किए गए।

सोवियत सरकार की नवीन औद्योगिक एव व्यापारिक नीति के फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होने लगी। अत सरकार ने अब निर्यात की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना शुरू किया। निजी व्यापारियो तथा सहकारी समितियो को भी विदेशी व्यापार मे भाग लेने के अधिकार प्रदान किए गए। केन्द्रीय स्तर पर एक विदेशी व्यापार विभाग (Commissariat of Foreign Trade) सगठित किया गया। सन् 1923 मे देशी और विदेशी व्यापार नीतियो मे समन्वय लाने की दृष्टि से एक और व्यापार विभाग अथवा नारकॅमतोर्ग (Narcomtorg) सगठित किया गया।

विदेशी दूतावासो मे व्यापार-प्रतिनिधि नियुक्त किए गए। जिन देशो मे रूसी दूतावात
नही थे, वहाँ विदेशी व्यापार के विकास के लिए एक कम्पनी सगठित की गई।
निर्यात बढाने के उद्देश्य से करो मे भी छूट दी गई। नवीन आर्थिक नीति की अवधि
मे रूस ने ब्रिटेन, इटली आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फ्रांस, मैक्सिको, जर्मनी,
चीन तथा अन्य कई देशो स सफलतापूर्वक राजनयिक और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित
किए। रूस ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अलेगाव को दूर करने के सफल प्रयास किए।
विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के वातावरण मे भी विदेशी राष्ट्रो को इस बात पर विवश
किया कि वे रूस मे अपना माल निर्यात करने की सम्भावनाओ पर विचार करे।

आर्थिक क्षेत्र मे जो विभिन्न प्रभावशाली कदम उठाए गए उनके फलस्वरूप
विदेशी व्यापार मे काफी वृद्धि हुई। सन् 1920 मे रूसी निर्यात जहाँ केवल
6·1 मिलियन रूबल का हुआ था वहाँ 1923 मे 954 8 मिलियन रूबल का हुआ।
सन् 1921 की तुलना मे 1928 में विदेशी व्यापार सात गुने से भी कुछ अधिक हो
गया। 1921 मे कुल विदेशी व्यापार 18 2 करोड रूबल का था जो 1928 मे
138 करोड रूबल तक पहुँच गया। 1924 मे ही रूस का व्यापाराधिक्य (Balance
of Trade) उसके प्रतिकूल होने के स्थान पर अनुकूल हो गया।

मौद्रिक तथा बैंकिंग व्यवस्था

नवीन आर्थिक नीति के दौरान मौद्रिक एव बैंकिंग व्यवस्था पर सरकार का
पूर्ण नियन्त्रण रहा। यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत अर्थात् 1917 से 1921 के
मध्य जो मुद्रा-विहीन अर्थ-व्यवस्था स्थापित की गई थी, वह 1921 के बाद भी
जारी रखी गई। विनिमय के माध्यम की क्रिया को सीमित कर दिया गया और
मुद्रा केवल लाभ की इकाई तथा मूल्य-मापन का साधन रह गई। मुद्रा विहीन समाज
की स्थापना की दिशा मे अनेक सुधारक कदम उठाए गए। मुद्रा की क्रय शक्ति
छीनली गई तथा राशनकार्ड और सहकारी समिति की सदस्यता के प्रमाण-पत्र ही
उनका रूप ले सके। पूँजी निर्माण मे भी मुद्रा का स्थान बैंक-साख ने ले लिया।
इन सब परिवर्तनो के फलस्वरूप रूबल की क्रय शक्ति इतनी घट गई कि मुद्रा का
जनता के लिए कोई आकर्षण नही रहा। मुद्रा-स्फीति की दशा शोचनीय हो गई।
मूल्य स्तर अधिकाधिक बढता गया। फलस्वरूप 1919 और 1922 मे दो बार मुद्रा
का अवमूल्यन किया गया। इस अवमूल्यन द्वारा एक नया रूबल पहले के 10 लाख
रूबल के बराबर बनाया गया। पुराने कागजी रूबलो को वापिस लेकर उनके स्थान
पर नए रूबल दे दिए गए। विनिमय के माध्यम की क्रिया को कम से कम कर देने
के कार्य में इतनी अधिक सफलता मिली कि 1928 तक स्थिति यह हो गई कि मुद्रा
के रहते हुए भी उस पर व्यय करना कठिन हो गया।

मुद्रा का नियन्त्रण करने तथा विभिन्न औद्योगिक इकाइयो को ऋण देने के
उद्देश्य से एक केन्द्रीय बैंक 'गोसप्लान' (Gosplan) की स्थापना की गई। इस
राजकीय बैंक का उद्देश्य देश को अवमूल्यन के प्रभावो से बचाना, मुद्रा प्रचलन को
नियमित एव नियन्त्रण करना तथा कृषि, यातायात, उद्योग, व्यापार आदि को

अल्पकाल के लिए साख प्रदान करता था। अवमूल्यन के हानिकारक प्रभावो के निराकरण के लिए बैंक ने ब्याज दर 12 से 18 प्रतिशत प्रतिमाह करदी। स्वर्ण मूल्यों के आधार पर ऋण और अग्रिम ऋण देना निश्चित किया गया। बैंक की इस नीति के फलस्वरूप देश की अर्थ-व्यवस्था मे सुधार हुआ। यह बैंक पहले वित्त मन्त्रालय के अधीन था, किन्तु 1929 मे इसे वित्त मन्त्रालय से अलग कर दिया गया। परन्तु राज्य और बैंक की घनिष्ठता पर इसका कोई प्रभाव नही पडा। यह बैंक ही राज्य की अर्थ एव साख व्यवस्था का आधार था तथा अन्य बैंक उसके सहायक या प्रतिनिधि के रूप मे काम करते थे। यह बैंक नवीन सिद्धान्तो का पोषक बना और कुछ ही अर्से मे राष्ट्र की उन्नति का रक्षक, पोषक और सब कुछ बन गया। मुद्रा-प्रणाली में स्थिरता लाकर इस बैंक ने सरकारी वित्तीय कार्यक्रम मे सन्तुलन स्थापित कर दिया। सम्पूर्ण औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्र मे बैंक का प्रभुत्व छा गया। बैंक के परामर्श से व्यय की मदे कम करके आय के साधन बढाए गए तथा घाटे की अर्थ-व्यवस्था कम करके ऋणो का सहारा लिया गया। बैंक ने देश को अनेक आर्थिक सकटो से बचाकर बजट के आकार और स्वरूप मे विभिन्न उपयोगी परिवर्तन करने के लिए सरकार को प्रेरित किया।

बैंकिंग व्यवस्था को उन्नत करने के लिए और भी अनेक प्रयत्न किए गए। सितम्बर, 1922 मे 'औद्योगिक बैंक-प्रोम बैंक' (Bank of Industry-Prom Bank) खोलने की अनुमति दी गई। यह बैंक उद्योगो को अल्पकालीन और त्रि-वर्षीय ऋण दे सकता था। फरवरी 1922 मे सहकारी समितियो ने मिलकर उपभोक्ता बैंक (Consumers Co-operative Bank) तथा कोको बैंक स्थापित किए। बाद मे यह बैंक जनवरी, 1923 मे अखिल रूप से सहकारी बैंक-पोको बैंक (All Russian Co-operative Bank-Poko Bank) के रूप मे परिवर्तित हो . । स्थानीय उद्योगो तथा कार्यक्रमो की वित्तीय सहायता के लिए म्यूनिसिपल बैंक और छोटे-छोटे निजी व्यापारियो की सहायतार्थ पारस्परिक साख सघ (Mutual Credit Associations) स्थापित किए गए।

नवीन आर्थिक नीति के दौरान विभिन्न आर्थिक संकट
(Economic Crisises During the Period of New Economic Policy)

आर्थिक क्षेत्र मे अनेक महत्त्वपूर्ण सफलताओ के बावजूद नवीन आर्थिक नीति के दौरान देश को अनेक आर्थिक सकटो का सामना करना पडा, जिनमे से प्रमुख तीन थे—

(क) ईंधन सकट (Fuel Crisis),
(ख) बिक्री सकट (Sales Crisis), एव
(ग) कैंची सकट (Scissors Crisis).

(क) ईंधन संकट

नवीन आर्थिक नीति प्रारम्भ करते समय देश के सामने ईंधन की कमी की विकट समस्या थी जिसके फलस्वरूप यातायात के क्षेत्र में भीषण सकट उत्पन्न हो

गया और उद्योगो की स्थिति भी बडी दयनीय बनती गई। 1921 मे ही इस सकट ने इतना गम्भीर रुप धारण कर लिया कि सूती वस्त्र कारखानो को उनकी कुल आवश्यकता केवल 7 प्रतिशत ईधन ही प्राप्त हुआ और अगस्त, 1921 के आते-आते 67 सूती वस्त्र कारखानों मे से 51 कारखाने बन्द हो गए। ईंधन के अभाव के कारण ही सीमेंट का उत्पादन युद्ध पूर्व के उत्पादन की तुलना मे केवल 9 1 प्रतिशत रह गया।

इस ईधन सकट के कतिपय महत्त्वपूर्ण कारण निम्नलिखित थे—

1 गृह-युद्ध के कारण डोनबाज (Donbas) क्षेत्र मे अनिश्चितता की भावना व्याप्त हो जाने से कोयले का उत्पादन बहुत घट गया था।

2. कोयला-खानो के क्षेत्र मे खाद्यान्न का अभाव हो जाने से बडी सख्या मे श्रमिक वहाँ से गाँवों की ओर भागने लगे थे जिससे कोयले के उत्पादन में और भी गम्भीर कमी आ गई थी।

3 गृह-युद्ध के कारण कुशल श्रमिको का अभाव हो जाने से भी ईधन का उत्पादन काफी घट गया था।

ईधन सकट ने देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था में घोर निराशा की स्थिति पैदा कर दी। सरकार ने सकट को दूर करने के लिए विभिन्न प्रभावशाली कदम उठाए जिनके फलस्वरूप यह सकट धीरे-धीरे दूर होने लगा। सरकारी प्रयास मुख्यत ये थे—

1 खाद्यानो की पूर्ति का कार्य राज्य द्वारा निर्धारित कुछ गैर-सरकारी अभिकरणो को सौंप दिया गया। इसके फलस्वरूप खाद्यान्नो के उचित वितरण मे सहायता मिली।

2 यूराल से खाद्यान्न, दिनेत्ज (Denetz) से कोयला तथा तुर्किस्तान से कपास लाने की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। शहरी क्षेत्रो की ईधन की माँग की पूर्ति मे कमी की गई और कुछ समय के लिए सूती वस्त्र-कारखानों को बन्द कर दिया गया।

3 केन्द्रीय ईंधन सगठन का पुनर्गठन किया गया तथा डोनबाज (Donbas) क्षेत्र मे कोयला खानो की समस्याओ की जाँच के लिए एक विशेष आयोग बैठाया गया।

4 अकुशल खानें बन्द करदी गई। उत्पादन-कार्य केवल अधिक कुशल खानो तक ही सीमित रखा गया।

5 कोयला-खानो के श्रमिको को सन्तुष्ट करने के लिए मजदूरी-भुगतान-पद्धति में विशेष परिवर्तन किए गए।

उपर्युक्त सभी प्रयासो के फलस्वरूप 1921 मे कोयले के उत्पादन मे वृद्धि शुरु हो गई। वर्ष के अन्त मे कोयले का उत्पादन 18 3 करोड पुड हो गया जबकि वर्ष के आरम्भ मे यह केवल 13 करोड पुड ही था। सन् 1922 के अन्त तक इंधन

सकट पूरी तरह दूर हो गया और सूती वस्त्र मिलो मे अगले कुछ महीनो तक के लिए ईंधन का भण्डार जमा हो गया।

(ख) बिक्री सकट

सन् 1923 मे सोवियत सरकार को जिस भीषण कैंची सकट का सामना करना पडा, उसका एक प्रमुख कारण 1922 का बिक्री सकट था। 1922 के प्रारम्भ मे एक ओर तो औद्योगिक प्रन्यासो के पास कार्यशील पूँजी का अभाव हो गया और दूसरी ओर बिना बिक्री निर्मित वस्तुओ का भण्डार जमा होने की समस्या उत्पन्न हो गई। अपने उत्पादन के विक्रय और कच्चे पदार्थों के क्रय के लिए औद्योगिक प्रन्यास सभी उपलब्ध साधनो को काम मे लेते हुए परस्पर भीषण प्रतियोगिता करने लगे। खाद्य-पदार्थों और कच्चे माल की माँग अधिक होने से उनके मूल्य तेजी से बढते गए जबकि औद्योगिक वस्तुओ की माँग कम होने से उनके मूल्य गिरते चले गए। 1922 के ग्रीष्म तक कृषि-पदार्थों के मूल्य आकाश छूने लगे। औद्योगिक उत्पादन तथा कृषि-पदार्थों के उचित विनिमय दर मे औद्योगिक उत्पादन के प्रतिकूल जो परिवर्तन हुए, वे निम्नाँकित तालिका से स्पष्ट हैं—

वर्ष	कृषि पदार्थों का मूल्य	औद्योगिक पदार्थों के मूल्य
1913	100	100
जनवरी, 1922	104	92
फरवरी, 1922	105	90
अप्रेल, 1922	111	79
मई, 1922	113	74

जब औद्योगिक वस्तुओ की माँग एकदम घट गई और उनका मूल्य स्तर शोचनीय रूप मे गिर गया तो व्यापारियो ने जिस मूल्य पर भी वस्तुएँ बिक सकी थी, बेचना शुरू कर दिया। सम्पूर्ण औद्योगिक उत्पादन पर बडे ही प्रतिकूल रूप मे सामूहिक प्रभाव पडा। कच्चे माल का मूल्य बहुत अधिक होने तथा ऋण की पर्याप्त सुविधा न मिलने के फलस्वरूप औद्योगिक प्रतिष्ठान विवश हो गए कि वे अपना माल कम से कम मूल्य पर ही बेच दें। यह बिक्री सकट जिन कारणो से पैदा हुआ, उनमें मुख्य इस प्रकार थे—

1. औद्योगिक वस्तुओ के विक्रय और कच्चे पदार्थों के क्रय के लिए औद्योगिक क्षेत्र के पास उचित बाजार-यन्त्र नही था।

2 1921 में जो अकाल पडा उसके फलस्वरूप कृषि-पदार्थों के उत्पादन मे भारी कमी आ गई।

3 ग्रामीण क्षेत्रो मे क्रय-शक्ति निरन्तर घटती गई तथा औद्योगिक वस्तुओ की माँग कम होती गई।

4. अपना-अपना माल बेचने के लिए औद्योगिक प्रतिष्ठान गला-काट प्रतियोगिता करने से सकट और भी तीव्र हो गया। अपने निर्मित माल को यथाशीघ्र

किसी भी कीमत पर बेचने तथा खाद्यान्नों एवं कच्चे पदार्थों को अधिकाधिक खरीदने के प्रयासों के फलस्वरूप विनिमय का अनुपात औद्योगिक वस्तुओं के प्रतिकूल हो गया।

स्पष्ट है कि बिक्री संकट प्रधानतया गाँवों और शहरों के बीच आर्थिक असन्तुलन का परिणाम था। इस संकट को दूर करने के लिए निम्नलिखित प्रभावी कदम उठाए गए—

1. कच्चे माल के उचित वितरण की दृष्टि से वितरण व्यवस्था में सुधार किया गया।

2. कच्चे माल की कमी को दूर करने के लिए अति आवश्यक मिलों को छोड़ कर अन्य मिलों को बन्द कर दिया गया।

3. व्यापार की अव्यवस्था और गला-काट प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए औद्योगिक ट्रस्टों ने व्यावसायिक सिन्डीकेटों का निर्माण किया।

इन उपायों के फलस्वरूप 1922 के मई माह के बाद से ही स्थिति में सुधार आ गया। औद्योगिक एवं कृषि-पदार्थों के मूल्य का सम्बन्ध प्रतिकूल दिशा में जाने लगा जिसके फलस्वरूप अन्त में भीषण कैंची संकट उत्पन्न हो गया। वास्तव में बिक्री संकट ही कैंची संकट का आधार था। यही धीरे-धीरे कैंची संकट के रूप में प्रतिफलित हुआ।

(ग) कैंची संकट

कैंची संकट औद्योगिक एवं कृषि पदार्थों के मूल्य की विषम स्थिति से उत्पन्न हुआ। दोनों उत्पादनों के मूल्य में सामञ्जस्य रहने पर ही स्वस्थ और सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था पनप सकती थी, लेकिन 1922-23 में स्थिति एकदम विपरीत हो गई। मई, 1922 के बाद औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य, कृषि-पदार्थों के मुकाबले तेजी से गिरते गए जिसके फलस्वरूप विख्यात कैंची संकट उत्पन्न हुआ। चूँकि औद्योगिक और कृषि उत्पादन के मूल्य कैंची की दो पत्तियों की तरह चाल चल रहे थे और यह चाल अर्थ-व्यवस्था को काटने वाली अर्थात् इसके लिए घातक थी—अतः इस स्थिति को कैंची संकट के नाम से पुकारा गया। यह आर्थिक संकट कितना गम्भीर था, इसका अनुमान कृषि एवं औद्योगिक पदार्थों के मूल्यों के निम्नांकित सूचकांक से लगाया जा सकता है—

वर्ष	कृषि पदार्थों का मूल्य	औद्योगिक उत्पादन का मूल्य
1913	100	100
जनवरी, 1922	104	92
मई, 1922	113	74
अगस्त, 1922	100·5	99
सितम्बर, 1922	94	112
जनवरी-फरवरी, 1923	88	275

स्पष्ट है कि 1922 के मध्य तक विनिमय दर कृषि पदार्थों के पक्ष मे थी जिससे किसानो को प्रोत्साहन मिला कि वे कृषि क्षेत्र का विस्तार करें तथा बाजार म विक्रय के लिए अधिकाधिक उपज लाएं। इसका यह स्वाभाविक परिणाम निकला कि किसानो की क्रय शक्ति से बढी और वे औद्योगिक वस्तुओं की अधिकाधिक माग करने लगे। इस स्थिति मे 1922 के उत्तरार्द्ध से ही विनिमय दर औद्योगिक पदार्थों के पक्ष मे झुकने लगी और जनवरी, फरवरी, 1923 मे औद्योगिक वस्तुओ तथा कृषि-पदार्थों के मूल्यो मे 3 1 का अनुपात हो गया। यदि कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन मे इस परिवर्तन को हम ग्राफ द्वारा इगित करें तो ये कैंची के दो फलो की तरह दिखाई देंगे।

कारण—कैंची सकट केवल औद्योगिक और कृषि पदार्थों के मूल्यो में भारी असन्तुलन का ही परिणाम नही था, इसके एक से अधिक कारण थे जिन पर अर्थशास्त्री एकमत नही हैं।

औद्योगिक मूल्य वृद्धि के कारण ये थे—1 उपलब्ध उत्पादन शक्ति का पूरा प्रयोग नही होने से उत्पादन की प्रति इकाई पर व्यय अधिक पडने लगा था, 2 जटिल और अकुशल अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप लागत मूल्य मे वृद्धि हो रही थी, 3 एकाधिकार प्राप्त राजकीय उद्योगो द्वारा निर्मित वस्तुओ के मूल्य बहुत ऊँचे रखे गए 4 उद्योग एव तत्साम्बन्धी व्यापार को ऋण देने के बारे मे उदार नीति अपनाए जाने से औद्योगिक क्षेत्र को अपनी निर्मित वस्तुओ का अधिक समय तक सग्रह करने की क्षमता प्राप्त हुई और वे अभाव की स्थिति पैदा करके मूल्य बढाने मे सफल हुए, 5 युद्धकालीन हानि की पूर्ति का प्रयत्न किया गया जिससे औद्योगिक वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि हुई, 6 फुटकर व्यापारियो ने भी माल रोक कर अधिक धन कमाने की कोशिश की।

कृषि-क्षेत्र में मूल्यों की गिरावट के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे—1 कृषि-पदार्थों के उत्पादन मे भारी वृद्धि हुई जबकि औद्योगिक उत्पादन में कमी आई 2 कृषि प्रणाली मे विशेष परिवर्तन नही किए जा सके, 3 गृह-युद्ध के दुष्प्रभावों को दूर करके पुनर्निर्माण की दृष्टि से कृषि को उद्योग से अधिक सुविधा मिली जिससे कृषि उत्पादन तेजी से बढ चला, 4 देशी बाजारो मे अनाज की पूर्ति की मात्रा बहुत अधिक हो गई, 5 कृषि पदार्थों के विदेशी बाजार की समाप्ति से उनके मूल्य मे और कमी आ गई, 6 विशाल सगठित राजकीय सस्थाओ के एकमात्र खरीददार होने से व्यक्तिगत किसान की मोल भाव करने की शक्ति नष्ट हो गई एव 7 आवश्यकताओ का दबाव इतना बढ गया कि किसान किसी भी मूल्य पर जल्दी से जल्दी फसल बेचने लगे।

उपर्युक्त सभी कारणो से कैंची सकट उत्पन्न हुआ। इसका तात्कालिक कारण मुद्रा प्रसार था जिसके फलस्वरूप मौद्रिक इकाई के मूल्य मे निरन्तर कमी होती गई और औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य बढने लगे।

परिणाम—कैंची सकट के फलस्वरूप देश की आर्थिक स्थिति पुन: खराब हो गई। किसानो का सरकार मे विश्वास डगमगा गया और नवीन आर्थिक नीति की सर्वत्र आलोचना होने लगी। उद्योग धन्धो को असामान्य लाभ होने से उनका अस्वस्थ विकास हुआ। ग्रामीण जनता का आर्थिक शोषण हुआ तथा श्रमिको के कष्ट बढ गए। वस्तुओ के मूल्य बहुत अधिक बढ जाने से उनकी माँग कम हो गई। औद्योगिक माल कारखानो मे जमा होता गया और कच्चे पदार्थों की माँग बढ गई। कृषि-पदार्थों की माँग बढ जाने से उनके मूल्य भी चढ गए और स्थिति अधिक बिगड गई। *कैंची सकट ने केवल आर्थिक विकास की गति को ही धक्का नही पहुँचाया* बल्कि देश मे एक राजनीतिक सकट भी पैदा कर दिया क्योकि किसानो और मजदूरो की सन्धि अथवा उनके मधुर सम्बन्ध खतरे मे पड गए।

सकट निवारण के उपाय—कैंची सकट से उत्पन्न राजनीतिक और आर्थिक खतरो का मुकाबला करने के लिए सरकार ने कठोर उपायो का आश्रय लिया। लेकिन इस बात का ध्यान रखा गया कि यदि औद्योगिक उत्पादन और कृषि-पदार्थों के मूल्यो में अधिक कमी या वृद्धि की गई तो एक ओर तो श्रमिकों का असन्तोष बहुत अधिक बढ जावेगा और दूसरी ओर कृषि विपणन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। अत: सरकार ने, स्थिति पर काबू पाने के लिए, दो तरफा प्रयास किए। यह नीति अपनाई गई कि कुछ औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य घटाए जाएँ और कुछ कृषि पदार्थों के मूल्य बढाए जाएँ। इस दृष्टि से सरकार ने औद्योगिक एव कृषि क्षेत्र मे मुख्यत अग्रलिखित कदम उठाए—

(1) राजकीय बैंक के माध्यम से कठोर साख नियन्त्रण की व्यवस्था की गई जिससे विभिन्न व्यवसायो को मुद्रा की कमी महसूस हुई और उन्हे अपना सग्रहीत माल बेचना पडा।

(2) आन्तरिक व्यापार के लिए एक नवीन समिति गठित की गई जिसके द्वारा वस्तुओ का अधिकतम मूल्य निर्धारित किया गया।

(3) विदेशो से सस्ती वस्तुओ का आयात किया गया जिससे विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धा में देशी औद्योगिक वस्तुएँ कम मूल्य पर बेची जा सकी।

(4) व्यक्तिगत व्यापार सीमित करके राज्य एव सरकारी व्यापार के माध्यम को अपनाया गया।

(5) उदार मूल्य नीति अपनाई गई, खाद्यान्न के निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया तथा किसानो के लिए राजकीय बैंक द्वारा उधार-साख व्यवस्था की गई।

(6) मौद्रिक व्यवस्था मे सुधार करके मुद्रा के मूल्य मे स्थिरता लाने के प्रयास किए गए।

(7) कृषि उत्पादन के व्यापार मे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया गया।

इन उपायो के परिणामस्वरूप सन् 1924 तक कैंची सकट लगभग समाप्त हो गया। 1924 में औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन के मूल्यो का अन्तर निरन्तर

कम होता गया। 1928 तक सरकारी तौर पर सकट की समाप्ति की घोषणा कर दी गई। लेकिन वास्तविकता यह थी कि कैंची सकट कुछ और अवधि तक चला, व्यापारिक सन्तुलन किसानो के विपरीत बना रहा और अन्त मे स्टालिन को राशनिंग का सहारा लेना पडा।

नवीन आर्थिक नीति का परित्याग
(Divorce to New Economic Policy)

यौद्धिक साम्यवाद के बाद जो नवीन आर्थिक नीति अपनाई गई वह समाजवादी ढाँचे मे पूँजीवादी उत्पादन के प्रभावशाली तरीको का एक अनोखा नमूना था। लेनिन जानता था कि रूस को पूँजीवाद की दोनो परिस्थितियो मे से गुजरना पडगा—निजी पूँजीवाद और राजकीय पूँजीवाद। निजी पूँजीवाद से राजकीय पूँजीवाद उत्पन्न होगा तथा राजकीय पूँजीवाद से समाजवाद। इस कार्य को नवीन आर्थिक नीति ने भली प्रकार पूरा किया।

नवीन आर्थिक नीति के दौरान आर्थिक क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं में पर्याप्त सन्तोषजनक स्थिति रही और राष्ट्रीय आय चमत्कारी ढग से बढी। चार वर्ष की अल्पावधि मे ही राष्ट्रीय आय मे लगभग 150 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। आयात-निर्यात के क्षेत्र मे भी पर्याप्त उन्नति हुई तथा 1913 के पूर्व की स्थिति प्राप्त कर ली गई। अर्थ-व्यवस्था मे स्थायित्व लाने के प्रभावशाली प्रयास हुए। वास्तव मे नवीन आर्थिक नीति ने केवल समाजवाद के माग को ही प्रशस्त नही किया बल्कि दूसरी ओर जनता को समाजवादी अर्थ-व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रशिक्षित भी किय। विभिन्न आर्थिक सकट इस नीति के प्रभावशाली अवलम्बन के कारण ही दूर किए जा सके। इस नीति के दौरान ही बैंकिंग प्रणाली का विस्तार हुआ तथा विदेशी राष्ट्रो से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा मे भी प्रगति हुई।

इन सब बातो के बावजूद कतिपय कारणो से नवीन आर्थिक नीति का परित्याग आवश्यक हो गया था। निजी एव सार्वजनिक क्षेत्रो के अप्राकृतिक मिश्रण से अनेक घातक आर्थिक दुष्परिणाम निकले और जनता में आर्थिक विषमता का प्रसार हुआ। पूँजीवादी तत्व पनपने लगे, निजी क्षेत्र का समुचित विकास नही हो सका, उपभोक्ताओ को आवश्यक वस्तुएँ मिलने मे कठिनाई होने लगी और उत्पादक उपभोक्ताओ के शोषण मे समृद्धिशाली बनते गए। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अपनाए जाने के फलस्वरूप समाजवादी और पूँजीवादी तत्वो के बीच एक ऐसा सघर्ष उठ खडा हुआ जिसमे पूँजीवादी तत्वो की जीत के आसार प्रकट होने लगे। अत सोवियत सरकार ने इस नीति का परित्याग करते हुए निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को हमेशा के लिए दफना देना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त नवीन आर्थिक नीति को जारी करने वाला लेनिन स्वय 1924 मे चल बसा। लेनिन के उत्तराधिकारी स्टालिन ने कुछ समय तक इस नीति को चलाया और तब 1928 के आते-आते इसका परित्याग करके "नियोजन युग" का सूत्रपात किया।

क्या नवीन आर्थिक नीति साम्यवाद के प्रयोगों की विफलता और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रयास था ?

यौद्धिक साम्यवाद के बाद नवीन आर्थिक नीति प्रारम्भ की गई। यह नीति समाजवादी ढाचे मे पूंजीवादी उत्पादन के प्रभावशाली तरीको का एक अनोखा और विचित्र नमूना था। इस नीति के अन्तर्गत लेनिन ने छोटे-छोटे उद्योगो का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया, कृषि और उद्योग के बीच विनिमय व्यवस्था पुन कायम की और व्यापक क्षेत्र में, विशेषत फुटकर व्यापार मे, निजी व्यापारियो को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। इससे बहुत से लोगो मे और खासकर विदेशो मे यह धारणा कार्य करने लगी कि नवीन आर्थिक नीति अपना कर लेनिन साम्यवाद की ओर से पीछे हट रहा है। मौरिस डॉग ने लिखा है कि—

"नवीन आर्थिक नीति के प्रारम्भ को तत्कालीन विदेशी बुर्जुआ वर्ग द्वारा वापिस मुडने, विफलता का परिचायक भूतकाल मे प्राप्त की गई स्थिति के परित्याग के रूप मे बतलाया गया जो अन्तत पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के रूप मे फलीभूत होता। देश के अन्दर भी कुछ लोगो में इसे मुडना, विरोधी शक्तियो के समक्ष झुकना आदि मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी।"

किन्तु वास्तव मे ऐसा नही था। नवीन आर्थिक नीति को साम्यवाद के प्रयोगो की विफलता और पूंजीवाद की ओर पुन मुडने के रूप मे बतलाया जाना भ्रामक था। मौरिस डॉग के ही अनुसार, नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत जो अर्थ-व्यवस्था प्राप्त हुई वह कोई नई अथवा प्राचीन व्यवस्था को समाप्त करने मे विफलता का परिणाम नही थी। इस नीति के अन्तर्गत वस्तुत एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया था जिसमे पूंजीवादी और समाजवादी दोनो ही व्यवस्थाओ की विशेषताएँ विद्यमान थी। दूसरे शब्दो में नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत एक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाया गया था। यह एक परिवर्तनशील नीति थी जिसने परिवर्तन-कालीन स्थिति मे मिश्रित प्रणाली को अपनाकर देश को आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर किया। लेनिन ने "सक्रमणकालीन मिश्रित व्यवस्था" (Transitory Mixed Economy) के रूप मे इसकी व्याख्या की और इसे राजकीय पूंजीवाद ही बतलाया। लेनिन ने बलपूर्वक यह कहा कि राजकीय पूंजीवाद अनिवार्य रूप से सक्रमणकालीन होगा। इसके अन्तर्गत बहुत-सी परस्पर विरोधी शक्तियो का समावेश है जिससे यह आशका रहती है कि या तो पूंजीवादी तत्त्व या समाजवादी तत्त्व अन्त मे विजयी होगे। लेकिन सोवियत सरकार इस बात के लिए पूर्णत सचेत है कि समाजवादी शक्तियाँ ही विजयी होगी। लेनिन की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि नवीन आर्थिक नीति का अन्तिम उद्देश्य समाजवाद का सुदृढीकरण ही था। लेनिन इतना तेजी से भागने के पक्ष में नही था कि गिरने की नौबत आ जाए। वह जानता था कि साम्यवाद लाने के लिए एक विशेष प्रकार की लम्बी तैयारी की आवश्यकता है और उस तैयारी को किए बिना साम्यवाद को ला देना स्वय के पैरो पर अपने-आप कुल्हाडी मारने जैसा होगा। इतिहास बताता है कि लेनिन ने सही दिशा मे सोचा

था और उसका निर्णय सही था। नवीन आर्थिक नीति पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच के संधि काल की आर्थिक व्यवस्था थी जिसमे दोनो प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाओ के तत्वो और विशेषताओ का रहना अनिवार्य था।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत अपनाई गई अर्थ-व्यवस्था समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की दिशा मे एक प्रकार की तैयारी और ठोस अभ्यास थी।

लेनिन जानता था कि रूस को पूँजीवाद की दोनो हालतो से गुजरना पड़ेगा—निजी पूँजीवाद और राजकीय पूँजीवाद। निजी पूँजीवाद से राजकीय पूँजीवाद उत्पन्न होगा और राजकीय पूँजीवाद से समाजवाद। इस कार्य को नवीन आर्थिक नीति ने भली प्रकार पूरा किया।

नवीन आर्थिक नीति की विशेषताएं

नवीन आर्थिक नीति वास्तव मे एक पूँजीवादी नीति का ही सुधरा हुआ रूप था। रूस की सरकार देश मे समाजवाद की स्थापना करना चाहती थी, लेकिन वहाँ के गृह युद्ध व बाहरी हस्तक्षेप के कारण जनता मे अशांति थी। समाजवाद लाने वाले नेता भी दो भागो मे विभक्त थे। यद्यपि दोनो दल ही देश मे समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे तथापि दोनो दलो की नीतियो मे कुछ असमानताएँ थी। इस दशा मे देश की सरकार के सामने एक ऐसी नीति बनाने का कार्य था जो कि पहले देश मे शान्ति स्थापना मे सहायक हो तथा बाद मे देश को समाजवाद की ओर भी ले चले तथा इस बात का प्रत्येक व्यक्ति को आभास न हो। नई नीति मे य तमाम बातें शामिल हैं।

नवीन आर्थिक नीति के अनुसार देश मे पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की कुछ बातो को शामिल किया गया तथा इसमें समाजवादी अर्थव्यवस्था की भी कुछ बातो का उल्लेख था। नई आर्थिक नीति की निम्नलिखित विशेषताएँ थी—

(1) **पूँजीवाद के लक्षण**—नई नीति के अनुसार कृषक अपनी उपज को बाजार मे अपनी मर्जी के अनुसार बेच सकते थे तथा आवश्यक माल भी क्रय कर सकते थे। उद्योगो को भी इस प्रकार की छूट मिली हुई थी। वे भी स्वतन्त्रतापूर्वक बाजार मे माल का क्रय-विक्रय कर सकते थे। इस नीति के कारण देश मे खुदरा व थोक व्यापार की उन्नति हुई। अनेक सस्थाएँ केवल व्यापार मे ही लग गईं।

उद्योग के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई गई। अनेक सस्थाओ मे श्रमिक सघो द्वारा स्थापित कमियो व बुराइयो को समाप्त किया गया। ट्रस्ट नाम की सस्थाओ को मान्यता दी गई, जो कि हमारे देश की कम्पनियो के समान ही थे। इनका प्रबन्ध मालिक तथा श्रम सगठनो द्वारा सरकारी सस्था वेसेन्खा द्वारा किया जाता था, लेकिन फिर भी मालिको का महत्त्व ट्रस्ट मे अधिक समझा गया। दूसरे ट्रस्टो का एकीकरण भी किया जाने लगा। इससे बडे पैमाने की उत्पत्ति को प्रोत्साहन मिला। ट्रस्ट यद्यपि ग्लावकी से कई तरह से सादृश्य था तथापि ट्रस्ट पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का द्योतक था।

इस नीति के अनुसार अनेक वस्तुओ पर कर भी लगाए गए। शराब, स्प्रिट,

तम्बाकू, दियासलाई, चाय और कॉफी आदि पर उत्पादन कर लगाया गया। करारोपण की नवीन पद्धति निकाली गई जो कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की ही विशेषता है। इसके अतिरिक्त रूबल का अवमूल्यन भी किया गया ताकि रूसी व्यापार अन्य देशो के साथ बढ सके। रूबल की स्थिरता को बढाने के लिए नया रूबल निकाला जिसमे अधिक स्थायित्व था। मूल्यो मे स्थिरता तथा मुद्रा-प्रसार को रोकने के लिए अनेक पूँजीवादी रीतियो का अवलम्बन किया गया।

रूस में वहाँ की जनता का सरकार पर से विश्वास हट रहा था जिसको बनाना जरूरी था। वहाँ की जनता देश मे तमाम उद्योगों, कृषि आदि के राष्ट्रीय-करण के पक्ष मे नही थी। इस कारण मार्च, 1922 के आदेशो के अनुसार अनेकों प्रकार के उद्योगो को उनके पुराने स्वामियो को लौटा दिया गया। इन सब बातो से सरकार चाहती थी कि जनता अपने नैराश्य को समाप्त कर एक विकासशील राष्ट्र की स्थापना में योग दे। इस नीति ने वास्तव मे जनता का समर्थन प्राप्त कर लिया तथा सरकार के लिए लक्ष्य-प्राप्ति अब उतना कठिन न रहा।

(2) समाजवाद की ओर कदम—देश मे जनता सरकार के बिलकुल खिलाफ थी। लोग सरकारी नीतियो का पालन नहीं करते थे क्योकि वे समाजवाद के खिलाफ थे। परन्तु नई नीति के कारण ऐसा लगने लगा मानो देश मे पूँजीवाद की स्थापना हो जाएगी तथा लोगो की दिक्कते समाप्त हो जावेंगी। लेकिन सरकार ने मूल्य नियन्त्रण, अनेक बडे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण, ट्रस्टो के प्रबन्ध मे वेसेन्खा का हस्तक्षेप तथा भूमि कर की वस्तुओ के रूप मे वसूली आदि ऐसी बातें थीं जो साम्यवाद की ओर एक कदम कही जा सकती हैं। जनता तो अपनी नई स्थिति से ही खुश हो गई थी, कोई नही जानता था कि उन्हे किसी नई आर्थिक व्यवस्था का भी सामना करना पड सकता है। धीरे-धीरे सरकार ने अपनी नीति में परिवर्तन किया जिससे वहाँ के नागरिक अभ्यस्त हो गए तथा किसी ने इसका विरोध नही किया। पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा सरकार देश मे अपनी अर्थ-व्यवस्था अच्छी बना कर लोगों को दिखाना चाहती थी कि समाजवाद का प्रयोग पूँजीवाद से अच्छा है। सरकार ने इस नई नीति के द्वारा दोनो नीतियो का एक साथ प्रयोग किया व इसके जरिए पूँजीवादी व्यवस्था की कमियो व बुराइयों का प्रदर्शन किया गया तथा दूसरी ओर इसके द्वारा समाजवाद के लाभ व गुण बताए। इससे जनता स्वत. ही सरकार के पक्ष में हो गई तथा समाजवाद को अच्छा समझने लगी।

(3) कृषकों तथा कारखानों की स्वतन्त्रता—इस नीति के अनुसार कृषकों तथा कारखानो व उनके मालिको को छूट दी गई कि वे अपनी वस्तुएँ खुले बाजार में खरीद-बेच सकें, यह नीति पिछली दोनों आर्थिक नीतियो से भिन्न थी।

(4) ट्रस्टों का निर्माण—इस नीति के अनुसार उद्योगो के लिए ट्रस्ट स्थापित किए गए। ट्रस्टो के सचालन के लिए बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज होता था। बोर्ड को ट्रस्ट के सम्बन्ध मे पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। केवल कुछ बातो के सम्बन्ध मे

वेसेन्खा से इजाजत लेनी पडती थी। इस प्रकार स्वतन्त्र साहस, सगठन इस नीति की विशेषता है।

पूँजीवाद तथा समाजवाद का *साथ-साथ रहना—नवीन नीति एक ओर* तो पुरानी नीति की बुराइयो को दूर करती थी तथा पूँजीवादी नीति पर आधारित थी जबकि दूसरी ओर इस नीति का लक्ष्य था समाजवाद की प्राप्ति। ये दोनो उद्देश्य इस प्रकार मिले हुए थे कि एक-दूसरे उद्देश्य का एकदम पता नहीं लगाया जा सकता था। यही कारण है कि इस नीति का अधिक विरोध नही हुआ तथा इसके द्वारा सरकार ने लक्ष्य प्राप्ति की।

नवीन नीति द्वारा स्थापित आर्थिक प्रणाली—जब नवीन नीति लोगो के सामने आई तो लोगो ने समझा कि यह नीति सरकार के विरोधियो की जीत है तथा कहा गया कि सरकार ने समाजवाद का रास्ता छोड दिया है। कुछ लेखको ने इसे विरोधी दृष्टिकोण शामिल करने वाली नीति कहा, परन्तु यह वास्तव मे *शान्तिकालीन वातावरण उत्पन्न करने की चेष्टा थी।*

इस काल तक लगभग सभी बडे-बडे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका था। इससे राष्ट्रीय व्यवस्था का समाजवाद की ओर झुकाव था। कृषि पूरी तरह व्यक्तिगत उपक्रम थी कुछ थोडे से बडे-बडे सरकारी फार्मों को छोड कर कृषि छोटे-छोटे व्यक्तिगत कृषक भू स्वामियों के हाथ मे थी। कृषि का अधिकांश भाग प्राय कृषक के खर्च में चला जाता था। उद्योग तथा कृषि के बीच सम्बन्ध व्यापार द्वारा स्थापित होता था जिसमें व्यक्तिगत पूँजी के लिए पर्याप्त सम्भावना थी। इस व्यवस्था मे व्यक्तिगत उपक्रम के विकास के लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ थी। इस कारण इस व्यवस्था को किसी भी प्रकार समाजवादी नही कहा जा सकता था, परन्तु इसे पूँजीवादी व्यवस्था भी नही कहा जा सकता है क्योंकि तमाम उत्पादन छोटे-छोटे कृषको के हाथ मे रहता है। इसका अध्ययन करने से केवल इतना कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था से दुबारा पूँजीवाद के पनपने की पूरी सम्भावनाएँ थी। लेनिन ने इसे ट्रेडीशनल मिश्रित प्रणाली कहा।

इस प्रणाली को मिश्रित इस कारण से कहा गया क्योंकि इसमे समाजवाद, पूँजीवाद तथा छोटे पैमाने के उत्पादन—तीनो का समावेश था। यह प्रणाली थोडे से समय के ही लिए प्रयोग मे रही।

यह व्यवस्था समाजवाद की प्राप्ति के लिए तैयारी मात्र थी तथा आगे चल कर उत्पादन का सामूहीकरण होना था। उत्पत्ति के साधनो का स्वामित्व व्यक्ति के पास न रह कर भविष्य में राज्य के पास रहना था।

2

प्रथम पंचवर्षीय योजना से पूर्व सोवियत रूस की आर्थिक व्यवस्था

(Economic Situation on the Eve of the First Five Year Plan)

"नवीन आर्थिक नीति को अपनाने वाला रूस समाजवादी बन कर रहे ' रूसी समाज का रूप एक दफ्तर, एक फैक्ट्री का होगा।"

—लेनिन

सोवियत रूस ने नवीन आर्थिक नीति के दौरान आर्थिक क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था युद्ध पूर्व के स्तर तक पहुँच गई, लेकिन निजी व्यापार तथा पूँजीवादी शक्तियों को अत्यधिक प्रोत्साहन देने के कारण 1925 से इस नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया तीव्र होने लग गई। आर्थिक क्षेत्र में जो विभिन्न संकट उपस्थित हुए, उनसे भी नवीन नीति के विरुद्ध असन्तोष की भावना जाग्रत हुई। लेनिन ने पूँजीवादी और समाजवादी तत्वों के बीच जिस संघर्ष की कल्पना की थी वह सामने आ गया। सोवियत नेताओं में नवीन आर्थिक नीति को जारी रखने के सम्बन्ध में उग्र मतभेद उठ खड़े हुए। लेनिन की मृत्यु के उपरान्त स्टालिन के नेतृत्व में सन् 1928 तक, न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ, यह नीति किसी न किसी प्रकार चलती रही, लेकिन इस नीति का परित्याग अपरिहार्य हो गया और स्टालिन ने देश के लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy) की नींव रखी। सन् 1928 में ही देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात करके रूस की सर्वांगीण समृद्धि की नींव रख दी गई। अब तक सोवियत रूस अपनी नौ पंचवर्षीय, त्रिवर्षीय और सप्तवर्षीय योजनाएँ पूरी कर चुका है तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना (1976-1980) की पूर्ति की दशा में सफलतापूर्वक अग्रसर है। नियोजन की नीति के फलस्वरूप रूस आज हर क्षेत्र में इतनी प्रगति कर चुका है कि अमेरिका के बाद विश्व में उसका ही स्थान सर्वोपरि है। रूसी नेताओं का यह दावा है कि 1980 तक सोवियत संघ अमेरिका को पीछे छोड़कर विश्व का प्रथम श्रेणी का सर्वोपरि राष्ट्र बन जायेगा।

प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे आर्थिक स्थिति
(Economic Situation on the Eve of the First Plan)

यह जानना रोचक होगा कि रूस मे 1928 मे जब प्रथम पचवर्षीय योजना का समारभ किया गया तो रूस की आर्थिक स्थिति क्या थी—सारभूत रूप मे सोवियत सघ की तत्कालीन आर्थिक स्थिति सामान्यत 1915 के समकक्ष ही थी। औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से सन् 1913 मे रूस का पाँचवाँ स्थान था, लेकिन सन् 1928 उसका स्थान छठा हो गया। 1917 की क्रान्ति के उपरान्त रूस को घोर आर्थिक सकटो, गृह युद्ध की ज्वालाओ और विदेशी हस्तक्षेप का सामना करना पडा था। इन बाधाओ को झेल कर भी रूस 1928 मे अपना जो औद्योगिक महत्त्व बनाये रख सका, वह कम आश्चर्य की बात नही थी। प्रथम पचवर्षीय योजना का सूत्रपात करने से ठीक पूर्व विभिन्न क्षेत्रो मे रूस की आर्थिक दशा का दिग्दर्शन अग्राकित वर्णन से स्पष्ट होगा—

कृषि अवस्था—इस समय भी रूस एक कृषि प्रधान राष्ट्र था तथा उसकी श्रम शक्ति का लगभग 71 प्रतिशत भाग कृषि मे लगा हुआ था। 1917 की क्रान्ति के उपरान्त बडी-बडी जागीरो तथा भू-सम्पत्तियो को समानता के आधार पर छोटे-छोटे टुकडो मे किसानो मे विभाजित करने से यद्यपि भूमि के उप-खण्डो मे काफी समानता आ गयी थी लेकिन छोटे-छोटे किसानो की सख्या बहुत अधिक बढ गई थी। जहाँ 1914 मे सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि का केवल 70 प्रतिशत भाग छोटे किसानो के पास था वहाँ 1928 मे यह 96 प्रतिशत हो गया। राजकीय कृषि फार्मों के पास 30 से 40 लाख एकड भूमि थी जबकि गृह युद्ध की अवधि मे उनके अधिकार मे लगभग 50 लाख एकड भूमि थी।

प्रथम पचवर्षीय योजना का आरम्भ करते समय रूस मे कुल कृषि योग्य भूमि के लगभग 1 प्रतिशत भाग पर ही सरकारी और सामूहिक कृषि-फार्मों द्वारा खेती की जाती थी। सामूहिक खेत (Collective Farms) देश की कुल कृषि उपज का केवल 2 प्रतिशत भाग उत्पन्न करते थे। कृषि अधिकाँशत. छोटे-छोटे किसानो द्वारा की जाती थी और सरकार इसी कृषि व्यवस्था पर कच्चे माल और खाद्यान्न की उपलब्धि के लिए निर्भर थी। एक अध्ययन के अनुसार 1926-27 में कुल किसानो मे से लगभग 3 9 प्रतिशत किसान 'कूलक' थे जो समस्त अन्न का लगभग 25 9 प्रतिशत भाग कर के रूप में लेते थे। मध्यवर्गीय किसान लगभग 62·7 प्रतिशत थे जिनसे कुल अन्न का लगभग 72·9 प्रतिशत भाग वसूल किया जाता था। निर्धन किसान लगभग 22 1 प्रतिशत थे जिनसे लगभग 1 3 प्रतिशत भाग कर के रूप में प्राप्त किया जाता था। शेष 11·3 प्रतिशत किसान सर्वहारा वर्ग मे से थे जिनसे कोई अन्न-कर वसूल नहीं किया जाता था।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि की प्रगति के लिए विभिन्न उपाय करने के बावजूद 1928 में कृषि-अर्थव्यवस्था की स्थिति चिन्ताजनक थी और अनाज

की गम्भीर समस्या विद्यमान थी। 1926-27 मे युद्ध पूर्व की तुलना मे अनाज के उत्पादन की जो स्थिति थी वह अग्रांकित आँकडो से स्पष्ट होगी—

	कुल उत्पादन (10 लाख पुड)	प्रतिशत
युद्ध से पूर्व—		
भूमिपतियों द्वारा	[illegible]	12
कूलकों द्वारा	[illegible]	38
गरीब एव मध्यवर्गीय किसानो द्वारा	[illegible]	50
1926–27		
राजकीय तथा सामूहिक फार्मों द्वारा	80	[illegible]
कूलकों द्वारा	617	[illegible]
गरीब तथा मध्यवर्गीय किसानो द्वारा	4052	85 3
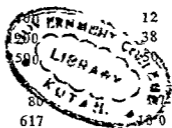
सन् 1926-27 के उपरान्त कृषि उत्पादन मे वृद्धि रुक-सी गई तथा कृषि एव औद्योगिक पदार्थों के मूल्यों का अनुपात किसानों के प्रतिकूल होता गया। कृषि की दशा शोचनीय हो गई और निराश होकर किसानो ने अन्न पैदा करना बहुत सीमित कर दिया जिससे 1927 का वर्ष समाप्त होते-होते देश मे अन्न की मात्रा बहुत ही कम हो गई। बिक्री के लिए बाजार मे अनाज बहुत ही कम आने लगा। जहाँ युद्ध से पूर्व बिक्री के लिए बाजार मे उपलब्ध अनाज 1300 मि पुड था वहाँ 1926-27 मे यह 630 मि पुड ही रह गया। खाद्यान्न की वसूली की स्थिति भी चिन्ताजनक हो गई। 1928 में मार्च की समाप्ति तक केवल 275 मि. पुड ही वसूली की गई, लेकिन अप्रैल और जून के मध्य केवल 100 मि. पुड की वसूली ही की जा सकी।

सन् 1928 मे दुर्भाग्यवश विभिन्न क्षेत्रो मे सूखा पडा जिससे फसलें नष्ट हो गई और 1928-29 मे कृषि की दशा और भी अधिक बिगड गई। सरकार ने आर्थिक सहायता देकर कृषि उत्पादन बढाने का प्रयास किया, लेकिन कोई सन्तोष-जनक परिणाम नहीं निकला। किसानो ने राज्य को निर्धारित मूल्यो पर खाद्य पदार्थ बेचने से मना कर दिया, अत सरकार को पुन कठोर नीति अपनानी पडी। सग्रहित अन्न को जप्त करने के लिए निर्धन किसानो की समितियाँ गठित की गई और छोटे-छोटे बिखरे खेतो के सामूहीकरण की नीति अपनाई गई। गहन खेती पर विशेष बल दिया जाने लगा। कूलको और समृद्ध मध्यवर्गीय किसानो द्वारा असहयोग करने पर सरकार को कठोर दमनात्मक कार्यवाही भी करनी पडी। ग्रामीण क्षेत्र मे बढते हुए असन्तोष और विद्रोही वातावरण से चिन्तित सरकार के लिए आवश्यक हो गया कि वह औद्योगिक विकास के आधार पर कृषि को सुसगठित करते हुए पूर्ण आर्थिक नियोजन की नीति का आश्रय ले।

सक्षेप मे, प्रथम योजना से पूर्व सोवियत कृषि की अवस्था बडी दयनीय थी और भयानक अकाल का सकट मुँह बाए खडा था।

औद्योगिक अवस्था

प्रथम योजना की शुरूआत के पूर्व औद्योगिक दृष्टि से रूस की स्थिति सन्तोषजनक थी। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक क्षेत्र मे, विभिन्न सकटो के बावजूद, अच्छी प्रगति की गई। 1926-27 मे उद्योग पर 800 मिलियन रूबल व्यय किए गए और 1927-28 मे 1800 मिलियन रूबल से भी अधिक। फिर भी औद्योगिक क्षेत्र के कुछ पहलुओ के प्रति सरकार की नीति उदासीन-सी रही। औद्योगिक वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित नही किया जा सका। ग्रामीण एव शहरी क्षेत्र के मध्य पारस्परिक विनिमय की स्थिति मे भी अपेक्षित सुधार नही लाया जा सका। औद्योगिक क्षेत्रो ने किसानो को घटिया वस्तुऐं बेचना जारी रखा। बहुत स औद्योगिक प्रतिष्ठान अपने विकास के प्रति लापरवाह रहे और कुछ प्रतिष्ठान तो कार्यशील पूँजी भी उपार्जित करने मे असमर्थ रहे। सरकार की अनिश्चित नीति के कारण निजी क्षेत्र ने औद्योगिक विकास के प्रति कोई रुचि नही ली। निजी क्षेत्र इस बात से आशकित रहा कि पूँजी निर्माण और औद्योगिक प्रतिष्ठान के विकास के उपरान्त सरकार उस पर अपना कब्जा जमा लेगी। सरकार औद्योगिक ढाँचे तथा प्रबन्ध के विषय मे भी कोई निश्चित नीति निर्धारित करने मे असफल रही।

1917 की क्रान्ति के उपरान्त 1928 मे प्रथम योजना आरम्भ होने पर सोवियत औद्योगिक उत्पादन मे सन् 1913 के उत्पादन स्तर से लगभग 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मशीन निर्माण उद्योग ने लगभग 23 प्रतिशत अधिक मशीनो का उत्पादन किया। शक्ति-केन्द्र मे क्रान्ति के पूर्व की तुलना मे लगभग 2'5 गुना वृद्धि की गई। ट्रैक्टर, लारी, टैंक, हवाई जहाज आदि का निर्माण देश मे ही होने लगा। 1927 मे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था मे औद्योगिक क्षेत्र का भाग लगभग 42 प्रतिशत हो गया। और 1928 मे कुल औद्योगिक उत्पादन मे सामाजिक क्षेत्र का भाग 82 4 प्रतिशत तक जा पहुँचा। कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 17 6 प्रतिशत निजी कारखानो अथवा उपक्रमो द्वारा उत्पादित किया जाता था। प्रथम योजना लागू होने के बाद निजी उपक्रमो द्वारा उत्पादित माल का प्रतिशत और भी गिर गया तथा 1938 तक यह केवल 0 2 प्रतिशत ही रह गया।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत 1927-28 से पूर्व के 3 वर्षो में औद्योगिक क्षेत्र मे वार्षिक उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करके भावी नियोजन की नीति के लिए आधारभूत तैयारी की गई। इसी अवधि मे सर्वोच्च आर्थिक परिषद् वेसेन्खा का दो बार पुनर्गठन किया गया। राजकीय उद्योगो के केन्द्रीय प्रशासन को समाप्त करके उद्योग की प्रत्येक शाखा के लिए पृथक् प्रशासन अथवा समितियो का गठन किया गया। इन विभिन्न प्रयासो के फलस्वरूप 1928 में स्थिति यह थी कि सोवियत औद्योगिक क्षेत्र का स्तर क्रान्ति के पूर्व के स्तर से कुछ ऊँचा उठ चुका था। फिर भी औद्योगिक विकास की गति में कोई चमत्कारिक वृद्धि नही हुई थी। साम्यवादी शासन अनवरत प्रयासो के बाद औद्योगिक क्षेत्र मे लगभग वही स्थिति

पा सका था जो रूस ने 10-12 वर्ष पूर्व ही प्राप्त कर ली थी। इसीलिए, स्टालिन के नतृत्व म, 1928-29 मे यह निर्णय लिया गया कि औद्योगीकरण की नीति तीव्र की जाय तथा कृषि क्षेत्र की तुलना मे औद्योगिक क्षेत्र मे अधिक विनियोजन हो। अनेक दृष्टियो से औद्योगिक प्रगति करने के उपरान्त भी यातायात की स्थिति असन्तोषजनक थी और विदेशी व्यापार उत्साहवर्द्धक नही था। कुल मिलाकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था सक्रान्तिकालीन दशा से गुजर रही थी। 1928-29 मे निजी उद्योग समाप्ति की ओर था और देश की औद्योगिक प्रगति मे अवरोध शुरू हो गया था।

औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ के समय रूस जिस स्थिति म था उसका एक अनुमान निम्नांकित तालिका से लगाया जा सकता है—

वर्ष	राष्ट्रीय आय	सकल औद्योगिक उत्पादन	सकल फार्म (कृषि) उत्पादन
1913	100	100	100
1921	38 8	–	–
1926	103 3	98 8	–
1929	137 6	158'6	116 7

नवीन आर्थिक नीति के दौरान औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि तो हुई, लेकिन किस्म मे अवनति आ गई तथा उत्पादन लागत भी ऊँची हो गई।

यातायात तथा सन्देशवाहन की दशा

महायुद्ध और गृहयुद्ध के फलस्वरूप सम्पूर्ण यातायात-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने के बावजूद नवीन आर्थिक नीति के युग मे यातायात और सन्देशवाहन के साधनो का काफी विकास किया गया। 1917 मे रेलवे लाइन की लम्बाई 63,252 किलोमीटर से बढकर 1936 में 75,721 किलोमीटर हो गई। यूराल, साइबेरिया तथा मध्य एशिया मे 1913 मे रेलवे लाइन की लम्बाई 14,540 किलोमीटर थी जो 1926 में बढकर 23,062 हो गई। वोल्गा स्थित कर्जान से यूराल मे स्थित सवर्लोवस्क तक 500 मील रेलवे लाइन पूरी की गई। आन्तरिक जल परिवहन व्यवस्था का विकास किया गया और जलमार्ग द्वारा अधिक परिमाण में माल आने जाने लगा। फिर भी इस दिशा मे प्रगति सन्तोषजनक नहीं थी। सडक परिवहन व्यवस्था मे विशेष प्रगति नही की जा सकी। समुद्री परिवहन व्यवस्था का भी यही हाल रहा। यातायात साधनो द्वारा माल ढोने के क्षेत्र में पूर्वापेक्षा अधिक प्रगति हुई। सन् 1929 में रेलो, नदियो तथा जहाजरानी द्वारा क्रमश 112 9,18 4 तथा 10 4 बिलियन टन माल ढोया गया। सन्देशवाहन की सुविधाओ पर भी ध्यान दिया गया। डाक तार और टेलीफोन व्यवस्था में सुधार किया गया तथा रेडियो प्रचार और ब्रॉडकास्टिंग को अधिक प्रभावशाली बनाया गया। डाक एव तार की व्यवस्था प्रशान्त महासागर तक सम्पूर्ण देश में विकसित की गई।

राष्ट्रीय आय

क्रान्ति और गृह युद्ध के फलस्वरूप सोवियत रूस की राष्ट्रीय आय बहुत नीचे गिर गई थी, लेकिन नवीन आर्थिक नीति के दौरान उसमे लगभग 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1928-29 मे राष्ट्रीय आय लगभग 1830 करोड रूबल हुई और अगले वर्ष अनुमानत 2750 करोड रूबल तक जा पहुँची। प्रति व्यक्ति आय जहाँ 1921 मे 29 रूबल थी वहाँ 1928 मे लगभग 200 रूबल तक पहुँच गई। 1928-29 में शुद्ध निवेश राष्ट्रीय आय का लगभग 22½ प्रतिशत रहा। समाज मे एक ओर आर्थिक सम्पन्नता व्याप्त थी तो दूसरी ओर भीषण गरीबी।

आर्थिक क्षेत्र की अन्य दशाएँ

प्रथम पचवर्षीय योजना प्रारम्भ होते समय देश मे मूल्य स्तर मे विषमता व्याप्त थी यद्यपि कैंची सकट टल गया था, लेकिन कृषि तथा औद्योगिक मूल्यो मे पूरा साम्य स्थापित नही हो सका था। मजदूरी का स्तर भी असन्तोषजनक था। कृषि तथा वन क्षेत्र मे नियोजित श्रमिको की औसत आय 1928 में क्रमश 290 तथा 395 रूबल वार्षिक थी जबकि राजकीय कर्मचारियो, बैंक कर्मचारियो तथा निर्माण-कार्य मे सलग्न श्रमिको की वार्षिक औसत लगभग 900 से 1000 रूबल थी। प्रथम याजना से पूर्व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का औसत लगभग 700 रूबल था। कृषि-क्षेत्र मे श्रमिको की आय औद्योगिक श्रमिको की तुलना मे लगभग आधी ही थी। श्रमिक सघो का विकास सन्तोषजनक स्थिति में था। 1928 में इन सघो की सदस्य सख्या लगभग 1 1 करोड थी। श्रमिको की उत्पादन कुशलता यूरोपीय श्रमिको के मुकाबले बहुत कम थी क्योकि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र मे यन्त्रीकरण की दृष्टि से रूस बहुत पिछडा हुआ था। प्रशिक्षित कर्मचारियो की भारी कमी थी, अत अमेरिका जर्मनी और इगलैण्ड से इन्जिनियरो और तक्नीकी कर्मचारियो को बुलाया जाता था। 1928 में सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था में लगभग 1 16 करोड श्रमिको और कर्मचारियो को रोजगार मिला हुआ था। नवीन आर्थिक नीति के अन्तिम वर्षों मे लगभग 17 40 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। नियोजन आरम्भ होने पर 1929 मे लगभग 8 लाख 11 हजार व्यक्ति बेरोजगार रहे। विदेशी व्यापार मे सरकार का एकाधिकार था। 1921 मे विदेशी व्यापार केवल 18 करोड रूबल का था जो 1928 में 138 करोड रूबल तक पहुँच गया।

सारांशत क्रान्ति के उपरान्त 10-11 वर्षों मे रूस के लगभग सभी क्षेत्रों में आधारभूत परिवर्तन हो चुके थे तथा 1928 तक औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक पृष्ठभूमि बन चुकी थी। नवीन आर्थिक नीति का परित्याग करके नियोजन का मार्ग अपनाना तत्कालीन परिस्थितियो में सर्वथा श्रेयस्कर था। रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना की सफलता ने नियोजन की सार्थकता सिद्ध कर दी और तभी से वर्तमान समय तक रूस समाजवादी नियोजन के मार्ग पर चल रहा है।

3

सामूहीकरण
(Collectivisation)

सोवियत रूस मे सामूहीकरण अथवा सामूहिक कृषि के आन्दोलन का सूत्रपात प्रथम पचवर्षीय योजना से (जो अक्तूबर, 1928 से प्रारम्भ हुई) किया गया। 1937 मे द्वितीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति पर सामूहीकरण का कार्य लगभग पूरा हो गया क्योंकि लगभग 93 प्रतिशत किसानों द्वारा इस पद्धति को अपना लिया गया। बचे-खुचे क्षेत्र को भी सामूहीकरण मे लाने के लिए आगे समयानुकूल कदम उठाए जाते रहे और सामूहिक खेतो के एकीकरण का मशोधित-पुनर्संशोधित दौर जारी रहा। आज सोवियत सघ की सामूहिक कृषि-पद्धति विश्व के देशो के लिए अनुकरणीय है। रूसी भाषा मे सामूहिक कृषि को 'कोलखोजी' (Kolkhozy) कहा जाता है। इसके स्वरूप का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व सकेत रूप मे इतना जान लेना आवश्यक है कि सामूहिक कृषि के अन्तर्गत किसान आपस मे मिलकर खेती-बाडी को अधिक उत्पादक-व्यवसाय बना लेते हैं और इसके लिए वे अपने सारे साधनो और श्रम-शक्ति को एक सगठित रूप मे सचालित करते हैं। कृषि के समस्त प्रसाधन जैसे मवेशी, भवन एव यन्त्रो का स्वामित्व सामूहिक रूप से किया जाता है। ये सभी चीजें सामूहिक कृषि सम्पत्ति बन जाती हैं। जिस भूमि पर सामूहिक फार्म के सदस्य खेती करते हैं उस पर राज्य का स्वामित्व होता है और यह सम्पूर्ण जनता की होती है।

सामूहिक कृषि के तीन प्रारम्भिक स्वरूप
(The Early Forms of Collective Farming, 1920-29)

क्रान्ति के बाद रूस मे कृषि क्षेत्र मे प्रगति के लिए विभिन्न प्रयास किए गए। 1920 से 1929 की अवधि मे अनेक क्रान्तिकारी कदम उठाए गए। 1922 मे भूमि पर सरकारी स्वामित्व की घोषणा की गई। नवीन आर्थिक नीति को सफल बनाने के लिए व्यक्तिगत कृषि को भी मान्यता मिली। 1920 से 1929 की अवधि मे रूस मे कृषि सहकारिता को विकसित किया गया। इस अवधि मे प्रयोगात्मक तौर पर तीन प्रकार की सामूहिक कृषि प्रचलित रही—(1) टोज, (2) आर्टेल, एव (3) कम्यून।

(1) टोज (Toz)—यह सयुक्त भूमि कृषि-पद्धति थी। इसका रूप एक प्रकार से उत्पादक कृषि सरकारी समिति का था जिसमें किसान भूमि पर खेती करने, मशीनें खरीदने और उनके उपयोग आदि के लिए परस्पर सयुक्त हो जाते थे, लेकिन अपनी अपनी भूमि, उपज, पशु तथा औजारो पर उनका व्यक्तिगत स्वामित्व बना रहता था। उत्पत्ति का वितरण भूमि के अनुपात मे किया जाता था। इसे हम सयुक्त सहकारी कृषि के एक रूप की सज्ञा दे सकते हैं।

(2) आर्टेल (Artel)—यह मध्यवर्गीय पद्धति थी जिसे आज सामान्य रूप से सारे रूप मे स्वीकार किया जाता है। वास्तव मे यही पद्धति आगे चलकर सामूहिक कृषि का रूप धारण कर सकी। इसे खेती-बाडी का सर्वाधिक व्यावहारिक और उपयोगी सहकारी तरीका पाया गया है। इसके अन्तर्गत अधिकांश उत्पादन सामूहिक रूप से किया जाता है और उत्पादन के अधिकांश साधनो पर सभी का नियन्त्रण रहता है। साथ ही प्रत्येक परिवार को कुछ व्यक्तिगत उत्पादन की अनुमति भी दी जाती है। उसके पास कुछ मवेशी, छोटे-मोटे औजार और थोडी भूमि रहती है फिर भी वह सामूहिक कार्य के उत्पादन मे अपना भाग रखता है। किसान को इस प्रकार व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो प्रकार की आय उपलब्ध हो जाती है। इसका उपभोग वह और उसका परिवार स्वेच्छापूर्वक करते हैं। वास्तव मे आर्टेल पद्धति मे समाजवादी कृषि और व्यक्तिगत कृषि का सुन्दर सामन्जस्य रहता है। इस पद्धति को अर्थात् 'कोलखोजी' को आगे यथास्थान विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

(3) कम्यून (Commune)—यह वह पद्धति है जिसमे भूमिहीन किसान उत्पादन के लिए पूंजी, पशु, यन्त्र तथा अन्य साधनो के सामूहिक रूप से स्वामी होते हैं। वे सामूहिक रूप से उत्पादन करते हैं, साथ रहते हैं और साथ खाते हैं तथा साथ ही काम करके सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं। कम्यून पद्धति मे निजी स्वामित्व के लिए किंचित मात्र भी स्थान नहीं होता।

सन् 1924 तक कृषि सहकारिता की पद्धति बडी धीमी रही। एक अनुमान के अनुसार लगभग 10 प्रतिशत कृषक ही इसमे सम्मिलित थे। सख्या की दृष्टि से कृषक सदस्य 25-30 लाख ही थे। 1928 तक यह सख्या लगभग 1 करोड तक पहुँच गई। अब परिस्थितियाँ ऐसी थी कि कृषि सहकारिता की टोज एव कम्यून पद्धति को अपनाना मुश्किल था। अत. आर्टेल पद्धति के आधार पर कृषि व्यवस्था की नीति अपनाने का निश्चय किया.गया। स्टालिन कृषि क्षेत्र मे सम्पन्न कृषि वर्ग (कुलक वर्ग) का उन्मूलन कर सामूहिक कृषि का विकास करने को कटिबद्ध था। अत अक्तूबर, 1928 में जब प्रथम पचवर्षीय योजना लागू की गई तो कृषि के सामूहीकरण की नीति पर जोर-शोर से चलाया गया। छोटे-छोटे बिखरे खेतो का सामूहीकरण कर लिया अर्थात् सामूहिक खेत (Collective Farms) बना दिए गए।

प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाएं और सामूहीकरण की पूर्ति
(First and Second Five Year Plans and Completion of Collectivisation)

नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) के परित्याग के बाद देश के सुनियोजित आर्थिक विकास की दृष्टि से अक्तूबर, 1928 से प्रथम पचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया गया। वैसे इस योजना को अन्तिम रूप से स्वीकृति अप्रैल, 1929 में साम्यवादी दल की 19वीं कांग्रेस द्वारा मिली। प्रथम योजना की अवधि 1 अक्तूबर 1928 से पाँच वर्षों के लिए निश्चित की गई, लेकिन सरकारी तौर पर बाद में घोषित किया गया कि प्रथम योजना सवा चार वर्षों में ही अर्थात 31 दिसम्बर, 1932 तक पूरी कर ली गई।

रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र में दो प्रधान उद्देश्य ये रखे गए—

(1) खाद्यान्न के उत्पादन में 35 प्रतिशत की वृद्धि द्वारा कृषि-उत्पादकता को बढाना, एव

(2) सामूहिक खेती (Kolkhoz) तथा राजकीय खेतों (Sovkhoz) की पद्धति का विकास करके कृषि का समाजीकरण करना।

स्पष्ट है कि प्रथम पचवर्षीय योजना में कृषि पर सर्वाधिक बल देते हुए कृषि के सामूहीकरण (Collectivisation of Agriculture) का कार्यक्रम अपनाया गया। यह निश्चित किया गया कि छोटे-छोटे बिखरे खेतो को सयुक्त करके सामूहिक खेत बना दिए जाएँ तथा समृद्धिशाली धनिक किसानो अर्थात् कुलक वर्ग को समाप्त करके समाजीकरण की दिशा में आगे बढा जावे।

कृषि का सामूहीकरण (प्रथम योजना के दौरान)
(Collectivisation of Agriculture During the First Plan Period)

योजना के लागू होते ही कृषि के क्षेत्र में सामूहिक खेती (Collective Farming) के आन्दोलन का तेजी से सूत्रपात किया गया। अल्पकाल में ही इस क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। जहाँ सन् 1928 में सामूहिक कृषि के अन्तर्गत केवल लगभग 13 लाख 90 हजार हैक्टर भूमि जोती गई। दो-तीन वर्ष के अल्पकाल में ही यह उपलब्धि वास्तव में आश्चर्यजनक थी।

सामूहिक कृषि का आन्दोलन नित्य प्रति जोर पकडता गया और सामूहिक कृषि का प्रबन्ध करने वाली समितियो की सख्या निरन्तर बढती गई। यह आन्दोलन इतना तेज हो गया कि जहाँ पहले कुछ लोग मिलकर सामूहिक खेत बनाते थे वहाँ अब गाँव-गाँव और जिलो ने मिलकर सामूहिक कृषि करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि धनी कृषको अर्थात् कुलको (Kulaks) द्वारा कृषि के सामूहीकरण का प्रारम्भ में तीव्र विरोध किया गया, किन्तु अन्तत बाध्य होकर वे भी इस आन्दोलन में शामिल होते गए। इस प्रकार कृषि के सामूहीकरण का एक क्रान्तिकारी प्रभाव यह हुआ कि कृषि-क्षेत्र मे पूँजीवाद का प्रभाव समाप्त हो गया। शनै-शनै कुलक वर्ग शक्तिहीन होकर प्राय: समाप्त हो गया। सोवियत सरकार ने भी कुलको के विरुद्ध

बडी उग्र नीति अपनाई। सरकारी खर्चे से प्रोत्साहित होकर किसान कुलको अपनी जमीन, अपने जानवर, खेत, यन्त्र आदि बिना किसी रोक-टोक और सरका जाँच-पडताल के छुडाने लगे। इस तरह कुलक वर्ग और उनका प्रभाव पूरी तर नष्ट हो गया।

कृषि के सामूहीकरण मे बडी जबरदस्ती की गई। कई बार ज्यादति इतनी बढ गई कि स्टालिन और बोल्शेविक दल की केन्द्रीय समिति को निषेधात्म आदेश निकालने पडे। सामूहीकरण इतनी तेजी से किया गया कि खेती के औजा और अन्य साधनो की बहुत ही कमी पड गई। कुलको के पतन के साथ-साथ देश पशु धन की कमी आ गई। कुलको ने जमीन व चारे के अभाव मे न केवल पशु को रखना बन्द कर दिया, बल्कि उनकी हत्या भी प्रारम्भ कर दी। फलस्वरूप दे का लगभग आधा पशु-धन विनष्ट हो गया और घी, दूध, मांस आदि की भा कमी हो गई।

सामूहीकरण की प्रक्रिया के दौरान कृषि के यन्त्रीकरण के लिए सरकार प्रत्येक सम्भव तरीके अपनाए। सामूहिक खेतो को भारी मात्रा मे ऋण प्रदान कि गए। सन् 1930 तक ही लगभग 55 प्रतिशत कृषक सामूहिक खेती के अन्तर्गत इ गए। सामूहिक कृषि मे क्षेत्र वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन मे भी वृद्धि होने लगी जहाँ 1928 मे सहकारी व सामूहिक खेतो से कुल मिलाकर 3 5 करोड पूड गल्ल पैदा हुआ था, वहाँ 1929 में ही लगभग 40 करोड पूड गल्ला पैदा होने लग लेकिन बाद मे प्रतिकूल मौसम व अन्य कारणो से उत्पादन मे कमी आ गई।

प्रथम योजना काल मे राजकीय फार्मों (State Farms) को भी प्रारम्भ किया गया जिनका प्रमुख उद्देश्य अनाज की पूर्ति को नियमित बनाना था। राजकी फार्मों के क्षेत्रफल में सन् 1928 की तुलना मे योजना काल मे 8 गुणी वृद्धि हुई 1932 तक कुल कृषि-भूमि का 10 प्रतिशत राजकीय फार्मों के अन्तर्गत आ गया।

पचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होते-होते रूस में कृषि का सामूहीकरर बहुत कुछ सम्पन्न हो गया। योजना के अन्त तक बाजार मे लाए जाने वाले अना के लगभग 84 प्रतिशत भाग की पूर्ति सामूहिक कृषि फार्मों द्वारा की जाने लगी।

कृषि के सामूहीकरण के प्रभाव
(Effects of Collectivisation of Agriculture)

कृषि के सामूहीकरण के तात्कालिक प्रभाव अच्छे और बुरे दोनो ही हुए यद्यपि आगे चल कर सामूहीकरण के सुपरिणामो के फलस्वरूप ही रूस ने कृषि-क्षे मे भारी प्रगति की। सामूहीकरण के मुख्य प्रभाव ये हुए—

(1) **कृषि उपज मे कमी**—प्रारम्भिक वर्षों मे कृषि के उत्पादन मे तेजी रे वृद्धि हुई, किन्तु आगे चल कर उत्पादन की यह गति कायम नही रखी जा सकी सामूहीकरण की नीति को बडी तीव्र गति से क्रियान्वित किया गया और किसान को प्रशासनिक स्वेच्छाचारिता का शिकार बनना पडा। फलस्वरूप उसमें असन्तोष व्याप्त हो गया और 1930 में अच्छे मौसम के बावजूद कृषि-उपज मे बहुत कमी

हुई। उपज में कमी की प्रक्रिया आगे के वर्षों में भी चलती रही। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 1930 मे 866 मिलियन क्विन्टल, 1931 में 695 मि० क्विन्टल और 1932 में 699 मिलियन क्विंटल उपज कम पैदा हुई। यह कमी 1933 तक चलती रही। कुल मिलाकर 1929–1932 के बीच खाद्यान्न का जो उत्पादन हुआ, वह 1925–28 के बीच हुए औसत उत्पादन से भी कम रहा।

(2) **पशु धन का विनाश**—सामूहीकरण आन्दोलन ने पशु धन का विनाश कर दिया। मध्यम वर्ग के असन्तुष्ट किसान कुलकों के साथ मिल गए। कुलकों ने पशुओं को राजकीय और सामूहिक फार्मों को देने की अपेक्षा मार डालना अधिक अच्छा समझा, अतः बड़े पैमाने पर पशुओं का सहार किया गया। सन् 1929 की तुलना मे सन् 1931 तक कुल पशुओं की सख्या में 1/3 कमी आ गई। कुछ अध्ययनो के अनुसार लगभग आधे पशुओं का नाश हो गया क्योंकि पशुओं की सख्या में कमी का क्रम 1933 तक जारी रहा। इतनी बडी सख्या मे पशुओं को मारा गया कि सन् 1939 तक भी रूस मे पशुओं की सख्या 1919 के स्तर तक नहीं पहुँच सकी।

(3) **अनेक वस्तुओं की कमी**—पशु सहार का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि मांस, चमड़ा, दूध, मक्खन आदि वस्तुओं की बड़ी कमी हो गई। खेती के लिए पशु इतने कम हो गए कि ट्रैक्टरों द्वारा भी उनकी पूर्ति नहीं हो सकी।

(4) **कुलक वर्ग की समाप्ति**—सामूहिक कृषि के विस्तार के साथ-साथ धनी कृषकों अर्थात् कुलकों को भी इसमें शामिल होने को बाध्य होना पड़ा। सामान्य किसानों ने उनसे अपनी जमीनें, मवेशी, यन्त्र आदि छीन लिए। इस प्रकार कृषि-क्षेत्र मे पूँजीवाद का प्रभाव विनष्ट हो गया। जहाँ 1928 मे कुलकों की सख्या लगभग 50 लाख थी वहाँ 1934 में यह केवल 15 लाख के आसपास रह गई और वह भी प्रभावहीन।

(5) **बड़े खेतों का निर्माण और वृहद पैमाने का संगठन**—सामूहीकरण की नीति के फलस्वरूप रूस में लगभग 2 5 करोड छोटे-छोटे खेतों को मिलाकर लगभग 2 लाख सामूहिक खेतो मे परिवर्तित कर दिया गया। कृषि परिवारों का लगभग 60 प्रतिशत भाग और कृषि योग्य भूमि का लगभग 75 प्रतिशत भाग सामूहिक कृषि के अन्तर्गत आ जाने से कृषि मे यन्त्रीकरण की प्रक्रिया सुगम हो गई। फलस्वरूप उत्पादन-वृद्धि की आशाएँ प्रबल हो गई।

(6) **व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त की समाप्ति**—सामूहीकरण की नीति के फलस्वरूप धनिक कुलक वर्ग प्रभावहीन होकर लगभग समाप्त-सा हो गया और भूमि मे निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं रहा। स्टालिन के शब्दों में "पूँजीवादी देश सोवियत सघ मे पूँजीवाद को पुन प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहे थे, लेकिन उनकी अन्तिम आशा पर पानी फिर रहा है और वह नष्ट हो रही है। जिन किसानों को वे पूँजीवादी जमीन के लिए खाद समझते थे, वे सामूहिक रूप से 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' का परित्याग कर सामूहिक कृषि और समाजवाद के मार्ग

को अपना रहे हैं। पूँजीवाद को रूस मे प्रतिष्ठित करने की अन्तिम आशा भी क्षीण हो रही है।"

सामूहीकरण के कारण चाहे तत्कालीन अवस्था मे किसानो की स्थिति बिगड गई, लेकिन कृषि भावी निर्माण की ओर अवश्य उन्मुख हो गई। आगे चल कर सामूहीकरण के सुपरिणाम निकले और कृषि की स्थिति प्रशसनीय रूप से सुधर गई। कृषि का अधिकाधिक यन्त्रीकरण होने से वैज्ञानिक खेती को बल मिला।

सामूहीकरण के नियमो मे ढिलाई

सामूहीकरण के फलस्वरूप जो प्रारम्भ मे असन्तोष व्याप्त हुआ और पशुओ का सहार हुआ, उससे स्टालिन व कुछ अन्य नेताओ ने यह अनुभव किया कि जबरदस्ती सामूहीकरण करना उचित नही होगा, अत सामूहीकरण के नियम कुछ ढीले किए गए। सामूहिक फार्मों को भी कुछ सुविधाएँ दी गई। फार्म के सदस्यो को ऋण देने व औद्योगिक सुविधाएँ प्रदान करने मे प्राथमिकता दी गई। सन् 1932 मे फार्मों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे अपनी अतिरिक्त उपज खुले बाजार मे बेच सकें। उत्पादन के प्रमुख साधनो और फर्मों पर बने मकानो को यद्यपि सामूहिक स्वामित्व के अन्तर्गत ही रखा गया लेकिन बगीचो रहने के मकानो, दुधारू पशुओ व मुर्गियो को व्यक्तिगत स्वामित्व के अन्तर्गत ही बने रहने दिया गया।

द्वितीय योजना मे सामूहीकरण का लगभग पूरा होना (Almost Complete Collectivisation during the Second Plan Period)

कृषि के सम्बन्ध मे द्वितीय योजना का प्रमुख उद्देश्य यह रहा कि अब तक जो लाभ प्राप्त हुआ है, उसे सुदृढ बनाया जाए। कृषि के सामूहीकरण आन्दोलन ने द्वितीय योजनाकाल मे पूर्णता प्राप्त कर ली। लगभग 93 प्रतिशत किसानो ने सामूहीकरण पद्धति को अपना लिया और अनाज के कुल उत्पादन का 99 प्रतिशत भाग सामूहिक खेतो मे पैदा किया जाने लगा। कृषि-भूमि का क्षेत्र 1913 में 10 5 करोड हैक्टर था जो 1937 मे 13 5 करोड हैक्टर हो गया। 1913 मे जहाँ किसान 4 8 अरब पूड गल्ला एकत्र करते थे वहाँ 1937 मे यह उत्पादन 6 8अरब पूड हो गया। सभी कुलक और किसान मिलकर जितने गल्ले का वितरण करते थे, 1937 मे उससे 40 करोड पूड अधिक गल्ले का वितरण केवल सामूहिक कृषि द्वारा उत्पन्न गल्ले से किया जाने लगा।

सन् 1935 मे, कृषि सगठन मे समानता, एक रूपता और नियन्त्रण लाने के लिए स्टालिन ने कृषि-आर्टेल के आदर्श नियम (Model Rules of the Agricultural Artel) बनाए। इन नियमो को स्टालिन की महत्ता और दूरदर्शिता का प्रतीक माना जाता है। आर्टेल कृषि सहकारिता की तरह थी। उनके अनुसार केवल मकान, बगीचे और मवेशियो मे निजी स्वामित्व होता था। कृषि औजार, यत्र आदि सामूहिक स्वामित्व के अन्तर्गत थे। कृषि कार्य सामूहिक रूप से किए जाते थे। फसल का वितरण सदस्यो के बीच होता था। आर्टेल की भूमि को राजकीय सम्पत्ति घोषित किया गया जिस पर सभी व्यक्तियो का अधिकार था।

आर्टेल अपने उद्देश्यो की पूर्ति मे काफी सफल रहे। कृषि सम्बन्धी आदर्श नियमों के कारण सामूहिक खेती के सगठन मे काफी सुधार हुए। फलस्वरूप कृषि उत्पादन मे वृद्धि हुई। पशु पालन के क्षेत्र मे अपेक्षित सफलता नही मिली।

अनाज की वसूली की प्रणाली मे भी प्रभावशाली सुधार किए गए। अब प्रति एकड उत्पादन का एक पूर्व निश्चित ही अश वसूली के अन्तर्गत किया जाने लगा। इससे किसानो को अधिक उत्पादन करने मे कोई रुकावट नही रही, साथ ही खुले बाजार मे बेचने की स्वतन्त्रता से उन्ह बहुत राहत मिली। किसान अधिक कार्य करने लगे और उत्पादन काफी बढ गया। वास्तव मे सोवियत अर्थ-व्यवस्था मे सामूहीकरण के सुपरिणाम द्वितीय योजना-काल मे ही प्रकट हो सके और किसानो ने शान्ति व सन्तोष का अनुभव किया। किसानो तथा ग्रामवासियो की आर्थिक स्थिति मे पर्याप्त सुधार हो गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद सामूहीकरण
(Collectivisation after Second Five Year Plan, 1938–1970)

(1) महायुद्ध की समाप्ति तक—सन 1938 मे रूस मे तृतीय पचवर्षीय योजना आरम्भ हुई, लेकिन द्वितीय महायुद्ध के विस्फोट से यह लगभग 3 वर्ष बाद तो स्थगित कर दी गई। सन् 1940 मे स्थिति यह थी कि लगभग 192 लाख कृषक परिवार सामूहीकरण के अन्तगत आ चुके थे। महायुद्ध काल में रूसी कृषि पर बडा प्रतिकूल प्रभाव पडा और सामूहिक खेतो का भारी विनाश हुआ। भारी सख्या मे कृषि-यन्त्र नष्ट हुए और कृषि का औसत उत्पादन 10 करोड टन से घट कर लगभग 5-7 करोड टन ही रह गया।

(2) महायुद्ध के बाद 1950 तक—महायुद्ध काल के बाद कृषि विकास पर पुन ध्यान केन्द्रित किया गया और भारी कठिनाइयो के बावजूद सामूहिक खेतो की सख्या मे तेजी से वृद्धि हुई। 1947 मे सामूहिक खेतो की सख्या लगभग 2 12 लाख थी जो 1950 म लगभग 2 54 लाख तक पहुँच गई। सामूहीकरण के प्रतीक 'एस्टोनिया" (Estonia) मे 1948 मे केवल 47 सामूहिक खेत थे जिनकी सख्या बढ कर 1949 की समाप्ति तक लगभग 3 हजार हो गई। विशेष बात यह थी कि जहाँ महायुद्ध से पूर्व की अवधि म सामूहिक खेतो की सख्या मे वृद्धि सरकारी दबाव के कारण हो रही थी वहाँ अब बिना किसी दबाव के सामूहिक कृषि की लोकप्रियता बढती जा रही थी। 1950 मे स्थिति यह थी कि सामूहिक खेतो के अन्तगत कुल बोए गए क्षेत्र का लगभग 90 प्रतिशत भाग सम्मिलित था। और ये खेत कुल कृषि उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत भाग उत्पन्न कर रहे थे।

(3) 1950 से एकीकरण नीति सन् 1950 से सामूहिक खेतो के सन्दर्भ मे एक सशोधित पद्धति लागू की गई। 1950 से पहले विभिन्न सामूहिक खेतो के आकार मे बहुत अधिक असमानता थी। लगभग 20 प्रतिशत सामूहिक खेतो के पास जहाँ कृषि योग्य भूमि का लगभग 60 प्रतिशत भाग था वहाँ 30 प्रतिशत

सामूहिक खेतों के पास कृषि योग्य भूमि का केवल 6 प्रतिशत भाग ही था। सामूहिक खेतो के आकार की यह विषमता कृषि के विकास मे बाधक थी। अत 1950 से छोटे-छोटे खेतो मे एकीकरण का आन्दोलन सरकारी मशीनरी और साम्यवादी दल द्वारा चलाया गया। छोटे सामूहिक खेतो का ऐच्छिक एकीकरण के लिए भी पूरा दबाव डाला गया। इस एकीकरण-नीति (Amalgamation Pol cy) का सुपरिणाम भी शीघ्र ही निकल आया। 1950 के प्रारम्भ मे मास्को मे सामूहिक खेतो की सख्या लगभग 6,069 से घट कर 1950 के माह जून मे लगभग 1,368 ही रह गई। इसी प्रकार लेनिनग्राड प्रान्त में प्रथम चार माह में ही 2,000 छोटे सामूहिक खेतो को 600 बड़े खेतो में परिवर्तित कर दिया गया। और भी विभिन्न प्रान्तो तथा क्षेत्रो में तेजी से एकीकरण का यह कार्य सम्पन्न हुआ। सामूहिक खेतो के एकीकरण की प्रक्रिया तेजी से चलती रही। जहाँ 1950 मे सामूहिक खेतो की सख्या लगभग 2 54 लाख थी वहाँ सितम्बर, 1953 तक यह सख्या केवल 94,000 ही रह गई न केवल छोटे-छोटे सामूहिक खेतो का वरन् मध्यम आकार के सामूहिक खेतो का भी एकीकरण हुआ। 1953 में ख्रुश्चेव ने अपने एक बयान में बताया कि एकीकरण-नीति के फलस्वरूप प्रत्येक सामूहिक खेत के पास कृषि योग्य भूमि 1,500 एकड से बढ़कर लगभग 4,200 एकड हो गई।

एकीकरण की यह नीति कुछ विशिष्ट कारणो से अपनाई गई थी जो सक्षेप में ये थे— (1) कृषि-यन्त्रो के मितव्ययितापूर्ण उपयोग को बल मिले और उनकी कुशलता में वृद्धि हो, (2) प्रशासनिक व्यय मे कमी आए, (3) पूँजी विनियोग क्षमता बढ़े तथा कुशल विशिष्टीकरण सम्भव हो सके, एव (4) सामूहिक खेतो पर सरकारी तथा दलीय नियन्त्रण मे अधिक मजबूती आए। इन उद्देश्यो की पूर्ति में सफलताएँ मिली, प्रशासनिक समस्याएँ पूर्वापेक्षा अधिक जटिल हो गई। सामूहिक खेतो के आकार में भारी वृद्धि हो जाने से तथा अधिक सख्या मे किसानो के इसकी परिधि मे आने से समन्वय-कार्य अधिकाधिक कठिन होता गया। अधिक बड़े आकार के खेतो के लिए पूर्वापेक्षा अधिक प्रशिक्षित और योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता अनुभव हुई। तकनीकी विशेषज्ञो की नियुक्ति की माँग बढ़ी। यह कहा जाने लगा कि सामूहिक खेतो के अध्यक्ष पद पर कृषको की नियुक्ति न होकर तकनीकी विशेषज्ञो की नियुक्ति होनी चाहिए। इन विभिन्न बाधाओं और समस्याओं के फलस्वरूप एकीकरण की नीति अन्तिम रूप मे अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने में सफल नही हो सकी। लेकिन इससे एकीकरण-नीति का परित्याग नहीं किया गया वरन् सामयिक संशोधनो के साथ वह जारी रही। एकीकरण-नीति के साथ-साथ ख्रुश्चेव ने दो और भी प्रस्ताव रखे—फॉर्म सिटीज का निर्माण प्रस्ताव और निजी व्यक्तिगत छोटे गार्डेन्स को एक जगह रखने का प्रस्ताव। इन दोनो ही प्रस्तावो का दूसरे किसानो द्वारा भारी विरोध हुआ, अत, 1952 की 19वी साम्यवादी पार्टी कांग्रेस मे उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया।

सन् 1950 से सामूहिक कृषि के विस्तार की प्रक्रिया गतिमान रही। रूस

की छठी योजना जो 1956 से 1958 तक चली सामूहिक खेतों में अधिकाधिक मशीनी यन्त्रों की पूर्ति की दिशा में काफी सफल रही।

(4) सातवीं तथा आठवीं योजना में सामूहीकरण तथा वर्तमान स्थिति—सन् 1958–1965 के दौरान सातवीं पंचवर्षीय योजना-काल में सामूहिक कृषि-फार्मों का पुनर्गठन किया गया। छोटी इकाइयों को बड़ी इकाइयों में मिला दिया गया तथा अनेक मशीन ट्रैक्टर-स्टेशन समाप्त करके उनकी मशीनें सामूहिक खेतों को दे दी गईं। सामूहिक एवं राजकीय फार्मों (कोल-खोज) तथा सोव-खोज में एकरूपता लाने के प्रयास किए गए। सामूहिक फार्म-पद्धति को उन्नत बनाने के विभिन्न प्रयास किए गए। उनकी सम्पत्ति में वृद्धि की गई और उनके अविभाजीय कोष का उपयोग बिजली घर, नहर, स्कूल, अनाज भण्डार आदि कार्यों में करने की अनुमति प्रदान की गई। सामूहिक खेतों के राजकीय फार्मों के विलयन को प्रोत्साहन दिया गया। सम्पूर्ण योजना-काल में सामूहीकरण की दिशा के प्रभावी कदम उठाए गए। अपने सम्मिलित रूप में एकीकरण प्रक्रिया जारी रही और सामूहिक खेतों की संख्या 1953 में 94,010 से घट कर 1958 में लगभग 67,700 रह गई। सातवीं योजना की समाप्ति तक अर्थात् 1965 में यह संख्या और गिर कर 36,600 हो गई।

आठवीं योजना (1966–1970) के दौरान भी सामूहिक खेतों के राजकीय फार्मों में विलीनीकरण और छोटे-छोटे सामूहिक खेतों के एकीकरण की प्रक्रिया जारी रही। पुनर्गठित खेतों में अधिकाधिक यन्त्रीकरण और वैज्ञानिक पद्धतियों को प्रोत्साहन दिया गया। जहाँ 1965 में सामूहिक खेतों की संख्या 36,600 थी वहाँ 1969 में यह अनुमानतः लगभग 25,000 ही रह गई। योजना की समाप्ति तक रूस के लगभग सभी कृषक परिवार सामूहिक कृषि के अन्तर्गत आ गए। रूस ने वस्तुतः कृषि-क्षेत्र में भारी प्रगति की। रूस की सामूहीकरण की कृषि-नीति का ही बहुत कुछ परिणाम था कि 1913 की तुलना में 1967 में कृषि-उत्पादन में लगभग 276 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

एकीकरण और विलीनीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप सामूहिक खेतों की संख्या घटकर 1977 में लगभग 23,000 रह गई। 1977 में सामूहिक फार्म कृषकों की कुल आय 24 अरब रूबल से भी अधिक थी। सामूहिक फार्म में एक किसान-परिवार की संयुक्त आमदनी 1965–77 की अवधि में 1.8 गुनी बढ़ गई।

सामूहिक खेतों का स्वरूप एवं संगठन
(Structure and Organisation of Collective Farms)

सामूहिक खेतों को रूस में कोलखोजी (Kolkhozy) कहा जाता है। यह बहुवचन शब्द है। किसी एक सामूहिक खेत को एकवचन में कोलखोज कहते हैं। रूस में सामूहिक कृषि के विकास आदि के विवेचन के उपरान्त यह देखना उचित होगा कि सामूहिक खेतों का स्वरूप एवं संगठन क्या है।

संरचना—जैसाकि हम कह चुके हैं, सामूहिक खेतों अर्थात् कोलखोजी के अन्तर्गत किसान आपस में मिलकर कृषि को अधिक उत्पादक व्यवस्था बना लेते हैं।

इसके लिए वे अपने समस्त साधनो और सम्पूर्ण श्रम-शक्ति को सगठित रूप में सचालित करते हैं। कृषि के सभी प्रसाधनो का स्वामित्व सामूहिक रूप से किया जाता है और यह सभी चीजें अर्थात् मवेशी, भवन, यन्त्र आदि सामूहिक कृषि की सम्पत्ति बन जाती हैं। जिस भूमि पर सामूहिक खेत के सदस्य खेती करते हैं उस पर राज्य का स्वामित्व होता और यह सम्पूर्ण जनता की होती है।

प्रारम्भ मे सामूहिक कृषि मे, निजी सम्पत्ति और निजी स्वामित्व का कोई स्थान नही था पर 1935 मे लागू की गई एक नई व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक सदस्य कृषक परिवार को कुछ व्यक्तिगत उत्पादन की अनुमति भी दी जाती है। उसके पास कुछ मवेशी, छोटे-मोटे औजार और थोडी भूमि (प्राय चौथाई से ढाई एकड तक) रहती है। पर सीमित मात्रा मे इस निजी आय के साथ-साथ सदस्य परिवार सामूहिक कार्य के उत्पादन में अपना भाग यथापूर्व रखता है। दूसरे शब्दो मे, सदस्य कृषक को व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो प्रकार की आय उपलब्ध हो जाती है। इसका उपभोग वह और उसका परिवार स्वेच्छापूर्वक करते हैं। कोई सदस्य यदि कोलखोज अर्थात् सामूहिक खेत से अलग होना चाहे तो उसको उसके द्वारा दी गई भूमि तो वापस नही लौटाई जाती हाँ उसका मूल्य चुकाया जा सकता है।

प्रबन्ध एव अ कार—*सामूहिक फार्म सरचना के अन्तर्गत सदस्यो के अधिकारो* और कर्त्तव्यो को तथा फार्म की क्रियाओ के सगठन व प्रबन्ध के सिद्धान्तो को कृषि आर्टेल के नियमो द्वारा परिभाषित किया जाता है। फार्म के कार्यों को इसके सदस्यों की सामान्य बैठक द्वारा निर्देशित किया जाता है। यह अपना एक प्रबन्ध मण्डल और सभापति चुनती है जिसके द्वारा उत्पादन का प्रबन्ध होता है। कानून सामूहिक फार्म के आधार के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहता। यह स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार भिन्नता रखता है। कुछ क्षेत्रो में कोलखोज अर्थात् सामूहिक खेत छोटे हैं तो कुछ मे बहुत बडे। वर्तमान मे औसतन एक कोलखोज मे 5 हजार से 50 हजार एकड भूमि और सम्मिलित कृषक परिवारो की सख्या 50 से 1,000 होती है।

भूमि-प्रयोग-व्यवस्था—सामूहिक फार्मो को भूमि का प्रयोग आवश्यक रूप से कृषि के लिए करना पडता है। वे भूमि से कोयला, तेल अथवा अन्य कोई महत्त्वपूर्ण खनिज निकालने की क्षमता नही रखते। सामूहिक फार्मों को उनकी भूमि के झील, तालाब या अन्य स्थानो के जल का प्रयोग केवल कृषि-उद्योगो के लिए करने की स्वीकृति होती है। अपनी भूमि के सभी जगलो पर इनका अधिकार होता है और वे इससे प्राप्त लकडी का प्रयोग अपने उपयोग के लिए कर सकते हैं। सिद्धान्त रूप से सामूहिक फार्मों के लिए भूमि निरन्तर प्रयोग हेतु दी जाती है, लेकिन राज्य को अधिकार है कि वह कभी भी औद्योगिक, खनिज अथवा राज्य फार्म की स्थापना के लिए उसे ले ले। ऐसा होने पर सामूहिक फार्मों पर काम करने वाले व्यक्ति राज्य के मजदूर बन जाते हैं।

उत्पादन-साधन तथा उत्पादन-कार्य—कोलखोज अर्थात् सामूहिक फार्म व्यावहारिक रूप से उत्पादन के *समस्त साधनो पर नियन्त्रण रखता है।* प्रत्येक

सामूहिक खेत अथवा कोलखोज के पास उत्पादन-कार्य के लिए बड़े बड़े कृषि-यन्त्रो के अतिरिक्त पशु साधारण उपकरण, फार्म भवन, बीज, पशुओ के लिए आहार, आटा मिलें, अन्य प्रोसेसिंग मशीने आदि साधन होते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, सामूहिक खेत का सदस्य अर्थात् प्रत्येक कोलखोजनीकी (Collective Farmer) अपने निवास-स्थान, उद्यान क औजार, निजी मवेशियो क रहन क स्थान का व्यक्तिगत स्वामित्व कर सकता है, पर एक निश्चित सीमा से अधिक नही।

प्रत्येक सामूहिक खेत को अपना काय-सचालन वार्षिक सचालन योजना (जो समूचे देश के लिए लागू की जाती है) के आधार पर करना होता है। योजना बनाते समय सरकार कृषि कायक्रम और योजना को ध्यान मे रखा जाता है। फार्म या खेत के प्राय सभी कार्य उसके सदस्यो द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। सामूहिक खेत-सम्पत्ति (कोलखोज सम्पत्ति) का सरक्षण, अधिकतम उत्पादन और साधनो का सर्वोत्तम उपयोग किए जाने पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

सामूहिक खेत अर्थात् कोलखोज मे श्रम-सगठन—प्रत्येक सामूहिक खेत पर मजदूर अनेक श्रेणियो या ब्रिगडो मे अपनी सदस्यता सगठित करते हैं। प्राय प्रत्येक ब्रिगेड मे 50 से लेकर 100 सदस्य होते हैं जिन्हे उतने समय तक के लिए काम सौंपा जाता है जब तक फसल का काम चले। ब्रिगेड को अपने कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक पशु, मशीन एव अन्य उपकरण दिए जाते हैं। कभी कभी इन ब्रिग्रेडो को उप-विभागो अर्थात् स्क्वेडो (Squads) मे बाँट दिया जाता है जिन्हे Zveno or Link कहा जाता है। प्रत्येक विभाग मे लगभग 12 से 15 सदस्य होते हैं। प्रत्येक ब्रिगेड मे एक नेता होता है जो निर्धारित कार्य को पूरा करने में ब्रिगेड का नतृत्व अर्थात् सचालन करता है। काम से जी चुराने वालो और कार्य की अवहेलना करने वालो को दण्डित किए जाने की व्यवस्था होती है।

सामूहिक खेत मे मजदूरी की गणना और भुगतान—सामूहिक फार्मो मे श्रम को कार्य-दिवस (Working day) के आधार पर मापा जाता है। कार्य का दिन समय से नही बल्कि कार्य की प्रकृति के अनुसार निर्धारित किया जाता है उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति एक एकड प्याज के खेत की सफाई करे तो उसे आधा दिन के काम का भुगतान दिया जाता है और यदि वह रूई के खेत पर दो एकड भूमि पर काम करे तो उसका काम ढाई दिन का माना जाता है। सन् 1948 के एक सुधार के अनुसार सभी विभिन्न कार्यो को 9 समूहो में वर्गीकृत कर दिया गया है। प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित उत्पादन लक्ष्य होता है।

सामूहिक फार्म प्रणाली मे श्रम का भुगतान सामूहिक फार्मो की सफलता पर निर्भर करता है। फार्म की आय जितनी अधिक होती है, कार्य के दिन की इकाई उतनी अधिक बन जाती है। प्रत्येक सामूहिक किसान अच्छा, अधिक और कुशल कार्य करना चाहता है ताकि सामूहिक फार्मों की उत्पादिकता को बढाया जा सके क्योकि तभी किसान को अधिक आय प्राप्त हो सकती है और उसके परिवार का जीवन स्तर ऊँचा उठ सकता है। सामूहिक फार्म की वार्षिक आय और उत्पादन को एक जटिल

तरीके से काम मे लिया जाता है। जब ये फार्म अपने उत्पादको को वितरित करते हैं तो सबसे पहले ये अपने उत्पादन का एक भाग राज्य को बेचते हैं, उसके बाद कुछ भाग बीज-गोदामो में रखते हैं, मवेशियो के लिए चारे के रूप मे देते है और जिस भाग का वितरण नही किया जाता उसे अक्षम व्यक्तियो के लिए तथा बीमा योजना के लिए धन की व्यवस्था करने मे काम मे लेते हैं।

सामूहिक किसानो की सामान्य बैठक मे निर्णय लेने के बाद उत्पादक का एक भाग सामूहिक फार्म बाजार मे बेच दिया जाता है। सामूहिक फार्मों मे दिन-प्रतिदिन भुगतान के प्राय नए तरीको का प्रयोग किया जाने लगा है। वर्तमान समय मे कृषि आर्टेल के लगभग 80 प्रतिशत भाग द्वारा अपने सामूहिक किसानो को कार्य के दिन के आधार पर मासिक या साप्ताहिक रूप से भुगतान किया जाता है। इसके अतिरिक्त सामूहिक फार्मों की प्राय यह भी सिफारिश की जाती है कि वे व्यक्तिगत किसानों की उच्च उत्पादिकता के लिए अनुपूरक भुगतान करे। यह एक प्रकार से अतिरिक्त भौतिक प्रेरणा है।

उत्पादन का वितरण—सामूहिक फार्म व्यवस्था के अन्तर्गत वार्षिक उत्पादन और वितरण की व्यवस्था जटिल है। सबसे पहला दावा राज्य के भाग का होता है जो कई रूपो मे हो सकता है, जैसे—वस्तु के रूप मे कर। यह समस्त कर फार्म-उत्पादन पर लगाया जाता है। उत्पादित वस्तु का कितना भाग राज्य को दिया जाएगा, इस सम्बन्ध मे राज्य के साथ समझौता कर लिया जाता है जो प्राय 2 वर्ष से लेकर 5 वर्ष तक के लिए होता है लेकिन व्यवहार मे राज्य की क्रय-योजना के अनुरूप समझौतो में वार्षिक समायोजन होता रहता है। राज्य के अतिरिक्त दूसरी सस्था मशीन ट्रैक्टर स्टेशन है जिसके लिए प्रत्येक सामूहिक फार्म को आवश्यक रूप से भुगतान करना पडता है। यह भुगतान उन समस्त मशीनो, वस्तुओ, सेवाओ और परामर्श के लिए होता है जो फार्मो द्वारा प्राप्त किया जाता है। सामूहिक फार्म थोडा बहुत भुगतान सरकार के लिए बीज, ऋणो तथा वस्तु के रूप मे उधार ली गई चीजो के बदले करते हैं। सरकार को किए जाने वाले अधिकांश भुगतान कर के रूप मे होते हैं और कुछ भाग अत्यन्त नीची कीमत पर उत्पादन की खरीददारी के रूप में भी होता है। कुल मिलाकर सामूहिक फार्मों के उत्पादन का 30 से 45 प्रतिशत तक भाग किसी न किसी रूप मे राज्य को मिल जाता है। सरकार की माँग को सन्तुष्ट करने के बाद फार्म उत्पादन के विभिन्न भागो को बीज तथा चारे के लिए रख दिया जाता है। इसके अतिरिक्त भविष्य में फसल असफल होने की स्थिति का सामना करने के लिए तथा वृद्धो व अपाहिजो को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी उपज का कुछ भाग रखा जाता है।

इन सब भुगतानो को करने के बाद जो शेष बचता है वह सामूहिक फार्म के सदस्यो के बीच वितरित किया जाता है। सदस्यो को, कार्य के दिनो के आधार पर उनका यह भुगतान किया जाता है। सभी सदस्यो के वर्ष भर के कार्य के दिनो का

योग लगाकर उत्पादन में उनका भाग देकर यह मालूम कर लिया जाता है कि प्रत्येक प्रकार के उत्पादन के लिए कार्य के दिन का कितना भुगतान किया जाए।

आय का वितरण—आय का वितरण भी इसी प्रकार किया जाता है। वर्ष के अन्त में सामूहिक फार्म अपनी मौद्रिक आय वितरित करते हैं। प्रथम भुगतान राज्य के लिए आयकर के रूप मे किया जाता है। यह वर्ष में चार बार होता है। अन्तिम किश्त आय 1 दिसम्बर को ली जाती है जो वर्ष के कुल-कर का लगभग 14 प्रतिशत होती है। कर की मात्रा छोट रूप मे कुल आय का लगभग 14 प्रतिशत होती है। दूसरा भुगतान राज्य बीमा के लिए किया जाता है जो सभी औजारों, साधनो और उत्पादनो से सम्बन्ध रखता है।

मौद्रिक आय का प्रयोग सामूहिक फार्म द्वारा उस भुगतान के लिए किया जाता है जो बाहर से ली गई श्रम-सेवाओ और वस्तुओ के लिए किया जाना है। शेष मौद्रिक आय सामूहिक फार्म के सदस्यो के बीच उनके काम के दिनो की सख्या के अनुपात मे वितरित कर दी जाती है।

सामूहिक खेत अर्थात् कोलखोज का सरकार से सम्बन्ध—प्रत्येक सामूहिक फार्म (कोलखोज) यद्यपि अपने आप मे काफी स्वतन्त्रता का उपभोग करता है, लेकिन यह स्वतन्त्रता सरकारी और दलीय नियन्त्रण से पूरी तरह प्रभावित होती है। प्रत्येक कोलखोज की फसल-योजना (Crop-plan) राज्य द्वारा बनाई जाती है तथा प्रत्येक वस्तु का उत्पादन लक्ष्य भी राज्य द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। उत्पादक वस्तु का कितना भाग राज्य को दिया जाएगा इस सम्बन्ध में राज्य के साथ समझौता होता है जिसमें राज्य की इच्छा ही व्यावहारिक रूप मे बाध्यकारी होती है। राज्य की क्रय-योजना के अनुरूप समझौतो में वार्षिक समायोजन होता रहता है। कोलखोज पर सभी यान्त्रिक कृषि-कार्य राजकीय ट्रैक्टर स्टेशनो द्वारा किया जाता है। बदले मे प्रत्येक सामूहिक फार्म को आवश्यक रूप से भुगतान करना पडता है। अब यद्यपि बहुत से मशीन ट्रैक्टर स्टेशनो के उपकरण सामूहिक फार्मों को बेच दिए गए हैं तथा अनेक स्टेशन केवल मरम्मत-स्टेशनो के रूप मे रह गए हैं। सामूहिक फार्मों द्वारा सरकार से बीज, ऋण आदि लेने के बदले भी काफी भुगतान किया जाता है। जैसा कि कहा जा चुका है, सरकार को किए जाने वाले अधिकांश भुगतान कर के रूप में होते हैं और कुछ भाग अत्यन्त नीची कीमत पर उत्पादन की खरीददारी के रूप में भी होता है।

रूस में राज्य फार्म और सामूहिक फार्म

मास्को के इर्दगिर्द कई राज्य फार्म हैं, उनमे मास्कोव्स्की भी एक है। ये कृषि प्रतिष्ठान राजधानी के लिए जिसकी आबादी अस्सी लाख है, डेरी उत्पादन, सब्जियाँ, माँस, बेरी, अण्डों और यहाँ तक कि फूलो की भी पूर्ति करते हैं।

मास्कोव्स्की फार्म सब्जियाँ उगाने मे माहिर हैं। यह मास्को को सालभर ककड़ियो, सलाद और टमाटरो की पूर्ति करता है। अक्तूबर से मई तक काचघरो में सब्जियाँ उगायी जाती हैं। इसके अलावा फार्म में पशुशाला, फूल उगाने के लिए काचघर, कुकुरमुत्ता बागान और बेरी उगाने के खेत हैं।

फार्म मे सभी उत्पादन प्रक्रियाएँ अत्यधिक यन्त्रीकृत है। यहाँ गायो और बछडो के लिए प्रत्येक शेड मे चारा जमा रखने की विशेष सुविधाएँ हैं।

मास्को स्की देश के बडे राज्य फार्मों मे है तथा कांचघर मे पौधा उगाने में विशेषज्ञता हाँसिल कर रहा है। सोवियत सघ मे 19,636 राज्य फार्म हैं। उनमे हर एक विशाल प्रतिष्ठान है तथा उनके पास औसतन 6000 हैक्टर जोत लायक जमीन, 55 ट्रैक्टर, 18 कम्बाइन हार्वेस्टर और 25 ट्रक हैं। 1976 मे राज्य ने जितने परिमाण मे कुल कृषि उत्पादन खरीदा उसमे उसने 51 प्रतिशत मवेशी, 45 प्रतिशत दूध, 56 प्रतिशत ऊन और 87 प्रतिशत अण्डे इन्ही प्रतिष्ठानो से खरीदे।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने जमीन पर का निजी स्वामित्व खत्म कर दिया। 1917 के पहले दो प्रतिशत भूस्वामी जिसमें भूमिपति भद्र लोग, मठ और पूँजीपति शामिल थे, 60 प्रतिशत जमीन हथियाये हुए थे। जनसत्ता की घोषणा के तत्काल बाद किसानो को 15 करोड हैक्टर से अधिक जमीन मिली। यह किसानो के बीच बाँटी गई ताकि हर एक को अपने परिवार का भरण-पोषण करने का अवसर मिले। किन्तु कई अत्यधिक यन्त्रीकृत और समृद्ध फार्म थे जिनका विभाजन अनुचित होता। इसी कारण लेनिन की भूमि सम्बन्धी आज्ञप्ति मे यह परिकल्पित है कि उन फार्मों के आधार पर आदर्श कृषि प्रतिष्ठान स्थापित किये जाने चाहिए और उन्हे राज्य को अथवा कृषक समुदायो को सौंप देना चाहिए।

प्रथम राज्य फार्म की स्थापना सोवियत राज्य के कायम होने के प्रथम महीने मे, नवम्बर 1917 में हुई। इस प्रकार के प्रतिष्ठान शीघ्र सोवखोज के रूप मे यानी वह फार्म जिसका स्वामी सोवियत हो, सर्वत्र विख्यात हुए।

अपने 60 वर्ष के जीवन काल मे राज्य फार्मों ने लम्बा रास्ता तय किया है। किन्तु उनके कार्यकलाप को निर्देशित करने वाले बुनियादी सिद्धान्त एक ही रहे हैं। भवन और सरचनाएँ, मशीनें, बीज के भण्डार, मवेशी और राज्य फार्म के औजार के साथ ही वह हर चीज राज्य की है जिसका वे उत्पादन करते हैं। स्वामित्व का एक और रूप है, वह है सामूहिक स्वामित्व। राज्य फार्मों के प्रधान मैनेजर होते हैं जिन्हे राज्य नियुक्त करता है जबकि सामूहिक फार्म का प्रबन्ध-सचालन सामूहिक फार्म के किसानो की ग्राम सभा द्वारा निर्वाचित बोर्ड करता है। सामूहिक फार्म के किसानो को अपने फार्म की आय का हिस्सा मिलता है जबकि राज्य फार्म के किसानो की राज्य द्वारा नियुक्त औद्योगिक मजदूरो की हैसियत होती है। वह वेतन पाता है तथा उसे वे सारी सुविधाएँ प्राप्त हैं जो शहरी मजदूर को मिलती हैं जिनमें काम के निश्चित घण्टे, छुट्टियाँ आदि शामिल हैं और शहरी मजदूरो के समान ही वह दक्षता उन्नत करता है तथा नयी प्रविधि मे पारगतता हाँसिल करता है। राज्य फार्म की बस्तियो मे सारे देश मे स्कूल, किन्डरगार्टेन, बाहरी रोगियो का इलाज करने वाले क्लिनिक, अस्पताल, सामुदायिक केन्द्र, सार्वजनिक सेवाएँ, स्टेडियम, काफे रेस्तरा, और खाते वैसे ही हैं जैसे नगरो मे होते हैं, किन्तु कुछ अन्तर होते हैं। यह गणना की गयी है कि चूँकि राज्य फार्मों के खाद्य उत्पादो की कीमत नगरो की

अपेक्षा कम होती है, इसलिए यदि केवल केन्टीनो, काफे और स्नेक-बार के जरिये बेची जाने वाली वस्तुओं की भी गणना की जाए तो सामान्यतया राज्य फार्म के मजदूरो ने वेतन मे कुल 9 करोड 55 लाख रूबल की प्रतिवर्ष स्वत 'वृद्धि' हासिल कर ली है।

इसके अलावा, सामान्यतया कृषि मजदूरो के पास जमीन का एक टुकडा होता है हालाकि उसके पास नौ मंजिला इमारत मे फ्लैट है पर वह उस जमीन मे अपनी पसन्द की चीज उगा सकता है और जिस प्रकार चाहे उसे बेच सकता है।

आइए, हम अब सामूहिक और राज्य फार्म के सम्बन्धो की पडताल करें। सामूहिक फार्मों को व्यावसायिक माल उत्पादित करने के अलावा यह कार्यभार दिया गया कि वे "प्रगतिशील, विज्ञान सम्मत रूप से प्रबन्धित, उच्च कार्यकुशलता और श्रम उत्पादकता के आर्थिक रूप से लाभदायक सामाजिक उत्पादन के नमूने के रूप मे काम करें।"

राज्य फार्म सामूहिक फार्मों की नयी विधियाँ और प्राविधिक प्रक्रियाएँ विकसित करने, बीज का भण्डार मुहैया करने और पशु प्रजनन उन्नत करने मे मदद करते हैं। राज्य फार्म नयी प्रविधि के लिए "परीक्षण स्थल" का काम करते हैं। जहाँ तक विक्रय, कमियो के प्रशिक्षण, निर्माण सामग्रियों और फार्म मशीनो के वितरण और ऐसे अन्य प्रश्नो का सम्बन्ध है, जो प्रकटतया विवाद को जन्म दे सकते हैं, तो उन सभी का निर्धारण राज्य योजनाओं द्वारा किया जाता है। इस सिलसिले मे उल्लेखनीय बात यह है कि राज्य और सामूहिक फार्म भी ऐसी योजनाओं का प्रारूप तैयार करने मे भाग लेते हैं।[1]

—

1 सोवियत भूमि, 1978

4

सन् 1954 से सोवियत कृषि-विकास

(Soviet Agricultural Development Since 1954)

रूस मे कृषि-क्षेत्र में सामूहीकरण के तात्कालिक परिणाम भले ही विशेष सन्तोषजनक नही निकले, लेकिन आगे चल कर इसके कारण सोवियत रूस कृषि के क्षेत्र मे *उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल कर सका। सन् 1953 तक रूस ने* कृषि के क्षेत्र मे काफी प्रगति की, लेकिन प्रधानता औद्योगिक क्षेत्र को ही दी गई। सन 1951 से 1955 तक जो पांचवीं पचवर्षीय योजना क्रियान्वित की गई, उसमें कृषि की स्थिति सन्तोषजनक नही रही। योजना के प्रथम तीन वर्षों मे कृषि-उत्पादन बढ़ने की अपेक्षा घट गया। मवेशियो की संख्या भी कम हो गई। अनाज के उत्पादन में केवल तीन या चार प्रतिशत की वृद्धि हुई। मवेशियो की सख्या कम होने से दूध और मांस की स्थिति दयनीय हो गई। चुकन्दर और कपास के उत्पादन मे भी नाममात्र की वृद्धि हुई। फ्लेक्स का उत्पादन तो बहुत ही घट गया।

इन सब कमियो के कारण कृषि उद्योग के विकास को अधिक महत्त्व देना आवश्यक हो गया। सन् 1953 में स्टालिन की मृत्यु हो गई। स्टालिन का दृष्टिकोण कृषि विकास पर उतना महत्त्वपूर्ण नही था जितना औद्योगिक विकास पर। स्टालिन की मृत्यु के बाद रूस के नए नेतृत्व ने कृषि क्षेत्र पर विशेष ध्यान देना आवश्यक समझा। अत सन् 1954 से ही कृषि विकास के लिए विभिन्न नए कदम उठाए जाने लगे। इसी कारण रूस कृषि विकास के इतिहास मे सन् 1954 से उसे एक नए युग का श्रीगणेश माना जाता है और 1954 से रूसी कृषि विकास विशेष अध्ययन का पात्र है।

सन् 1954 से रूसी कृषि-विकास

स्टालिन के उपरान्त साम्यवादी दल ने सन् 1954 में कृषि-विकास के लिए प्रभावकारी कदम उठाए। लगभग साढे तीन लाख युवको को बजर भूमि को आबाद *करने के कार्य मे नियोजित किया गया। लगभग दो लाख ट्रैक्टरो की सहायता से* दो वर्षों की अल्प-अवधि में ही 33 मिलियन हैक्टर भूमि को कृषि योग्य बना दिया गया। परिणाम-स्वरूप पांचवी पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्षो मे कृषि-उत्पादन मे वृद्धि हो गई और मवेशियो की सख्या भी बढ गई। कृषि का यन्त्रीकरण बडे पैमाने

पर आरम्भ किया गया। अत पैदावार 100 से 129 प्रतिशत तक बढ गई। इस प्रकार कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र मे पाँचवी योजना की प्रगति सन्तोषजनक बन गई।

छठी पचवर्षीय योजना के दौरान कृषि (1956–1960)

छठी योजना मे स्वाभावत कृषि के विकास को विशेष महत्त्व दिया गया। कृषि की दृष्टि से योजना का उद्देश्य यह रखा गया कि कृषि-उत्पादन म तीव्र गति से वृद्धि की जाए और इस हेतु लगभग 3 करोड हैक्टर नई पडत भूमि का उपयोग किया जाए। साथ ही कृषि और यातायात के क्षेत्रो में विद्युत-शक्ति का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए। कुल मिलाकर कृषि-उत्पादन मे 38 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। योजना काल में कृषि-उत्पादन बढाने के लिए सरकार ने सामूहिक कृषि फार्मों को 15 लाख 50 हजार ट्रैक्टर और 5 लाख 60 हजार ग्रेन कम्बाइन देने का निश्चय किया। छठी योजना मे कुल मिला कर 990 मिलियर्ड रूबल अर्थात् 9 लाख 90 हजार कराड रूबल व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया जिसमे से 120 मिलियर्ड रूबल कृषि विकास पर व्यय किए जाने थे।

छठी योजना अवधि मे कृषि-क्षेत्र मे इतनी प्रगति की गई कि पिछली योजनाओ मे शायद ही कृषि मे कभी इतनी प्रगति की जा सकी हो। इस याजना मे 3 करोड हैक्टर नई भूमि को कृषि योग्य बना कर 150 करोड पूड अनाज उत्पन्न किया गया, सैकडो की सख्या मे नए-नए राजकीय फार्म स्थापित किए गए, लेकिन यह सब कुछ लक्ष्य से नीचे था। अनाज का उत्पादन बढाकर 1960 तक 18 करोड टन करने का आयोजन था जो नही हो सका। कपास के उत्पादन में 56 प्रतिशत और ऊन के उत्पादन मे 82 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य रखे गए थे जो प्राप्त नही हो सके, लेकिन फिर भी कृषि क्षेत्र मे जो उत्पादन हुआ वह निराशाजनक नहीं था। लक्ष्यो को प्राप्त इसलिए नही किया जा सका कि वे अव्यावहारिक और बहुत ऊँचे थे। यदि अन्य योजनाओ से कृषि के विकास की तुलना की जाए तो छठी योजना की अवधि मे कृषि विकास में जितनी प्रगति हुई, उतनी शायद ही अन्य योजनाओ मे हुई हो।

सातवी सप्तवर्षीय योजना मे कृषि (1959–1965)

छठी योजना की अवधि यद्यपि 1956 से 1960 तक की थी, लेकिन यह अवधि इस दृष्टि से पूर्ण नही हुई कि 1958 के अन्त मे ही इसे समाप्त करके एक नई सप्तवर्षीय योजना के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया। सप्तवर्षीय योजना का समय 1959 से 1956 तक का रखा गया। छठी योजना के अन्तिम दो वर्ष इसी योजना में शामिल कर दिए गए। यह सप्तवर्षीय योजना भी रूस की एक दीर्घकालीन आर्थिक विकास की योजना का अ ग कही जा सकती है। रूस ने 1960 से 1980 तक के लिए एक 20 वर्षीय योजना की घोषणा की है। अत इसी सप्तवर्षीय योजना को इसी 20 वर्षीय योजना का एक अग समझा जाना चाहिए।

कृषि की दृष्टि से सप्तवर्षीय योजना का उद्देश्य यह रखा गया कि कृषि के सभी क्षेत्रो मे विकास किया जाए ताकि अधिक भोजन और कच्चे माल की पूर्ति की

जा सके। यह लक्ष्य रखा गया कि दूध का उत्पादन लगभग दुगुना, और रूई का उत्पादन 35 प्रतिशत से 45 प्रतिशत से भी अधिक किया जाए। चुकन्दर व पटसन मे 32 प्रतिशत और तिलहन मे 70 प्रतिशत की वृद्धि की जाए। फलो की पैदावार दुगुनी की जाए तथा अगूर की पैदावार लगभग चौगुनी की जाए। आलू की फसल को 1965 तक 14 करोड 70 लाख टन कर दिया जाए। खाद्य-उत्पादन मे कुल मिला कर लगभग 70 प्रतिशत वृद्धि का आयोजन किया गया। यह निश्चित किया गया कि सप्तवर्षीय योजना के बाद प्रतिवर्ष दस अरब से लेकर ग्यारह अरब पूड अनाज पैदा किया जा सके।

सप्तवर्षीय योजना मे जहाँ कृषि-उत्पादन मे 70 प्रतिशत वृद्धि की सम्भावना थी वहाँ वृद्धि केवल 10 प्रतिशत की हुई। मार्च, 1965 मे सोवियत साम्यवादी दल के प्रथम सचिव श्री ब्रेजनेव ने स्वीकार किया कि कृषि-उत्पादन की वार्षिक दर बहुत ही कम रही है और सोवियत सघ को बडी मात्रा मे विदेशो से अनाज का आयात करना पडा है। योजना काल मे कृषि-वस्तुओ के मूल्यो का निर्धारण और नियन्त्रण भी असन्तोषजनक रहा। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कृषि क्षेत्र मे सातवी योजना असफल रही, जिसके कारण रूसी नेताओ मे मत-भेद भी हो गए और भावी योजना मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने पडे। कृषि-क्षेत्र मे असफलता को मिटाने के लिए 1965–1970 की योजनाओ में कृषि-उत्पादन पर भरसक बल दिया गया।

बीस वर्षीय योजना (1961–81) मे कृषि

सातवी सप्तवर्षीय योजना आरम्भ होने के दो वर्ष बाद ही अक्तूबर, 1961 मे साम्यवादी दल की 22वी काग्रेस मे आर्थिक विकास का 20 वर्षीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। इस 20 वर्षीय योजना मे कृषि उत्पादन मे साढे तीन गुना, दुग्ध उत्पादन में तीन गुना और खाद्यान्नो मे दो गुना वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। निम्न तालिका यह प्रदर्शित करती है कि बीस वर्षीय योजना मे कृषि कार्यक्रम के अन्तर्गत 1980 तक का उत्पादन लक्ष्य रखा गया —

कृषि पदार्थों का उत्पादन (1960–1980)

मदें	1960	1970	1980
अनाज (10 लाख टन)	134	230	210
दूध (लाख टन)	61 7	1·5	170–180
मास (लाख टन)	8 7	29	30–32
अण्डे (अरब)	27 4	68	110–116
ऊन (000 टन)	357	800	1045–1055
आलू (लाख टन)	84 4	140	156
चुकन्दर (लाख टन)	57 7	86	98–108
सब्जी (लाख टन)	19 2	47	55
फल (लाख टन)	4 9	28	51
कपास (लाख टन)	4 3	8	10–11

विकास क्षेत्र	1965	1970	1975
1. औद्योगिक उत्पादन का विकास (प्रतिशत)	100	150	213-219
2. विद्युत उत्पादन (हजार मि. किलोवाट)	507	740	1030-1070
3. तेल का उत्पादन (मि. टन)	243	353	480-500
4 गैस का उत्पादन (हजार मि. क्यू. मीटर)	129	200	300-320
5. इस्पात का उत्पादन (मि. टन)	91	116	142-150
6. फुटकर व्यापार टर्नओवर का विकास (प्रतिशत)	100	148	207
7. गृह-निर्माण (मि. स्क्वायर मीटर फ्लोर स्पेस)	490·6 (1961-65)	518 (1966-70)	565-575 (1971-75)
8. मांस (औसत वार्षिक) उत्पादन (मि. टन)	9 3 (1961-65)	11·6 (1966-70)	14·3 (1971-75)
9. अनाज (औसत वार्षिक) उत्पादन (मि. टन)	130·3 (1961-65)	167·5 (1966-70)	195·0 (1971-75)
10. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का विकास (प्रतिशत)	100	133	173
11. राष्ट्रीय आय का विकास (प्रतिशत)	100	141	193-196
12 विशेषज्ञों की ट्रेनिंग (मिलियन)	4·3 (1961-65)	7 1 (1966-70)	9·0 (1971-75)

इन आंकडो से स्पष्ट है कि 1975 तक सोवियत रूस आर्थिक प्रगति की बहुत ही उच्च स्थिति में पहुँच गया। रूस की द्रुत औद्योगिक प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ 1913 से 1970 की अवधि में अमेरिका के औद्योगिक उत्पादन मे आठ गुना, फ्रांस मे तीन गुना, पश्चिमी जर्मनी में पांच गुना और ब्रिटेन में तीन गुना वृद्धि हुई वहाँ इसी अवधि मे सोवियत संघ में लगभग अस्सी गुना वृद्धि हुई। 1971-75 की नवीं पचवर्षीय योजना मे ही औद्योगिक उत्पादन मे लगभग 46 प्रतिशत वृद्धि हुई। सोवियत संघ ने औद्योगिक क्षेत्र में इतनी प्रगति की

है कि सम्पूर्ण विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का 20 प्रतिशत से भी अधिक भाग अकेला वह उत्पन्न करता है। सोवियत सघ मे प्रति वर्ष 520 से 540 अरब रूबल मूल्य का औद्योगिक माल उत्पादित किया जाता है। सोवियत सघ में औद्योगिक उद्योगो की शाखाएँ 300 से भी अधिक हैं जिनमे विपुल धन राशि नियोजित है। 1913 में रूस का औद्योगिक उत्पादन विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का केवल 4 प्रतिशत ही था। 1913 मे रूस का औद्योगिक उत्पादन सयुक्त राज्य अमेरिका के औद्योगिक उत्पादन का लगभग 12 से 13 प्रतिशत था जो अब बढकर 65 से 70 प्रतिशत हो गया है। 1960 से 1968 की अवधि मे ही रूस की औद्योगिक उत्पादन मे लगभग 95 प्रतिशत वृद्धि हुई। 1960 मे लगभग 155 अरब रूबल मूल्य का औद्योगिक उत्पादन हुआ जबकि 1968 म लगभग 32 हजार करोड मूल्य का। यद्यपि रूस औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से अभी भी अमेरिका से पीछे है, लेकिन रूस का दावा है कि बीस वर्षीय कार्यक्रम की समाप्ति तक अर्थात 1980 तक वह अमेरिका के समकक्ष हो जावेगा। रूस ने अनेक वस्तुओ के उत्पादन मे तो चमत्कारिक प्रगति की है उदाहरणार्थ कोयले का उत्पादन 1913 में लगभग 3 करोड टन से बढ कर 1977 में लगभग 720 करोड टन हो गया। इस्पात 1913 में लगभग 4 मिलियन टन से कुछ ही अधिक था जो बढ कर 1977 मे 150 मिलियन टन को स्पर्श करने लगा। खनिज तेल का उत्पादन 1913 मे लगभग 9 मिलियन टन हुआ था जो बढ कर 1917 में लगभग 5000 मिलियन टन तक पहुँच गया। रूस की आठवीं योजना (1966 70) की तुलना म नवी योजना काल (1971 75) में औद्योगिक उत्पादन में 60 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई। जहाँ 1970 मे लगभग 375 अरब रूबल मूल्य का औद्योगिक उत्पादन हुआ था 1977 में 500 अरब रूबल से भी अधिक हुआ। दसवी पचवर्षीय योजना (1976 80) की अवधि में औद्योगिक उत्पादन मे 35 से 40 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है और श्रम उत्पादकता मे भी 30 से 35 प्रतिशत वृद्धि होने की पूरी सम्भावना है। दसवीं योजना काल मे पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत और उपभोक्ता माल में लगभग 30 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है। यह आशा की गई है कि 1980 तक औद्योगिक उत्पादन का मूल्य 690 से 725 अरब रूबल तक पहुँच सकता है। विद्युत शक्ति का उत्पादन 1960 मे लगभग 290 अरब किलोवाट हुआ जो 1980 तक लगभग 1830 अरब किलोवाट हो जाने की आशा है।

सोवियत रूस ने नि सन्देह बडी तेजी से औद्योगिक प्रगति की है। 1960 से 1980 तक के लिए एक 20 वर्षीय कार्यक्रम बनाया गया है (वर्तमान पचवर्षीय योजनाएँ उसी का अग हैं) जिसके अनुसार वह न केवल औद्योगिक क्षेत्र में ही वरन अन्य क्षेत्रो में भी ससार का राष्ट्र नम्बर एक बन जाने की आशा करता है। सन् 1960 से 1980 तक उसने औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन के जो लक्ष्य रखे हैं वे निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकेंगे—

औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन (*1960-80*)

मदें	1960	1970	1980
कुल औद्योगिक उत्पादन (मिलियर्ड रूबल)	155	408	970-1000
पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन (मिलियर्ड रूबल)	105	287	720-740
उपभोग पदार्थ (मिलियर्ड रूबल)	50	121	250-260
विद्युत शक्ति (मिलियर्ड किलोवाट)	292	900-1000	2700-3000
इस्पात (मिलियन टन)	65	145	250
तेल (मिलियन टन)	148	390	390-710
गैस (हजार लाख क्यू. मी)	47	310-385	680-720
कोयला (मिलियन टन)	513	700	1180-1200
सीमेंट (मिलियन टन)	45 5	122	233-235
सूती वस्त्र (मिलियर्ड वर्ग मीटर)	6·6	13 6	20-22
चमड़े के जूते (मिलियन जोड़े)	419	829	900-1000
घरेलू मशीनी सामान (मिलियर्ड रूबल)	5 9	18	60
कृत्रिम और सिंथेटिक वस्त्र (मिलियन टन)	0 2	8·35	31-33

रूस की इस 20 वर्षीय योजना मे 1966 से 1980 तक की पचवर्षीय योजनाएँ भी सम्मिलित हैं। इसके पहले की सप्तवर्षीय योजना को भी इसी बीस वर्षीय योजना का एक अग समझना चाहिए। रूसी नेताओं द्वारा यह आशा की गई है कि इस 20 वर्षीय कार्यक्रम के सफल सम्पादन के बाद रूस में पूर्णतः साम्यवादी समाज की स्थापना होने मे काफी सहायता मिलेगी।

तीव्र औद्योगीकरण की समस्याएं

(Problems of Rapid Industrialization)

सोवियत रूस ने जो औद्योगिक प्रगति की है वह निश्चय ही बहुत उत्साह-वर्द्धक है। तीव्र औद्योगीकरण के जिन लक्ष्यों का निर्धारण रूस ने किया है वे उसकी पहुँच से सर्वथा बाहर हो, यह कहना भी भ्रामक होगा। लेकिन रूस औद्योगीकरण की दिशा मे वांछित गति से तब तक नही बढ सकता जब तक कि इस मार्ग मे उपस्थित कुछ आधारभूत समस्याओं को हल न कर लिया जाए। रूसी आर्थिक सरचना मौलिक रूप में कुछ ऐसे दोषो और समस्याओ को छिपाए हुए हैं जिन्हे दूर

किए बिना रूस के भावी लक्ष्य महत्वाकांक्षी सिद्ध हो सकते हैं। रूसी औद्योगीकरण के और अर्थ-व्यवस्था के अनेक ऐसे पहलू हैं जो आधारभूत रूप से उतने ठोस नहीं हैं जितने प्राय बाहर से दिखाई देते हैं। अत हमे देखना चाहिए कि रूस के तीव्र औद्योगीकरण से सम्बन्धित कौन-सी प्रमुख समस्याएँ मौजूद हैं ? ये सभी समस्याएँ एक-दूसरे से जुडी हैं तथापि विषय की स्पष्टता की दृष्टि से उन्हे अलग-अलग व्यक्त करना उपयुक्त होगा—

(1) सोवियत रूस मे पूर्णत राज्य-नियन्त्रित और केन्द्रीयकृत अर्थ-व्यवस्था है। वहाँ उत्पादन के लक्ष्यो, उत्पादित की जाने वाली वस्तुओ आदि का निर्धारण राज्य द्वारा होता है। इस प्रकार उत्पादको के हितो को प्रमुखता नही दी जाती। उत्पादको को, मुक्त अर्थ-व्यवस्था की भाति, इस बात का कोई उत्साह नहीं रहता कि वे कम से कम लागत पर अपनी इच्छानुसार वस्तुओ का उत्पादन करें। उत्पादन क्षेत्र मे आधारभूत रूप से उत्साह की कमी रहने के फलस्वरूप औद्योगिक प्रगति उतनी ठोस नही हो पाती जितनी मुक्त अर्थ-व्यवस्था मे होना सम्भव है।

(2) सोवियत अर्थ-व्यवस्था मे कम से कम लागत-उत्पाद (Least Cost-out put) सम्भव नही है क्योकि एक पूर्ण प्रतियोगितामय मुक्त अर्थ-व्यवस्था की तुलना मे श्रमिको को अधिक भुगतान करना पडता है जिससे वस्तुओ की उत्पादन-लागत अधिक बैठती है और फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के क्षेत्र मे वे वस्तुएँ सुगमता से बाजार नही छीन सकती। यह स्थिति भी रूस के तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग मे बाधक है।

(3) सोवियत अर्थ-व्यवस्था में कीमत यन्त्र (Price-mechanism) प्रभावशील नहीं रहता। कीमत-यन्त्र का प्रभावशील न रहना तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग मे विभिन्न समस्याएँ पैदा करता है।

(4) सोवियत रूस में पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन पर ही अधिकाधिक ध्यान दिया जाता है जबकि उपभोक्ता-वस्तुओ की प्राय उपेक्षा की जाती है। इस प्रकार आम जनता मे निराशा और असतोष का वातावरण पनपता है जो परोक्ष रूप मे तीव्र औद्योगीकरण के लिए बडा घातक है।

(5) एक बडी समस्या यह है कि रूस की औद्योगिक योजनाओ मे प्राय उत्पादन की मात्रा (The Quantity of out put), लागतो मे प्रतिशत कमी (Percentage Reduction in Costs) अथवा श्रम-उत्पादकता मे प्रतिशत वृद्धि (Percentage increase in Labour–Productivity) में लक्ष्यो का निर्धारण कर दिया जाता है और इन लक्ष्यो की प्राप्ति को ही सफलता का सूचक माना जाता है। लेकिन इस प्रक्रिया मे जो अन्तर्निहित दोष विद्यमान हैं, उनकी प्राय उपेक्षा कर दी जाती है या हो जाती है, उदाहरण के लिए हम 'उत्पादन की मात्रा' (The Quantity of out put) को ही लें। योजना प्राय पूर्व सफलताओ पर आधारित होती है जिसमे 'प्रतिशत वृद्धि' (Percentage Increase) जोड दी जाती है। सम्बन्धित औद्योगिक सस्थान अथवा कारखाने व अधिकारीगण इसी बात के लिए

प्रयत्नशील रहते हैं कि निर्धारित मात्रा या उससे अधिक मात्रा में वस्तु का उत्पादन निश्चित या उससे कम अवधि में कर दिखाया जाए। ऐसा करने में उनका ध्यान वस्तु की गुणात्मक वृद्धि पर बहुत कम अथवा नगण्य रहता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु का उत्पादन टनों में निर्धारित कर दिया गया है तो सम्बन्धित संस्थानों व व्यवस्थापकों का प्रयत्न यही रहता है कि निर्धारित टनों का लक्ष्य पूरा कर दिया जाए, चाहे वस्तु गुणात्मक दृष्टि से कमजोर हो अथवा राष्ट्र के लिए आवश्यक, उस वस्तु का एक ही प्रकार निकाल दिया जाए, उसके विभिन्न प्रकारों के उत्पादन की परवाह न की जाए। इस प्रकार यदि किसी फैक्ट्री को सीमेंट ब्लाक बनाने को कहा गया हो तो वह बड़े-बड़े ब्लाक बनाना अधिक पसन्द करेगी ताकि टनों के रूप में निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति की जा सके। वह इस बात का ध्यान नहीं रखेगी कि जिन इमारतों का निर्माण-कार्य चल रहा है उसमें छोटे सीमेंट ब्लाकों की कमी से गतिरोध पैदा हो जाएगा। इस स्थिति को 'कोकोडिल' (Krokodil) नामक हास्य-पत्र ने एक कार्टून के रूप में चित्रित किया था जिसमें एक फैक्ट्री ने अपने पूरे महिने की कीलों के उत्पादन-कार्यक्रम को एक ही विशालकाय कील बना कर पूरा कर दिखाया था, क्योंकि उत्पादन-मात्रा टनों में ही दिखानी थी।

स्पष्ट है कि इस प्रकार की स्थिति तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। सोवियत रूस में हाल ही के वर्षों में सुधार की नई तकनीकें अपनाई जा रही हैं—और सम्भव है कि इस समस्या पर शीघ्र ही काबू पा लिया जाए।

(6) सोवियत रूस में तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा वहाँ के राजनीतिक ढाँचे की है जो अत्यधिक केन्द्रीयकरण प्रस्तुत करता है। योजना, उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य नीतियों आदि का निर्धारण सर्वोच्च-स्तर पर होता है और यदि किसी विनियोग-नीति या तकनीकी तरीके में कोई परिवर्तन करना होता है तो भी निम्न अधिकारियों को उच्च अधिकारियों और उन उच्च अधिकारियों को अपने से उच्चतर अधिकारियों का मुख देखना पड़ता है। सर्वोच्च शिखर पर सम्बन्धित अधिकारीगण प्रायः इतने व्यस्त रहते हैं कि वे समय पर आवश्यक निर्णय नहीं ले पाते। प्रायः निर्णय तभी लिया जाता है जब नीति के नुकसान उसे अनिवार्य बना दें। इस प्रकार की स्थिति तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग में एक गम्भीर बाधा है। फैक्ट्रियाँ, कारखाने तथा अन्य उत्पादक संस्थान उत्पादन और उससे सम्बन्धित मामलों में प्रायः असमञ्जस की स्थिति में पड़े रहते हैं क्योंकि वे आवश्यकता और समयानुसार अपनी निर्णायक बुद्धि से काम नहीं ले सकते।

(7) सोवियत रूस में प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में 'अभियान-बाजी' (Compaignology) का बोलबाला है। औद्योगिक क्षेत्र में यह दिखावटी अभियान-बाजी कई बार फलदायक सिद्ध नहीं होती। पहले तो उत्पादन ऊँचे-ऊँचे लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते हैं और तब उन्हें पूरा करने के लिए इतने जोर-शोर से अभियान कार्यक्रम चलाया जाता है कि उत्पादन कार्य से सम्बन्धित अधिकारियों व

व्यवस्थापको को यह भय पैदा हो जाता है कि यदि लक्ष्यों को पूरा नहीं किया गया तो जनता के सामने उन्हें लज्जित होना पड़ेगा, साम्यवादी दल का कोप-भाजन बनना पड़ेगा और प्रशासकीय अधिकारियों की नाराजगी का फल चखना पड़ेगा। नतीजा यह होता है कि वे किसी न किसी प्रकार उत्पादन लक्ष्यों को पूरा करने की कोशिश करते हैं और इस प्रक्रिया में औद्योगिक असतुलन पैदा हो जाता है तथा अव्यवस्था भी फैल जाती है। जब चाह कर भी महत्त्वाकांक्षी लक्ष्यों को पूरा करने में असमर्थता रहती है तो उच्च स्तरीय अधिकारी अपनी भूल को सुधारने के लिए एक नया अभियान (Compaign) शुरू कर देते हैं। पहले की असफलताओं का दोष इधर-उधर सरकार और कई बार निरापराधियों के माथे डाल कर शीर्षस्थ अधिकारी अपनी नई अभियान-बाजी से जनता को गुमराह करने की कोशिश करते हैं। लक्ष्यों को बढ़ा-चढ़ाकर पुन दिखाया जाता है और पिछली प्राप्तियों का भी विवरण प्रकट नहीं किया जाता है। इस प्रकार की कार्यवाइयों से नियोजन और औद्योगिक व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होती है। यह स्थिति प्राय तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग में सहायक नहीं होती।

(8) सोवियत रूस के तीव्र और ठोस औद्योगीकरण के मार्ग में लम्बी छलांगों (Big leaps) और औद्योगिक उत्पादन-वृद्धि के 'युद्ध कार्यक्रमों' ने भी बाधा पहुँचाई है। एक ही साथ आर्थिक छलांगें लगा कर बढ़ जाने की महत्त्वाकांक्षा में प्राय नियोजन गड़बड़ा जाता है, साधनों का आवंटन कुशलतापूर्वक नहीं हो पाता, उत्पादन-वृद्धि की झोंक में बाजार माँग पर समुचित ध्यान नहीं रह पाता और बड़ी मात्रा में साधन व शक्ति की बरबादी हो जाती है। प्रगति की रफ्तार में सन्तुलन नहीं रह पाता और एक क्षेत्र का पिछड़ापन अन्य क्षेत्रों पर भी प्रभाव डालता है या कुल मिलाकर उनकी उपलब्धियों के महत्त्व को कम कर देता है। यदि इतनी ही अवधि में विवेकपूर्ण ढंग से औद्योगिक नीतियों का संचालन किया जाए तो बिना साधनों और शक्ति की भारी बरबादी किए निर्धारित लक्ष्यों को अधिक अच्छे ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

(9) तीव्र औद्योगीकरण के लिए यह आवश्यक है कि देश में यातायात साधनों का जाल बिछा हो और औद्योगिक क्षेत्र देश भर में विकेन्द्रित हों ताकि उन्हें स्थानीय लाभों से वंचित न होना पड़े। सोवियत रूस में रेलों का विस्तार अभी भी पर्याप्त नहीं है और उसमें काफी विस्तार की गुन्जाइश है। औद्योगिक क्षेत्रों का विकेन्द्रीकरण बहुत कुछ यातायात के साधनों के विकास पर ही निर्भर करता है। यद्यपि इस समस्या को काफी हल कर लिया गया है, किन्तु अमेरिका आदि देशों का मुकाबला करने के लिए अभी इस क्षेत्र में बहुत गुन्जाइश बाकी है।

(10) सोवियत रूस औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में अभी तक तेजी से इसलिए भी प्रगति कर सका था क्योंकि सोवियत जनता से जीवन-स्तर की कीमत पर और उनकी इच्छा के बलिदान पर केवल पूँजीगत माल के उत्पादन पर ही अधिकाधिक जोर दिया जाता रहा था। लेकिन अब, विशेषकर 1960 के बाद से ही,

सोवियत जनता की बढती हुई माँगो का दमन करना पहले जैसा आसान नही रहा। 1928 मे पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने के बाद से ही सोवियत जनता ने जो भारी कठिनाइयाँ सही हैं और जो अभूतपूर्व बलिदान किए हैं, उनके बाद अब यह स्वाभाविक है कि वह समुचित उपभोक्ता वस्तुओं और सुविधाओं की माँग करे। अत अब सोवियत सरकार को खाद्यान्न पदार्थों, गृह निर्माण और विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की ओर काफी ध्यान देना होगा जिससे तीव्र औद्योगीकरण की गति का मन्द होना सम्भव है।

(11) तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग मे एक बडी समस्या कुशल श्रम-शक्ति की कमी की है। पहले सोवियत सरकार ने लाखो बेकार लोगों को देहाती क्षेत्रो मे बुला कर औद्योगिक उत्पादन मे लगा दिया था। किन्तु अब देहाती क्षेत्रो से बडी सख्या मे लोगो का औद्योगीकरण क्षेत्रो मे आगमन आसान नही रहा है। दूसरी ओर सयुक्त राज्य अमेरिका मे जिस प्रकार तकनीकी और कुशल श्रम की बहुलता है, वैसी बहुलता रूस में आज भी नहीं है। यह स्थिति भी औद्योगीकरण की दिशा मे बाधक है। यद्यपि रूस श्रम-उत्पादकता में वृद्धि करके समस्या पर काबू पाने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु श्रम शक्ति की कमी केवल इसी से नही मिटाई जा सकती।

(12) कृषि क्षेत्र का पिछडापन सोवियत औद्योगीकरण पर अपना कुप्रभाव डालता रहा है। रूस की अधिकांश योजनाएँ कृषि क्षेत्र में असफलता की कहानी है। अत जब तक कृषि क्षेत्र पूर्णत उन्नत नही होगा तब तक कच्चे माल के अभाव मे और आर्थिक व्यवस्था मे असतुलन आदि के कारण तीव्र औद्योगीकरण का मार्ग समस्याग्रस्त ही रहेगा। इसी तथ्य को समझते हुए सोवियत रूस मे विगत कुछ वर्षो से कृषि क्षेत्र पर काफी बल दिया जाने लगा है। 8वी योजना की भी सबसे बडी विशेषता यही है कि उपभोग वस्तुओं की उत्पादन दर मे वृद्धि के साथ ही साथ कृषि उद्योग और उत्पादन साधनो की उत्पादन दरो में तेजी से वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया।

(13) सोवियत रूस मे जनसख्या तेजी से बढ रही है। निरन्तर बढती हुई जनसख्या की विविध आवश्यकताओ की पूर्ति की समस्या भी रूसी औद्योगीकरण की गति को धीमा कर सकती है।

अन्त मे, यही कहना होगा कि तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग मे सोवियत रूस के समक्ष काफी विकट समस्याएँ मौजूद हैं जिनका यथाशीघ्र निवारण करना होगा। इस दिशा में आवश्यक कदम और सुधार कार्यक्रम पिछले कुछ वर्षो से निरन्तर उठाए जा रहे हैं। पर भारी कठिनाई यह है कि विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक कारणो से एक साथ सुधार कार्यक्रम लागू नही किए जाने और टुकडों-टुकडो मे इन्हें लागू करने से औद्योगिक व आर्थिक क्षेत्र मे असतुलन तथा अन्य गडबडी की स्थिति पैदा हो जाती है। फिर भी रूस ने जो औद्योगिक प्रगति की है वह कम आश्चर्यजनक नही है। विभिन्न बाधाओं, क्षतियों और भूलो के बावजूद सोवियत रूस औद्योगिक क्षेत्र मे आगे बढता जा रहा है और यदि वह तीव्र औद्योगीकरण के अपने भावी लक्ष्यो में सफल हो जाए तो विशेष आश्चर्य की बात नहीं होगी।

(14) यद्यपि सोवियत संघ ने उत्पादन की वैज्ञानिक और तकनीकी विधियो मे अनेक सुधार किए हैं तथापि अमेरिका और कई पाश्चात्य देशो की तुलना मे इस क्षेत्र मे वह अभी पीछे है।

(15) संयुक्त राज्य अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन आदि की तुलना मे सोवियत संघ मे आज भी अत्यधिक कौशल प्राविधिक श्रमिको का अभाव है। यद्यपि प्रशिक्षण व्यवस्था का यथा शक्ति प्रसार किया जा रहा है लेकिन वह अभी अपेक्षित स्तर और आकार की नही है। रूसी श्रमिको की उत्पादन क्षमता अमेरिका के औद्योगिक श्रमिको की क्षमता की तुलना मे बहुत कम है।

(16) रूस का औद्योगिक क्षेत्र कच्चे माल के अभाव से पीडित है। औद्योगीकरण मे पूरक और सहयोगी उद्योगो का आनुपातिक विकास नही हो पाया है और सीमन्ट कागज गैस लोहा ईंटो आदि की पूर्ति लक्ष्यो से कम रही है। उत्पादन विधियो के निम्न प्राविधिक स्तर कुशल प्राविधिक श्रमिको की कमी श्रमिको की उत्पादन क्षमता मे कमी आदि के कारण रूस की औद्योगिक उत्पादन लागत अधिक है अत रूसी औद्योगिक वस्तुए विदेशी बाजारो मे प्रतिस्पर्द्धा मे पिछड जाती है।

ऊपर जो समस्याएँ गिनायी गई हैं उनमे से अधिकाश ऐसी हैं जिनका रूस को प्रारम्भिक कुछ दशको मे भारी सामना करना पडा था किन्तु बाद मे उनका बहुत कुछ समाधान कर लिया गया यद्यपि वे पूरी तरह समाप्त नही हुई। कुछ समस्याए ऐसी हैं जिनसे रूस आज भी काफी पीडित है। किन्तु सोवियत जनता अपनी कमियो को मिटाने के लिए कृत सकल्प है। तीव्र औद्योगीकरण के मार्ग मे उपस्थित विकट समस्याओ से रूस सफलतापूर्वक जूझ रहा है और वर्तमान दशक मे सुधार के कार्यक्रमो का काफी अच्छा नतीजा निकला है। भारी कठिनाई यह है कि विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक कारणो से एक साथ सुधार कार्यक्रम लागू नहीं किये जाते और टुकडा टुकडो मे इन्हे लागू करने से औद्योगिक व आर्थिक क्षेत्र मे असतुलन तथा अन्य गडबडी की स्थिति पैदा हो जाती है। फिर भी रूस ने जो औद्योगिक प्रगति की है वह कम आश्चर्यजनक नही है। विभिन्न बाधाओ क्षतियो और भूलो के बावजूद सोवियत रूस औद्योगिक क्षेत्र में आगे बढता जा रहा है और यदि वह तीव्र औद्योगीकरण के अपने भावी लक्ष्यो मे सफल हो जाए तो विशेष आश्चर्य की बात नही होगी।

6
नियोजन और आर्थिक विकास में आधुनिक प्रवृत्तियाँ
(Recent Trends in Planning & Economic Development)

हम देख चुके हैं कि सोवियत रूस वर्तमान आर्थिक उन्नति के शिखर पर नियोजन के मार्ग द्वारा पहुँचा है। पिछले लगभग 50 वर्षों मे नियोजन-पद्धति द्वारा रूस ने आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रो मे आश्चर्यजनक उन्नति की है। प्रो० डॉब के शब्दो मे 'यथेच्छाचारिता' (Laissez Faire) की परिस्थितियो के विपरीत एक राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के पथ-प्रदर्शन और नियन्त्रण मे पिछड़े हुए देश (रूस) ने व्यापक और अद्वितीय औद्योगिक प्रगति की है। इससे वह एशिया के देशो के भावी औद्योगिक विकास के लिए आदर्श बन गया है। सोवियत प्रशासको ने नियोजन पद्धति का वैज्ञानिक ज्ञान अपनी भूलो, त्रुटियो और उनकी खोज तथा उनके सुधार के उपाय से प्राप्त किया है। रूस में आज विकसित नियोजन पद्धति का जो आधुनिक स्वरूप दिखाई देता है वह "परीक्षण के प्रयोग-सुधार" का प्रतिफल है। इसीलिए सोवियत नियोजन विधि "गत्यात्मक (Dynamic) है, न कि स्थिर (Static)।" परिवर्तनशील परिस्थितियो और विचारो के अनुरूप ढलने की उसमे क्षमता है। वह समय के साथ आज तक अपने मे आवश्यक सुधार करता रहा है। लचीलेपन और अनुशासन की अपनी विशेषता को उसने कभी नही त्यागा। इसी नियोजन पद्धति के बल पर रूस आर्थिक विकास की दिशा मे अग्रसर होता रहा है और 1980 तक ससार के समृद्धतम राष्ट्र सयुक्त राज्य अमेरिका से भी आगे निकल जाने या उसके समकक्ष हो जाने का दावा करने लगा है।

सोवियत रूस के आर्थिक विकास की रूपरेखा का चित्रण पिछले विभिन्न अध्यायो मे किया जा चुका है। हम यह भी देख चुके हैं कि सन् 1928 के बाद निरन्तर पचवर्षीय, सप्तवर्षीय आदि योजनाओ को अपनाकर रूस ने इतनी आर्थिक प्रगति की। प्रस्तुत अध्याय मे हमारा विषय-क्षेत्र केवल यह देखने तक सीमित है कि सोवियत नियोजन और आर्थिक विकास की आधुनिक प्रवृत्तियाँ क्या हैं। पर इन प्रवृत्तियो का अध्ययन करते समय यह तर्क नही भूलना चाहिए कि सोवियत रूस की सभी आर्थिक-राजनीतिक गतिविधियाँ "लौह आवरण" (Iron Curtain) मे

छायी रहती है। इसीलिए प्राय निश्चित रूप से यह कहना कठिन होता है कि सोवियत रूस में नियोजन व आर्थिक विकास की दृष्टि किन प्रवृत्तियों को पूरी तरह अपनाया जा चुका है अथवा किन्ह अपनाने का पूर्ण निश्चय कर लिया गया है अथवा उनके सम्बन्ध मे मतभेदो की खाई कितनी चौडी है।

नियोजन के क्षेत्र मे आधुनिक प्रवृत्तियाँ
(Recent Trends in Planning)

सोवियत रूस मे आर्थिक नियोजन का यथार्थ रूप से सूत्रपात 1928 की प्रथम पचवर्षीय योजना से हुआ था। इसके बाद रूस निरन्तर झटके खाते हुए भी, तेजी से आर्थिक विकास करता गया और आज वह विश्व के सर्वांग रूपेण उन्नत राष्ट्र सयुक्तराज्य अमेरिका को भी चुनौती देने लगा है। नियोजन और आर्थिक विकास की इस यात्रा मे समय-समय पर रूस ने अनेक परिवर्तन किए है। इस सम्पूर्ण अवधि मे नई नई प्रवृत्तियाँ पनपती रही है। फिर भी आधुनिक प्रवृत्तियो का लेखा जोखा मुख्यत रूस के सर्वेसर्वा मार्शल स्टालिन की मार्च, 1953 मे मृत्यु के बाद से माना जाना चाहिए। स्टालिन की मृत्यु स रूस मे एक ऐसे युग की समाप्ति हुई जो आज की अपेक्षा बहुत कम उदारवादी था। स्टालिन के युग मे यह सभव न था कि रूस नियोजन और आर्थिक विकास के क्षेत्र मे पूँजीवादी तत्त्वो तथा प्रवृत्तियो का प्रोत्साहन देता तथा केन्द्रीकरण को क्रमश शिथिल करते हुए विकेन्द्रीकरण की तरफ अग्रसर होता। पर स्टालिन की मृत्यु के उपरान्त रूस मे जो नया नेतृत्व कायम हुआ, उसने क्रमश अनेक नई प्रवृत्तियो का मार्ग प्रशस्त किया।

1956–57 तक नियोजन प्रणाली

सोवियत रूस मे नियोजन के क्षेत्र मे जो आधुनिक प्रवृत्तियाँ दिखाई दी हैं, उनका वर्णन करने से पूर्व यह उपयुक्त होगा कि पृष्ठभूमि के रूप मे 1956–57 तक की नियोजन प्रणाली को सक्षेप मे जान लिया जाए।

रूस मे नियोजन का वास्तविक सूत्रपात 1928 की प्रथम पचवर्षीय योजना से हुआ। योजनाओ के निर्माण और निर्देशन का भार गोसप्लान आयोग तथा वेसेन्खा (सर्वोच्च आर्थिक परिषद्) पर था। 1929 30 मे गोसप्लान और वेसेन्खा के सगठन मे आवश्यक परिवर्तन किए गए। सन् 1932 मे वेसेन्खा का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर तीन औद्योगिक लोक मत्रालय (People's Commissariats or Ministries) स्थापित किए गए जिनकी सख्या 1946 48 मे 32 तक पहुँच गई। स्टालिन की मृत्यु के बाद उनकी सख्या घटा कर 11 कर दी गई, लेकिन 1953 से यह सख्या पुन बढने लगी और 1956 मे 31 हो गई।

गोसप्लान के कार्यो और उत्तरदायित्वो मे भी समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किए जाते रहे। सन् 1948 49 मे गोसप्लान का पुनर्सगठन किया गया और उसका नाम राजकीय योजना आयोग (State Planning Commission) के स्थान पर राजकीय योजना समिति (State Planning Committee) रख दिया

गया। गोसप्लान का सामग्री वितरण और विभाजन का कार्य हटा लिया गया। उसके टेकनिकल एव केन्द्रीय साँख्यिकीय विभाग को भी उससे पृथक् कर दिया गया। इन विभागो को मत्रिपरिषद् की समितियो के रूप मे सगठित किया गया। स्पष्ट है कि गोसप्लान की स्टालिन की मृत्यु तक यही स्थिति बनी रही। स्टालिन के बाद गोसप्लान का फिर पुनर्संगठन हुआ और उसे वे सब अधिकार वापिस सौंप दिए गए जो 1948 से पहले उसके पास थे। केवल साँख्यिकीय विभाग मत्रिपरिषद् का अग बना रहा।

चू कि गोसप्लान अल्पकालीन और दीर्घकालीन योजनाओ के निर्माण का उत्तरदायित्व ठीक ढग से नही निभा पाया था, अत अब उसके दो भाग कर दिए गए—(i) राजकीय योजना आयोग अथवा गोसप्लान, तथा (ii) राजकीय आर्थिक आयोग (State Economic Commission)। योजना आयोग पर दीर्घकालीन योजनाएँ बनाने का और आर्थिक आयोग पर चालू योजनाएँ (Current Planning) बनाने का भार डाला गया। तकनीकी विभाग भी एक पृथक् सस्था के रूप मे कार्य करने लगा। इसके प्रमुख कार्य नवीन तकनीकी विधियो को खोजने और प्रयोग में लाने का रखा गया। सन् 1956 तक योजना सम्बन्धी समस्त कार्य इन आयोगो व समितियो द्वारा किए जाते रहे, किन्तु सन् 1956 के अन्त में योजना प्रणाली की सम्पूर्ण विधि मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए गए। दिसम्बर, 1956 में अर्थात् छठी पचवर्षीय योजना (1956-60) के प्रारम्भिक वर्ष मे ही गोसप्लान का एक बार फिर पुनर्संगठन किया गया। गोसप्लान के कर्मचारियो मे परिवर्तन किए गए। सभी आर्थिक मत्रालयो को आर्थिक परिषदो के अधीन बना दिया गया। इन मत्रालयो के आर्थिक मत्री परिषद् के उप सभापति नियुक्त किए गए। पर इन सब परिवर्तनो के बावजूद गोसप्लान की आधारभूत स्थिति पहले ही के समान बनी रही। केवल चालू आर्थिक मामले ही आर्थिक परिषद् के साथ मे केन्द्रित हुए।

ख्रुश्चेव युग और बाद मे लाए गए परिवर्तन

सन् 1957 मे तत्कालीन प्रधान मत्री श्री ख्रुश्चेव ने नियोजन प्रणाली मे कुछ क्रान्तिकारी सुधारो का सूत्रपात किया और तब से ही सोवियत नियोजन पद्धति तथा सगठन अनेक नए-नए परिवर्तनो से गुजर रहा है। सक्षेप मे ये इस प्रकार है—

(1) उद्योगो के प्रबन्ध मे केन्द्रीकरण तथा दुहरी व तिहरी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समाप्त करके प्रत्यक क्षेत्र मे समन्वित आर्थिक प्रशासन कायम करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है।

(2) आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति का सूत्रपात हुआ। इसी दृष्टि से 1957 के बाद रूस को 104 आर्थिक प्रशासनिक इकाइयो मे बाँटा गया तथा प्रत्येक इकाई के लिए एक आर्थिक परिषद् की स्थापना की गई। 1960 मे कानून पास करके गणराज्यो में आर्थिक परिषद कायम की गई ताकि ये विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो मे समन्वय स्थापित कर सके। इस नए परिवर्तन के फलस्वरूप सोवियत अर्थ व्यवस्था के केन्द्रीय प्रशासन के साथ-साथ गणराज्यो को भी पर्याप्त अवसर मिल

गया कि वे अपनी स्थानीय समस्याओ के निराकरण के लिए आगे आ सके। आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दिशा मे यह एक अच्छा कदम था।

(3) उपरोक्त व्यवस्था मे पुन परिवर्तन लाया गया। सन् 1964 मे ख्रुश्चेव के सत्ता-च्युत हो जाने के बाद नए प्रधान मन्त्री कोसिगिन ने क्षेत्रीय आर्थिक परिषदो को समाप्त कर दिया। यह प्रवृत्ति ठीक नही समझी गई कि पृथक्-पृथक् क्षेत्रीय आर्थिक प्रशासन को प्रोत्साहन मिले। अब पुन केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ने बल पकडा। धीरे-धीरे केन्द्रीय आर्थिक मत्रालयो की स्थापना कर दी गई और आर्थिक प्रशासन का उत्तरदायित्व पुन उन पर आ पडा। 1957 मे क्षेत्रीय आर्थिक परिषदो को और 1960 मे गणराज्यो की आर्थिक परिषदो को जो अधिकार दिए गए थे वे पुन केन्द्रीय आर्थिक मंत्रालयो को सौप दिए गए। इस प्रकार आर्थिक प्रशासन मे विकेन्द्रीकरण की जो प्रवृत्ति और व्यवस्था घर करने लगी थी उसे समाप्त उद्योगो के प्रशासन मे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को फिर से थोप दिया गया।

(4) अब यह भय पैदा हुआ कि कही पृथक् औद्योगिक और उत्पादक इकाइयो के प्रबन्धको की प्रबन्ध सम्बन्धी स्वतन्त्रता केन्द्रीकृत नौकरशाही की शिकार न बन जाए अत स्थानीय प्रबन्ध और उत्पादन में विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था प्रारम्भ की गई। कोसिगिन प्रशासन ने एक ओर तो आर्थिक-प्रशासन का केन्द्रीयकरण किया और दूसरी ओर विभिन्न उपक्रमो के स्थानीय प्रबन्ध मे विकेन्द्रीकरण का समावेश किया। इस प्रकार नियोजन के क्षेत्र मे केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ साथ-साथ प्रकट हुई। स्थानीय प्रबन्धको को अधिक स्वतन्त्रता दी गई ताकि वे उनके अधीन इकाइयो के प्रबन्ध मे कुशलता ला सकें।

(5) उपक्रमो की सफलता के निर्धारण की कसौटी भी बदल दी गई। अब प्रवृत्ति यह रही कि उपक्रमो की सफलता का निर्धारण उत्पादन के आकार के साथ-साथ उत्पादित माल की श्रेष्ठ किस्म और लाभदायकता के आधार पर किया जाए। स्पष्ट है कि जहाँ पहले प्रवृत्ति उत्पादन के आकार को प्रधानता देने की थी वहाँ अब माल की किस्म और लाभदायकता पर भी बल दिया जाने लगा।

(6) स्थानीय प्रबन्ध और उत्पादन मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ने अधिक जोर पकडा। स्थानीय प्रबन्धको को इस बारे मे अधिक स्वतन्त्रता दी जाने लगी कि वे उत्पादन की प्रक्रिया मे तकनीकी सुधार लाएँ कच्चे माल की प्राप्ति का प्रयत्न करें, मजदूरो के वेतनमानो का निर्धारण करें और उपभोक्ताओ की माँग के अनुरूप माल उत्पादित करें अथवा माल के प्रकारो मे परिवर्तन लाएँ।

(7) विकेन्द्रीकरण की उपरोक्त प्रवृत्ति को अप्रतिबन्धित नही छोडा गया। इस बात की पूर्ण व्यवस्था की गई कि विनियोगो के आकार के निर्धारण साधनो के आवटन एव उत्पादन के आकार-प्रकार के निर्धारण से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयो और कार्यो का दायित्व केन्द्रीय मत्रालयो पर ही रहे। वर्तमान प्रवृत्ति भी पूरी तरह यही है कि पूर्ण केन्द्रीकरण के नियन्त्रण में आंशिक विकेन्द्रीकरण लाने का प्रयास किया जा रहा है।

(8) वर्तमान नियोजन पद्धति की एक अन्य पद्धति प्रत्येक उपक्रम के लाभपूर्ण सचालन की है। जो उपक्रम घाटे में चलते हो उन्हें सरकारी अनुदान प्राय नहीं दिया जाता। इस यथार्थवादी प्रकृति के सतोषजनक परिणाम निकले हैं क्योंकि औद्योगिक उत्पादन इकाइयो से लाभ बढे हैं। प्रत्येक औद्योगिक इकाई को यह प्रेरणा मिली है कि अपने विकास के लिए आवश्यक पूँजी स्वय अपने साधनो से जुटाए तथा लाभ का एक अ श राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से सरकार को दे। पहले आर्थिक नियोजन तथा सरकारी खर्च के लिए आवश्यक साधनो को प्राय अप्रत्यक्ष करो द्वारा जुटाया जाने की प्रवृत्ति थी जबकि अब यह है कि सरकारी उपक्रमो द्वारा अर्जित लाभ से आर्थिक विकास की आवश्यकताओ की पूर्ति की जाए।

स्पष्ट है कि सोवियत नियोजन में स्टालिन युग की तुलना में अनेक नए परिवर्तन हुए हैं और नई-नई प्रवृत्तियाँ पनपती जा रही हैं। वर्तमान नियोजन विश्व की तेजी से बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो के अधिक अनुकूल है।

नियोजन के क्षेत्र में योजना आयोग के स्वरूप और ढाँचे को भी बदल दिया गया है। यद्यपि योजना आयोग की सरचना का नियोजन की प्रवृत्तियो से विशेष सम्बन्ध नहीं है तथापि प्रसगवश उसे जान लेना अधिक उपयोगी होगा। रूस में वर्तमान आर्थिक नियोजन का संगठन दो स्तरो पर है—केन्द्रीय स्तर पर एव राज्य स्तर पर। दोनो स्तरो पर सगठन की रूपरेखा यह है—

(क) केन्द्रीय स्तर पर पार्टी कांग्रेस
(At Central Level) सर्वोच्च सोवियत
केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल
(i) केन्द्रीय योजना आयोग (Gosplan)
(ii) सर्वोच्च आर्थिक परिषद्
(Supreme Economic Council)
(iii) विशिष्ट राज्य समिति
(Special State Committee)
(iv) केन्द्रीय सांख्यिकी मण्डल
(Central Statistical Board)

(ख) राज्य स्तर पर
(At State Level) राज्य मन्त्रिमडल
(i) राज्य योजना आयोग
(Union Republican Gosplans)
(ii) क्षेत्रीय नियोजन समितियाँ
(Regional Planning Committees)
(iii) जिला नियोजन समितियाँ
(District Planning Committees)

(iv) विभागीय समितियाँ
(Departmental Committees)
(v) औद्योगिक इकाइयो के नियोजन विभाग
(Planning Departments of Industrial Units)
(vi) फार्म प्रबन्ध मण्डल
(Farm Management Boards)
(vii) श्रम सघ समितियाँ
(Trade Union Committees)

सोवियत रूस एक सघात्मक राज्य है जिसमे सघ और राज्य के कार्य क्षेत्र निर्धारित हैं। राज्य मे दो प्रकार की योजनाएँ (Projects) कार्यान्वित की जाती हैं—केन्द्रीय योजना एव राज्य सरकार की योजनाएँ। राज्य सरकार द्वारा जो अपनी योजनाएँ बनाई जाती है वे न केवल अपनी आवश्यकताओ और साधनो के अनुरूप होती हैं वरन् केन्द्र के सामान्य निर्देशन का भी उनमे पूरा ध्यान रखा जाता है। देश के विभिन्न राज्यो की जो योजनाएँ होती है उन्हे गोसप्लान आवश्यक परिवर्तनो सहित एकीकृत करता है और इस तरह सम्पूर्ण देश के लिए एक योज्ना बनाता है।

योजना निर्माण मे चार सगठन बडे प्रमुख भाग लेते हैं—गोसप्लान, विशिष्ट राज्य समिति केन्द्रीय सांख्यिकीय मडल और सर्वोच्च आर्थिक परिषद्। गोसप्लान तो देश की प्रमुख योजना सस्था है। साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति और सरकार द्वारा निर्देशित कार्यक्रमो व उद्देश्यो का पूरा ध्यान रखते हुए सम्पूर्ण देश के लिए यह आयोग (Commission) योज्ना तैयार करता है। योजना पद्धति मे सुधार करना भी इसका प्रमुख कार्य है। राज्यो के जो योजना आयोग होते हैं वे इसी केन्द्रीय योजना आयोग के अधीन होते हैं। विशिष्ट राज्य समितियाँ उन आवश्यक वस्तुओ और प्राविधिक आवश्यकताओ की पूर्ति करती है जिनकी योजनाओ को क्रियान्वित करने की जरूरत होती है। केन्द्रीय सांख्यिकीय मण्डल का प्रधान कार्य सही आकडे एकत्र करना है। देश के विभिन्न भागो मे स्थित कम्प्यूटर सेन्टर्स (Computor Centres) इसी मण्डल के अधीनस्थ कार्य करते हैं। इस मण्डल का काय इतना व्यवस्थित होता है कि किसी भी प्रमुख वस्तु के उत्पादन के सम्बन्ध मे आवश्यक आँकड यह तीन दिन की अल्पावधि मे ही प्राप्त कर सकता है। सर्वोच्च आर्थिक परिषद् केन्द्रीय सरकार के निर्देशन मे कार्य करती है। इसके प्रमुख कार्य केन्द्रीय योजना आयोग (Gosplan) राजकीय भवन समिति (USSR State Building Committee Gosstore) तथा राज्य परिषद् के कार्यों म समन्वय स्थापित करना है। सर्वोच्च आर्थिक परिषद् ही उद्योगो व निर्माण कार्यों, विभिन्न मन्त्रालयो, समितियो आदि को आवश्यक निर्देशन देती है। रूस मे इस परिषद का लगभग वही स्थान है जो भारत मे राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् का है। यह भी स्मरणीय है कि सोवियत रूस मे नियोजनो के निर्माण मे श्रम-सघ भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

सोवियत संघ में योजना की अवधारणा और कार्यान्वयन (1978)

सोवियत संघ में योजना की अवधारणा क्या है और योजना कार्यान्वयन कैसे होता है इस पर 1978 के उत्तरार्द्ध में एक सोवियत लेखक ने जो प्रकाश डाला है, उससे हमें नवीनतम जानकारी प्राप्त होती है—

"योजना सोवियत जीवन पद्धति का अभिन्न अंग बन गयी है और योजनाएँ सामान्यतया हमारी आकांक्षाओं और उपलब्धियों का मापदण्ड है। हमारा आर्थिक विकास स्वतः स्फूर्त नहीं है। हम निश्चित रूप से जानते हैं कि कहाँ और कब, क्या चीज बनायी जाने वाली अथवा पुनर्निर्मित की जाने वाली है। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि 1978 में कितने जोड़े जूते, कितनी डिब्बा बन्द खाद्य सामग्रियाँ या ट्रांजिस्टरों का उत्पादन होगा, उन्हें कहाँ बेचा जायेगा और उनके दाम क्या होंगे। हम योजना के अनुसार काम करते हैं।

नियोजन की प्रक्रिया समझने के लिए आइए हम सब इस बात का विश्लेषण करें कि 1977 की योजना किस प्रकार तैयार की गयी थी।

सबसे पहले इसकी जरूरत होती है कि निर्णायक, मुख्य लक्ष्य निर्धारित किये जायें। उदाहरण के लिए बिजली को लें। 1977 के लिए इसका लक्ष्य था 11 खरब 60 अरब किलोवाट घंटा। इसलिए यह पता लगाना आवश्यक था कि मौजूदा बिजलीघर किस हद तक उत्पादन की अपनी क्षमताएँ बढ़ा सकते हैं और उस वर्ष कितने नये बिजलीघर चालू करने की आवश्यकता होगी और सही-सही उनकी जरूरत किस समय होगी, बिजलीघरों को ईंधन और फालतू पुर्जों की अबाधित रूप में पूर्ति सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में स्थिति क्या थी और क्या उपभोक्ता बढ़े हुए उत्पादित माल का उपयोग करने की स्थिति में थे? हर सैक्टर में इसी प्रकार की गणनाएँ की जाती हैं और वे सर्वदा सरल नहीं होती।

इस विराट प्रक्रिया के पहले चरण का प्रारम्भ प्रत्येक आर्थिक सैक्टर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से होता है जो आवश्यक तखमीना लगाने के बाद पेश किया जाता है, इसके बाद सैक्टर से सम्बन्धित नियोजन निकाय रिपोर्ट करते हैं कि यदि उन सैक्टरों को अमुक पदार्थ, अमुक परिमाण में मिले तो सम्बन्धित सैक्टर अमुक मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं।

दूसरे चरण में प्रारम्भिक तखमीनों का और विभिन्न सैक्टरों द्वारा प्रस्तुत योजना के प्रारूपों का तालमेल बिठाया जाता है। आर्थिक शब्दावली में इसे मुख्य उत्पादों के उत्पादन और उपभोग में सतुलन करना कहते हैं। सारणी के एक पक्ष में अपेक्षित ससाधनों को सूचीबद्ध किया जाता है और अनुरोधों को दूसरे में। अनुरोध हमेशा अपेक्षित ससाधनों से अधिक होता है, इसलिए सन्तुलन आवश्यक है। अर्थ-शास्त्री उन अवसरों की तलाश करने में अत्यधिक परिश्रम करते हैं, जिनसे कि उत्पादन बढ़ाया जाये ताकि निर्माण सामग्रियों और उपकरण के आवश्यक ससाधन, और निसन्देह, वित्त के स्रोत खोजे जायें। स्वभावतया वे कुछ बचाने के अवसर के लिए अपनी आँखें खुली रखते हैं।

इस प्रकार के कई सन्तुलन तैयार किये जाते हैं। आइए हम कुछ मुख्य सन्तुलनो पर विचार करें :

(1) निर्माण कार्य का परिमाण और आवश्यक निर्माण सामग्रियो और उपकरणो की उपलब्धता।

(2) इजीनियरी उद्योग के लिए लक्ष्य और धातु की उपलब्धता।

(3) कृषि उत्पादन के लक्ष्य और मशीनो, फालतू पुर्जों, उर्वरको की पूर्ति, परिवहन सुविधाओ आदि की पूर्ति।

(4) उपभोक्ता मालो और कच्चे माल विधायित करने वाली इकाइयो, रेफ्रिजरेटर, पैकेजिंग आदि की उपलब्धता।

(5) देश के ईधन और ऊर्जा सन्तुलन यानी तेल, गैस, कोयला, पीट, शैल और जलाने की लकडी आदि का उत्पादन और उपभोग।

(6) श्रम शक्ति की कुल आवश्यकता सहित, श्रम शक्ति का सन्तुलन, वर्तमान आपूरित माँग और उस माँग की पूर्ति की सम्भावनाएँ।

(7) एक ओर मालभाडे के कुल परिमाण सहित मालभाडे का शेष तथा दूसरी ओर, माल की ढुलाई कितनी दूर तक करनी है और इस बात का बँटवारा कि कितने माल की ढुलाई रेलगाडी से होगी, कितनी मोटर परिवहन से, कितनी जहाजरानी से तथा कितनी हवाई जहाज से।

(8) नक्द आमदनी और खर्च का सन्तुलन जिसमे एक ओर कुल वेतन, बोनस, पेन्शन, छात्रवृत्तियाँ, नकद इनाम आदि शामिल हैं तथा दूसरी ओर उनका खर्च और इस बात का तखमीना कि कितने परिमाण मे किस किस्म के माल का उत्पादन करना है।

अब हम कुछ बातो पर विस्तार से विचार कर सकते हैं।

बिजली का सतुलन तैयार करने मे हमे यह निश्चित करना पडा कि बिजली पैदा करने वाली कितनी इकाइयाँ कब चालू की जाये। इस प्रश्न का उत्तर दसवी पचवर्षीय योजना मे मिला, क्योकि वार्षिक योजना पचवर्षीय योजना का अग होती है। इसमे शक नही कि अमली रूप देते समय योजना मे परिवर्तन किये जाते हैं परन्तु वार्षिक योजनाएँ कामोबेश पचवर्षीय योजनाओ के ढाँचे के अन्तर्गत ही अमल में लायी जाती हैं।

योजना के हर मुद्दे का क्षेत्रीय पक्ष होता है। उदाहरणार्थ, देश के लिए ईधन और ऊर्जा सन्तुलन सतोषजनक है परन्तु सोवियत सघ के यूरोपीय भाग के लिए यह थोडा अनिश्चित लगता है। इसलिए विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसी समस्याएँ योजना के कई हिस्सो मे उठ सकती हैं। ऐसे मामलो मे नये अप्रयुक्त ससाधनों की खोज की जाती है। कुछ लक्ष्यो का परित्याग कर दिया जाता है, दूसरे लक्ष्यो को घटा दिया जाता है परन्तु कामोबेश ऐसा सतुलन कायम करना आवश्यक है जो यह सुनिश्चित करे कि बुनियादी सैक्टरो, क्षेत्रो और प्रतिष्ठानो को सर्वोपरि

अवसर मुहैया हो ताकि वे योजना की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओ को सरलता से सुलझा सकें।

सोवियत योजनाओ मे उत्पादन की सुनिश्चित परिधि बतलाना आवश्यक है क्योकि उद्योग को विशिष्ट आकार के वेलित लोहे की जरूरत होती है और माग के अनुसार उपभोक्ता मालो का उत्पादन करना होता है। उदाहरण के लिए, धुलाई की फालतू मशीनें रोयेंदार टोपियो की माग पूरी नही कर सकती हैं। इसलिए खुदरा व्यापार का न केवल मुद्रागत मूल्य महत्वपूर्ण है, बल्कि माल की किस्मे भी।

अब उपभोक्ता माल का उत्पादन बढाने के कार्यक्रम से सम्बद्ध आर्थिक समस्याओ के बारे मे कुछ बातें कहना जरूरी है।

पहली बात, उद्योग के लिए दीर्घकालीन आधार पर विज्ञान सम्मत लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योकि नवीन से नवीनतर प्रतिष्ठान उपभोक्ता मालो का विनिर्माण करने लगे हैं। यदि प्रत्येक फैक्टरी यह स्वय निर्धारित करेगी कि वह किस प्रकार के माल का उत्पादन करेगी तो हो सकता है कि कुछ मालो से बाजार पट जाये और दूसरे मालो की कमी रहे।

किन्तु मांग का पूर्वानुमान करना आवश्यक है जिससे कि लक्ष्य सही-सही निर्धारित किये जा सकें, जबकि मांग का अनेक अज्ञात कारणो के साथ समीकरण होता है।

विभिन्न शोध सस्थानो में हजारो विशेषज्ञ इन समस्याओ का अध्ययन करते हैं और उनका विशदीकरण करने के लिए नियमितताओ की तलाश करते हैं।

योजना तैयार करने में एक समस्या यह है कि क्या उपलब्ध पूर्ति के मुकाबले मांग सन्तुलित करने मे बचत करना सम्भव है। इस आशय की गणना उपभोग के मानदण्डो पर आधारित है। स्वभावतया, इन मानदण्डो की अक्सर समीक्षा की जाती है क्योकि वर्तमान वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति वृद्धिरोध और इजाजत नही देती क्योकि कल तक जो मानदण्ड था, वह हो सकता है कि आज पिछडा हुआ बन जाये।

आइए अब हम लोग इस बात पर विचार करें जिसकी चर्चा प्रारम्भ मे की गई थी। योज्ना तैयार करने मे जुटे हजारो विशेषज्ञो को—जो राज्य योजना समिति से लेकर जिला योजना निकाय तक, मन्त्रालय के नियोजन विभाग से लेकर कारखाने के नियोजन विभाग तक इस काम मे लगे हुए हैं, अपने तखमीनो के प्रारम्भिक परिणामो का समजस्य बिठाना होता है। यह एक पेचीदा काम है क्योकि प्रत्येक विशेषज्ञ अवश्यम्भावी रूप मे अपने प्रतिष्ठान या विभाग की सीमाओ से घिरा होता है और इसलिए समस्या को अपने दृष्टिबिन्दु से देखता है। नियोजन निकायो के समक्ष बहुत अधिक अनुरोध, प्रस्ताव और विचार पेश किए जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि वार्षिक योजना का केवल एक प्रारूप तैयार करने मे राज्य आयोजना

समिति को लगभग सत्तर लाख दस्तावेजों को विधायित करना पड़ता है जिनमें लगभग पाँच करोड़ सूचकांक होते हैं और केवल एक प्रारूप पर्याप्त नहीं होता।

अन्ततः जब सामंजस्य स्थापित करने का सारा काम समाप्त हो चुका होता है तथा उत्पादन परिमाण और मुख्य उपभोग कारकों को निर्धारित किया जा चुका होता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि देश के बजट पर नजर डाली जाये। क्या शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं, प्रतिरक्षा और प्रशासन, विज्ञान और कलाओं के लिए पर्याप्त धन होगा? क्या नये निर्माण कार्यक्रम के लिए पर्याप्त कोष होंगे? क्या पर्याप्त सुरक्षित कोष होंगे?

अक्सर यह होता है कि बजट की जरूरतों को पूरा करने के लिए योजना में एक और संशोधन करना वांछनीय हो जाता है। उदाहरणार्थ अनुमान यह इंगित कर सकते हैं कि परियोजनाओं के आधुनिकीकरण और नये औजार लगाने के फलस्वरूप हल्के उद्योग अतिरिक्त मुनाफा देंगे। ऐसे मामलों में कीमतें घटाने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाता है। इसके लिए कई किस्म के मालों का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है ताकि उन मालों की शिनाख्त हो सके जिनकी कीमतें घटानी हैं।

जब सरकार योजना को स्वीकार कर लेती है तब उसे सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के समक्ष पेश किया जाता है। सिर्फ वही उसे स्वीकार कर सकती है और इस प्रकार इसे कानून का रूप प्रदान करती है। योजना में साथ ही साथ संघ जनतंत्रों के लिये भी सर्वाङ्गीण लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। जनतंत्रों के योजना निकाय सर्वाङ्गीण लक्ष्य निश्चित करते हैं और अपनी अपनी योजना के प्रारूपों की स्वीकृति के लिए अपनी अपनी सर्वोच्च सोवियत के अधिवेशन में प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद स्वायत्तशासी जनतंत्रों की सर्वोच्च सोवियतें अपने अधिकार क्षेत्र के अधीन उद्योगों और प्रतिष्ठानों के लिए योजनाओं पर विचार-विमर्श करती हैं। आँचलिक, प्रादेशिक, जिला, नगर और ग्रामीण सोवियतें अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में प्रतिष्ठानों के लिए योजनाओं पर विचार-विमर्श करती हैं। मंत्रालय अपनी ओर से सम्पूर्ण योजना के अनुसार अपने प्रतिष्ठानों के लिए लक्ष्य निर्धारित करते हैं।

इस प्रकार सोवियत योजनाएँ अवधारणाओं से लेकर कार्यान्वयन तक एक लम्बी और पेचीदा प्रक्रिया से गुजरती हैं, परन्तु यह एक सुनिश्चित मार्ग है। ये योजनाएँ यथार्थवादी हैं। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि उनकी पूर्ति और यहाँ तक कि अतिपूर्ति नियमित रूप से सम्पूर्ण उद्योग करते हैं।

सोवियत जनता योजना के लक्ष्यों को सृजनात्मक, उत्साहपूर्ण और कुछ आलोचनात्मक रूप में देखती है। "आलोचनात्मक रूप" का तात्पर्य यह है कि वह अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को अपनी प्रतिभाओं और क्षमताओं के दृष्टिबिन्दु से देखती है। जो अर्थशास्त्री जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक और विविधतापूर्ण हैं।

अभिनवीकरण, खोज और प्रविधि तथा उत्पादन तकनीक का उन्नयन वह अक्षय सुरक्षित शक्ति है जो बहुत हद तक हमारी योजनाओं का समय से पहले पूरा किया जाना सुनिश्चित करती है। इस बात को पहले से नियोजित नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, केवल किनेत में विगत पचवर्षीय योजनावधि (1971-75) मे फैक्टरी के कर्मियो और दफ्तर के कर्मचारियो इजीनियरो और तकनीशियनो ने सैकडो-हजारो अभिनवीकरण प्रस्ताव किये जिनसे 29 करोड 30 लाख रूबल की बचत हुई।

10वीं पचवर्षीय योजना के निरूपण के साथ ही 1990 तक के लिए दीर्घकालिक राष्ट्रीय आर्थिक विकास योजना भी तैयार की गयी।

ऐसी योजना की आवश्यकता का कारण यह तथ्य है कि नवीनतम प्रविधि का उपयोग करने वाले पेचीदा समुच्चयो के विकास के लिए समस्या को दीर्घकालिक दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

निश्चित ही अनेक आर्थिक और प्राविधिक समस्याओं को सुलझाने के लिए दीर्घकालिक और विस्तृत परिधि वाली योजनाओं की अपेक्षा मध्यम स्तर की योजनाओं की आवश्यकता होती है, परन्तु इसमे भी शक नहीं कि अधिकाधिक, विशेष रूप से पेचीदा समस्याओं पर दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में विचार करने की आवश्यकता है जो विभिन्न आर्थिक सेक्टरो और क्षेत्रों के बीच बढते हुए एकीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं।

दर्जनों, यहाँ तक कि सैकडो शोध कार्य करने वाले और आर्थिक निकायो के परिश्रमपूर्ण प्रयास के बाद विशिष्ट आँकड़े तैयार किये जा रहे हैं।

विज्ञान अकादमी और राज्य नियोजन समिति के शोध सस्थानों, मत्रालयो और प्रमुख प्रतिष्ठानो के सस्थानो और प्रयोगशालाओं, विश्वविद्यालयों और उच्चतर अध्ययन के अन्य सस्थानो के सकायो और प्रयोगशालाओं ने सामान्य योजना पर काम शुरू कर दिया है।

इस समय योजना विशेषज्ञ नियोजन तकनीक, सूचकाँको और मानदण्डो से अपने को सम्बन्धित कर रहे हैं, इसके बाद वे गणना करने मे जुट जायेंगे। और इसमें शक नहीं कि इन सभी कार्यों के साथ-साथ बहस भी होती रहेगी, विचार-विमर्श होंगे और इष्टतम उत्तरो की खोज की जायेगी।"

रूस की पहली से दसवीं योजना के इतिहास और विकास पर रूसी लेखक पावेल शारिकोव का लेख

सोवियत सघ की पहली से दसवीं योजना तक के इतिहास और विकास को नवम्बर 1978 की "सोवियत भूमि" मे रूसी लेखक पावेल शारिकोव ने अपने एक लेख मे सक्षिप्त प्रकाश डाला है। यह लेख न केवल रूसी योजनाओं के इतिहास और विकास पर प्रकाश डालता है बल्कि रूसी नियोजन के अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं को भी स्पष्ट करता है—

पचवर्षीय योजना (रूसी सक्षिप्त रूप "प्यातिलेत्का") की शब्दावली सोवियत

मूल की है । आज से 50 वर्ष पहले जब हमने प्रथम पंचवर्षीय योजना का क्रियान्वयन शुरू किया था, यह शब्दावली हमारे शब्द-भण्डार का तथा हमारी जीवन-पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गयी । तब से एक के बाद दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं क्रियान्वित की गयी । उन्होंने ऐसे ऊर्ध्वगामी कदमों का काम किया जिनके जरिये देश आज के शिखरों पर आरूढ हो सका है ।

सोवियत अर्थतंत्र एक नियोजित अर्थतंत्र है । योजना के आधार पर विकास इसका वस्तुगत नियम है । जीवन ने दिखा दिया है कि केवल विज्ञान-आधारित नियोजन से ही आर्थिक विकास की स्थायी और गतिशील दर सुनिश्चित करना, एक अत्यधिक सजटिल राष्ट्रीय अर्थतंत्र में संतुलन बनाये रखना, विशेषीकरण, और सहयोग संगठित करना तथा सामाजिक कर्त्तव्यों को हल करना—समाजवाद के अन्तर्गत सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन अन्तिम विश्लेषण में इन कर्त्तव्यों के अधीन हो जाते हैं—सम्भव है ।

सोवियत संघ में तीन प्रकार की योजनाओं ने जो जीवन से उद्भूत तथा सम्पुष्ट हुई थी, रूप ग्रहण किया । दीर्घकालीन योजनाएं, मध्यकालिक (पंचवर्षीय) योजनाएं, तथा चालू (एक वर्षीय) योजनाएं । दीर्घकालिक योजनाओं की अवधि 10 से 15 वर्ष तक ही होती है । ये विकास की सामान्य दिशा की रूपरेखा बनाती हैं तथा उसका संकेत करती हैं, और मध्यकालिक योजनाओं की अपेक्षा कम निदेशात्मक और विस्तृत स्वरूप वाली होती हैं । दीर्घकालिक योजना का उद्देश्य है ठीक समय पर हमारे कर्त्तव्यों के स्वरूप और पैमाने को निर्धारित करना तथा उनकी पूर्ति पर हमारे समस्त प्रयासों को केन्द्रित करना, सम्भावित समस्याओं और कठिनाइयों को अधिक स्पष्टता से समझना, एक खास पंचवर्षीय अवधि से भी आगे जाने वाले कार्यक्रमों और परियोजनाओं को तैयार करने तथा उन्हें पूरा करने के काम को सुगम बनाना ।

लेनिन की गोएलरो योजना (रूस के विद्युतीकरण की राजकीय योजना का रूसी संक्षिप्त रूप) दीर्घकालिक नियोजन का श्रेष्ठ उदाहरण थी । यह 1920 में तैयार की गयी जो 10 से 15 वर्षों की अवधि के लिए अभिकल्पित थी । उसमें ऐसे 30 बिजलीघरों के निर्माण का प्रावधान था जो उस समय के लिए बहुत बड़े बिजलीघर थे ।

पंचवर्षीय योजनाएं दीर्घकालिक योजनाओं में अभिन्न रूप से शामिल कर ली जाती हैं जो उनके कार्यों को विकसित करती और ठोस बनाती हैं । पांच साल की अवधि बड़े-बड़े प्रतिष्ठान और इमारतें बनाने के लिए, नये खनिज भण्डारों का विकास करने के लिए, बहुत से प्रमुख क्षेत्रों में अनुसंधान-कार्य पूरा करने के लिए, उत्पादन में वैज्ञानिक उपलब्धियां लागू करने के लिए तथा महत्त्वपूर्ण सामाजिक कर्त्तव्यों का हल निकालने के लिए सर्वथा पर्याप्त होती है । अनुभव ने प्रमाणित कर दिया है कि पंचवर्षीय योजना अवधि दीर्घकालिक योजनाओं के लिए इष्टतम अवधि है ।

पहली पचवर्षीय योजना ने ही यह दिखा दिया कि इस अपेक्षाकृत अल्प समय मे भी बहुत काम किया जा सकता है। केवल चार वर्ष और तीन महीने मे ही (अर्थात उतने ही समय मे जितना कि सोवियत जनता को प्रथम पचवर्षीय योजना को पूरा करने मे लगा) 1500 बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान निर्मित कर लिये गये तथा नये उद्योग ट्रैक्टर, मोटरगाडी, मशीन औजार, विमान, अल्युमीनियम, अत्यधिक ठोस मिश्रधातु, ऊँचे दर्जे के इस्पात और अन्य-खड कर लिये गये। उसी अवधि मे गोएलरो योजना मे परिकल्पित बिजलीघरो के निर्माण के कार्यक्रम की क्षतिपूर्ति की गयी।

बाद की प्रत्येक पचवर्षीय योजना पूर्ववर्ती प्रथम पचवर्षीय योजना के मार्ग से आगे बढी तथा उसने देश की आर्थिक क्षमता को सुदृढ किया और जनता के मगल कल्याण को ऊँचा उठाया। किन्तु इनमें से प्रत्येक योजना की अपनी अद्वितीय लाक्षणिक विशेषताएँ थी। दूसरी पचवर्षीय योजना अवधि (1933-37) देश के इतिहास मे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की अवधि बन गयी, जबकि चौथी पचवर्षीय योजना (1946-50, प्रथम युद्धोत्तर पचवर्षीय योजना ने युद्ध मे तबाह हुए अर्थतत्र के पुनर्निर्माण का कार्य पूरा किया। यह उल्लेखनीय है कि हिटलरी आक्रान्ताओ ने सोवियत अर्थतत्र को अपार क्षति पहुँचाई थी। उन्होंने 1,710 नगरो और बस्तियो को ध्वस्त कर दिया और लूट लिया, 70,000 गाँवो को जला दिया तथा लगभग 32,000 औद्योगिक प्रतिष्ठानो को तहस-नहस कर दिया। किसी भी युद्ध मे किसी भी राज्य की इतनी क्षति और विनाश नही हुआ था। चौथी पचवर्षीय योजना अवधि के वर्षों मे देश ने न केवल युद्धपूर्व के अपने औद्योगिक उत्पादन के स्तर को हासिल कर लिया बल्कि उससे भी आगे बढ गया। 6200 नये और पुनर्निर्मित सयत्र, खानें बिजलीघर और अन्य प्रतिष्ठान चालू किये गये।

छठी पचवर्षीय योजना अवधि (1956-60) की विशेषता यह थी कि उसमें बहुत से नये उन्नत उद्योगो जैसे—औजार-निर्माण, रेडियो इजीनियरी, इलैक्ट्रानिक्स और इसी तरह के अन्य उद्योगो का जन्म हुआ।

एक निश्चित अवधि तक औद्योगिक विस्तार की दृष्टि से देश आगे बढा। सोवियत जनता पिछले वर्षों का लेखा-जोखा देश के औद्योगिक मानचित्र पर प्रकट हुए नये प्रतिष्ठानो की सख्या के जरिए लेती थी। प्रत्येक पचवर्षीय योजना के अपने प्रतीक थे। उदाहरणार्थ माग्नितोगोर्स्क धातुकर्म कारखाना तथा द्नीपर पनबिजलीघर (द्नेप्रोगेस) पहली पचवर्षीय योजना अवधि के प्रतीक थे। लियोनिद ब्रेझनेव ने अपनी पुस्तक पुनर्जन्म मे एक छात्रा के निम्नलिखित शब्दो को उद्धृत किया है जो द्नीपर पनबिजलीघर के महत्त्व को अत्यन्त शानदार ढग से व्यक्त करते हैं, "हमारे देश मे द्नेप्रोगेस का वही स्थान है जो साहित्य मे पुश्किन का, सगीत मे त्चाइकोव्स्की का है। वोल्गा, अगारा और येनिसेई पर कितने ही विराट केन्द्र क्यो न खडे हो जाएँ, उनसे सोवियत विद्युत इजीनियरी के पितामह का गौरव कम नही हो सकता।"

आइये, फिर प्रतीकों की बात करें। यह कहा जा सकता है कि तोगलियाती मोटरगाडी कारखाना और येनिसेई पनबिजलीघर (क्रास्नोयार्स्क में) हमें नवीं पचवर्षीय योजना के वर्षों की याद दिलाते हैं, जबकि काम या एटममाश (यह वोल्गोग्राद में बन रहा है) वर्तमान दसवीं पचवर्षीय योजना अवधि में अभिन्न रूप से जुडे है।

यद्यपि औद्योगिक निर्माण जारी है और हम देखते हैं कि देश एक विशाल निर्माण-स्थल बना हुआ है किन्तु जोर अब निश्चित रूप से दूसरी चीजों पर दिया जाने लगा है। अधिकांशत ध्यान सामाजिक उत्पादन की कार्यकुशलता पर, पिछले वर्षों में अस्तित्व में आई उत्पादन क्षमताओं के अधिकतम उपयोग पर तथा उनके आधुनिकीकरण और तकनीकी पुनर्नवीकरण पर केन्द्रित किया जा रहा है। नवी पचवर्षीय योजना अवधि (1971-75) के दौरान अर्थतन्त्र की सभी शाखाओं में उद्योग में गुणात्मक सुधार लाने की दिशा में तीव्र मोड आया। दसवी पचवर्षीय योजना में इस बुनियादी लाइन को मजबूत तथा और विकसित किया जा रहा है। यह सयोग की बात नहीं है कि इसे कार्यकुशलता और गुण की पचवर्षीय अवधि कहा जाता है। पहले ही की भाँति आठवें दशक में लाखों कार्यरत प्रतिष्ठानों को मानों नये सिरे से बनाया गया। करीब पाँच वर्षों मे उद्योग की 40 प्रतिशत उत्पादन क्षमताओं का पुनर्नवीकरण किया गया।

कृषि भी पचवर्षीय चरणों में विकसित होती जा रही है। यह सर्वविदित है कि सोवियत सघ की प्राकृतिक हालतें आदर्श कदापि नहीं हैं। देश की कृषि योग्य जमीन का काफी बडा भाग ऐसे इलाके मे है जहाँ बराबर सूखा पडा रहता है या ऐसे इलाके मे है जहाँ अधिक आर्द्रता रहती है। इसके बावजूद सोवियत सत्ताकाल मे कृषि उत्पादन मे साढे तीन गुनी वृद्धि हुई। इस सम्बन्ध मे कृषि को मशीनो से सज्जित करने की निर्णायक भूमिका रही। जहाँ 1928 मे पूरे देश मे केवल दो अनाज कम्बाइन हार्वेस्टर थे, वहीं आज सामूहिक और राज्य फार्मों मे कार्यरत ऐसी मशीनों की सख्या 6,92,000 है। कृषि उत्पादन बढाने में अछूती धरती के विकास का तथा मिट्टी को सुधारने, खेती मे रसायनो का प्रयोग शुरू करने और कृषि औद्योगिक समुच्चयों की स्थापना करने के लिए राज्य द्वारा उठाए गए कदमों का बहुत बडा महत्त्व था।

सोवियत सघ मे केवल आर्थिक विकास की ही योजना नहीं बनाई जाती। विज्ञान भी योजना के आधार पर विकसित होता है। निम्नलिखित सुविदित तथ्यों का स्मरण कीजिए—सोवियत सघ अन्तरिक्ष उडान का अगुवा बना, गहरे समुद्र मे नौचालन के इतिहास मे वह सबसे पहले उत्तरी ध्रुव पहुँचा, वह परमाणु के शान्तिपूर्ण उपयोग मे अन्य देशों में प्रथम रहा है। जीवविज्ञान, इलैक्ट्रानिक्स तथा विज्ञान की बहुत-सी अन्य शाखाओं मे सोवियत वैज्ञानिकों की उपलब्धियों को विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई है। भू उपग्रह और अन्तरिक्षयानों का प्रक्षेपण, बाह्य अन्तरिक्ष मे मानव की यात्रा तथा ऐसे अन्य कारनामे हाथ पर हाथ धरे सम्पन्न नहीं

किए जा सकते। उनके लिए लम्बी और योजनाबद्ध तैयारी की, अनेक बडे-बडे निकायो और सामूहिको के प्रयासो के समन्वय की आवश्यकता होती है और यह सब विज्ञान-आधारित योजना के बिना हासिल नही किया जा सकता।

चुम्बक की सुई उत्तर की ओर झुकी रहती है, सोवियत पचवर्षीय योजनाएँ मनुष्य की ओर सोवियत जनता के मगल-कल्याण की सतत समुन्नति उसका मुख्य लक्ष्य था और आज भी है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी 24वी और 25वी कांग्रेसो में एक सर्वांगीण कार्यक्रम तैयार किया जिसे सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जा रहा है। नवी पचवर्षीय योजना अवधि में नये सामाजिक कामों के लिए जितनी धनराशि आवटित की गई वह पिछली दो पचवर्षीय योजना अवधियो मे आवटित की गई धनराशि के बराबर थी। सामाजिक उद्देश्यो के लिए दसवी पचवर्षीय योजना अवधि में विपुल धनराशि आवटित की गई है। इतना अधिक आवास निर्माण पहले कभी नही हुआ था।

हर साल एक करोड दस लाख लोग नये फ्लैटो मे प्रवेश करते हैं। जहाँ प्रथम पचवर्षीय योजना अवधि में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मे सक्रमण हुआ, वही आज देश मे हमारे नौजवानो के लिए सार्वत्रिक अनिवार्य माध्यमिक शिक्षा लागू की जा रही है।

योजना केवल राजकीय नियोजन निकाय ही नही बनाते बल्कि—और सर्वोपरि मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो के व्यापक हिस्से भी बनाते हैं। सामूहिक और राज्य फार्मों की योजनाओ तथा प्रतिष्ठानो की योजनाओ पर सम्बद्ध कार्य सामूहिक विचार-विमर्श करते हैं जिन्हें नये सविधान मे उत्पादन तथा सामाजिक विकास के नियोजन मे भाग लेने का अधिकार प्रदान किया गया है। पाठको ने सम्भवत इस बात पर ध्यान दिया होगा कि सोवियत राजकीय योजनाओ को आज आर्थिक सामाजिक विकास की योजनाएँ कहा जाता है। यह बुनियादी परिवर्तन लेनिनग्राद, गोर्की और अन्य नगरो के, जहाँ प्रतिष्ठानो के सामाजिक विकास कार्यक्रम तैयार किए गए थे, बहुत से औद्योगिक प्रतिष्ठानो के कार्य सामूहिको की पहल कदमी पर लागू किया गया। यह एक महत्वपूर्ण नवीन प्रक्रिया सिद्ध हुई तथा अब इस प्रक्रिया को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर लागू किया जा रहा है।

हम कह सकते हैं कि पचवर्षीय योजनाएँ देश के जीवन का, प्रत्येक सोवियत नागरिक के जीवन का एक अभिन्न तत्व, उसके व्यक्तिगत मामलो का एक अभिन्न तत्व बन गई है। प्रत्येक पचवर्षीय योजना अवधि के अपने श्रमवीर थे, वे लोग जिन्होंने अन्य लोगो के लिए उदाहरण का काम किया।

एक के बाद दूसरी पचवर्षीय योजनाएँ सोवियत जनता के बारे मे, उसकी राजनीतिक नेता कम्युनिस्ट पार्टी के बारे मे, उसके उस शान्तिपूर्ण श्रम के बारे में

जो देश को बदल रहा है, साधारण मेहनतकश लोगों के जीवन को और अधिक समृद्ध बना रहा है। एक ही पुस्तक के विभिन्न अध्यायों के समान हैं।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम तीन वर्षों की उपलब्धियाँ

1979 के लिए सोवियत संघ की योजना और बजट के प्रारूप पर विचार-विमर्श करने के लिए नवम्बर, 1978 में मास्को में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के अधिवेशन में श्री ब्रेझनेव ने दसवीं पंचवर्षीय योजना (1976-80) के तीन वर्षों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए कहा—

"हमें यह कहने का पूरा अधिकार है कि दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के तीन वर्षों में देश ने आर्थिक एवं सामाजिक विकास की सभी दिशाओं में आशातीत प्रगति की है।"

लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा कि दसवीं पंचवर्षीय योजनावधि (1976-80) के तीन वर्षों में उत्पादन पिछली पंचवर्षीय योजना अवधि के तीन वर्षों के उत्पादन की तुलना में 450 अरब रूबल अधिक बढ़ गया। निश्चित उत्पादन परिसम्पत्ति 195 अरब रूबल बढ़ी। यह बढ़ोत्तरी देश में सातवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों की सम्पूर्ण निश्चित उत्पादन परिसम्पत्ति के लगभग बराबर ही है।

कृषि में प्रति मजदूर विद्युत शक्ति का अनुपात एक चौथाई से अधिक बढ़ गया है। ग्रामीण क्षेत्रों को 23 करोड़ टन से अधिक खनिज उर्वरकों की सप्लाई की गई। सिंचित अथवा जल-निष्कासित किए जाने के बाद उपलब्ध भूमि 45 लाख हैक्टर बढ़ गई। इस वर्ष अनाज की उपज 23 करोड़ 50 लाख टन थी और कपास का उत्पादन 80 लाख टन से भी अधिक हुआ।

इन तीन वर्षों के लिए जनसंख्या की नकद आमदनी बढ़ाने के लिए निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति पूर्ण रूप से उपलब्ध कर ली गई। खुदरा व्यापार की बिक्री 30 अरब रूबल से भी अधिक बढ़ गई। पंचवर्षीय योजना अवधि के प्रारम्भ से लगभग 65 लाख नये फ्लैट लोगों को प्रदान किए गए। पाँच लाख की आबादी वाले नगर के लिए पर्याप्त आवास-व्यवस्था अब सोवियत संघ में एक महीने से भी कम समय में निर्मित की जाती है।

लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा कि 1979 के लिए योजना "दसवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों की पूर्ति में एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी बन जाएगी।" उन्होंने कहा कि नई योजना के अनुसार उपभोक्ता माल के समेत औद्योगिक एवं कृषि-उत्पादन की बढ़ोत्तरी दरें भी बढ़ाई जाएँगी। श्रम-उत्पादकता और तेज गति से बढ़ेगी। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में विषम अनुपात को कम किए जाने के लिए कई कदम उठाने की परिकल्पना है, पूँजीनिवेश के वितरण में ईंधन, ऊर्जा, धातुकर्म और परिवहन जैसी प्रमुख शाखाओं में विकास पर बल दिया गया है। देश की प्रतिरक्षा क्षमताओं को उचित स्तर पर कायम रखा जा रहा है।

शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, संस्कृति तथा अन्य अनुत्पादक शाखाओं में काम करने वाले लोगों के वेतनों एवं पगारों को बढ़ाने का लक्ष्य 1979 में पूरा कर लिया

जाएगा। इसके फलस्वरूप 3 करोड से अधिक लोगो की आय दसवी पचवर्षीय योजना अवधि के दौरान बढ जाएगी। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के सेवा निवृत्त व्यक्तियो के लिए अतिरिक्त लाभो की व्यवस्था की जाएगी।

आर्थिक विकास के क्षेत्र में आधुनिक प्रवृत्तियाँ
(Recent Trends in Economic Development)

आर्थिक विकास के क्षेत्र मे भी स्टालिन की मृत्यु के बाद से ही नई-नई प्रवृतियाँ पनप रही हैं। स्टालिन के बाद के रूसी नेतृत्व का उद्देश्य मुख्यत यह रहा है कि रूसी जनता को पूर्वापेक्षा अधिक उपभोक्ता-वस्तुएँ सुलभ की जाएँ, कृषि क्षेत्र मे रूस की असफलता समाप्त हो जाए और औद्योगिक क्षेत्र मे रूस कृषि क्षेत्र के साथ समन्वय करते हुए पूरी तेजी से आगे बढे। वर्तमान लक्ष्य यह है कि हर दृष्टि से रूस इतना समुन्नत होता जाए कि 1980 तक वह आर्थिक विकास के क्षेत्र मे अमेरिका से आगे निकल जाए। हमे देखना चाहिए कि सोवियत सघ के आर्थिक विकास के क्षेत्र मे आधुनिक प्रवृत्तियाँ क्या हैं—

(1) राष्ट्रीय आय एव प्रति व्यक्ति आय—सोवियत सघ अपनी राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय मे निरन्तर वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है। रूस मे आर्थिक विकास की दर सामान्यत 6 से 7 प्रतिशत वार्षिक है। 1965 में रूस की राष्ट्रीय आय लगभग 840 अरब रूबल थी जो बढ कर 1977 मे लगभग 1,420 अरब रूबल हो गयी है। 1965 मे प्रतिव्यक्ति आय लगभग 182 रूबल थी जो 1977 मे बढ कर 210 रूबल हो गयी।

(2) पूँजी विनियोग मे तीव्र वृद्धि—सोवियत सघ अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग आदि सभी क्षेत्रो में पूँजी विनियोग तेजी से बढ रहा है। 1965–70 की अवधि मे औद्योगिक क्षेत्र मे पूँजी विनियोग लगभग 350 अरब रूबल था जो 1975 तक लगभग 500 अरब रूबल तक पहुँच गया। कृषि क्षेत्र मे नवी योजना मे लगभग 180 अरब रूबल विनियोग होने की आशा है अन्य विनियोगो मे भी 30 से 40 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है।

(3) कृषि उत्पादन में वृद्धि पर बल—स्टॉलिन की मृत्यु के बाद से ही कृषि उत्पादन में वृद्धि पर अधिकाधिक बल दिया जा रहा है। कृषि योग्य भूमि और सिंचाई सुविधाओ का विस्तार किया जा रहा है। सामूहिक खेतो का पुनर्गठन किया जा रहा है। कृषि उत्पादन मे तीव्र वृद्धि का अनुमान इसी से लगता है कि 1956-60 मे कृषि उत्पादन का औसत मूल्य लगभग 47 अरब रूबल था जो बढ कर 1970 मे 70 अरब रूबल और 1975 में लगभग 117 अरब रूबल तक पहुँच गया। सामूहिक फर्मों की सख्या 1949 मे लगभग 2 5 लाख से घट कर 1977 तक केवल 23 हजार रह गयी। कृषि का अत्यधिक आधुनिकीकरण और मशीनीकरण किया जा रहा है। 1975 के अन्त तक कृषको के पास लगभग सात लाख ट्रेक्टर थे जो 1980 तक लगभग उन्नीस लाख हो जाने की आशा है। इसी प्रकार 1975 के अन्त तक कृषि क्षेत्र में ग्यारह लाख ट्रक थे जो 1980 तक 13 से 14 लाख हो जाने की

सम्भावना है। 1975 के अन्त तक कृषि मे लगभग 17 अरब रूबल मूल्य के उपकरण थे जो 1980 तक लगभग 23 अरब रूबल मूल्य के हो जाने की आशा है। इस भारी प्रगति के बावजूद सोवियत सघ कृषि क्षेत्र मे अभी अमेरिका से बहुत पिछडा हुआ है।

(4) उपभोक्ता वस्तुओ व विभिन्न सुविधाओ का विकास—सोवियत आर्थिक विकास की महत्त्वपूर्ण आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि उपभोक्ता-वस्तुओ को प्रोत्साहन दिया जाए। सोवियत जनता लम्बे अर्से से इतना त्यागपूर्ण जीवन बिता चुकी है कि अब जीवन स्तर उन्नत करने और उपभोक्ता वस्तुओ की खपत बढाने का मार्ग अपनाना सोवियत प्रशासको के लिए अनिवार्य हो गया है। अत अब इस विषय पर अधिकाधिक सोचा जाने लगा है और कुछ अमल भी किया जाने लगा है कि माँग के अनुरूप विभिन्न प्रकार का माल उत्पादित किया जाए। अब प्रवृत्ति उपभोक्ता उद्योगो के विकास पर पर्याप्त जोर देने की है। 1966 मे 1980 तक की नवीन पचवर्षीय योजनाओ मे इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि जनसाधारण के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा किया जाए तथा इस दृष्टि से भोजन, वस्त्र, मकान और सास्कृतिक और मनोरजन कार्यक्रम की सुविधाओ का अधिकतम विकास किया जाए। 20 वर्षीय योजना मे भी, जो विभिन्न भागो मे 1980 तक समाप्त होगी, उपभोक्ता उद्योगो पर बहुत अधिक बल दिया गया है। वर्तमान प्रवृत्ति यही है कि पूँजीगत वस्तुओ और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि की दरो मे अधिकाधिक । लाया जाए।

(5) औद्योगिक क्षेत्र का तीव्र विकास और विस्तार—स्टालिन काल मे रूसी सरकार ने पूँजीगत उद्योगो के विकास और विस्तार मे उपभोग उद्योगो की उपेक्षा की थी किन्तु अब औद्योगिक क्षेत्र का सन्तुलित विकास किया जा रहा है। रूस का औद्योगिक उत्पादन तीव्र गति से बढ रहा है। रूस का लक्ष्य है कि औद्योगिक उत्पादन मे 1980 तक वह अमेरिका के समकक्ष हो जाए। औद्योगिक क्षेत्र को रूस ने कितनी प्रमुखता दी है इसका अनुमान कुछ उत्पादनो मे लगाया जा सकता है। 1960 मे कोयले का उत्पादन 51 करोड टन हुआ था जबकि 1977 में लगभग 720 करोड टन का हुआ। इस्पात का उत्पादन 1960 मे लगभग 65 मिलियन टन से बढकर 1977 मे लगभग 150 मिलियन टन हो गया। खनिज तेल के उत्पादन मे तो आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 1960 मे लगभग 150 मिलियन टन खनिज तेल उत्पादित किया गया था जो बढकर 1977 मे लगभग 5 हजार मिलियन टन हो गया। दसवी योजना (1976–80) की अवधि में औद्योगिक उत्पादन मे 35 से 40 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है। जहाँ 1970 मे लगभग 375 अरब रूबल का औद्योगिक उत्पादन हुआ था वहाँ 1975 मे लगभग 520 अरब रूबल का हुआ और ,976 से 1980 की अवधि मे लक्ष्य लगभग 960 से 725 अरब रूबल प्रतिवर्ष का है।

(6) रासायनिक उद्योगो का विकास—आर्थिक विकास के क्षेत्र मे एक

आधुनिक प्रवृत्ति रासायनिक उद्योगो का विकास करने की है। वह विकास विभिन्न वस्तुओ के बदले प्लास्टिक के प्रयोग, कृषि के लिए खाद्य उत्पादन मे वृद्धि, वस्त्र उद्योग के क्षेत्र प्राकृतिक रेशे के बदले कृत्रिम रेशे के प्रयोग आदि के लिए आवश्यक समझा गया और भी अनेक सरचनात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। उदाहरणार्थ विगत कुछ वर्षों से ईंधन के रूप मे कोयले के बदले तल और गैस के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इजीनियरिंग उद्योग मे स्वचालित यन्त्रो के प्रयोग को बढाया जा रहा है और पूर्वी साइबेरिया तथा कजाखस्तान जैसे सुदूर प्रदेशो के साधनो के विकास पर अधिकाधिक बल दिया जा रहा है।

(7) **एकीकृत उद्योग क्षेत्रो का निर्माण**—आज के युग की एक आर्थिक प्रवृत्ति एकीकृत उद्योग क्षेत्रों का निर्माण है। 9वी पचवर्षीय योजना (1971-1975) के निर्देशो मे 'साझे सहायक उद्योगो, अन्य इजीनियरी सुविधाओ और सचार साधनो पर आधारित कारखानों के निर्माण के चलन को बढ़ाने' की सिफारिश की गई है। आजकल देश के विभिन्न भागो मे ऐसे दो सौ से अधिक उद्योग क्षत्रो का निर्माण चल रहा है। इससे होने वाले लाभ किसी से छिपे नही हैं, इस प्रकार से बनाए जाने वाले कारखानो की लागत मे तीन से पाँच प्रतिशत निर्माण कार्य म प्रयुक्त क्षेत्रफल मे दस प्रतिशत और सचार साधनो की लम्बाई मे बीस प्रतिशत की कमी होती है।

(8) **प्रावैधिक कौशल और श्रम उत्पादकता बढाने का प्रयत्न**—पिछले दशक से सोवियत सघ मे निरन्तर प्रयास किया जा रहा है कि श्रम का प्रावैधिक कौशल और इसकी उत्पादन क्षमता बढे। इसके लिए प्रशिक्षण व्यवस्था का प्रसार किया जा रहा है और कुछ क्षेत्रो मे पाश्चात्य वैज्ञानिक एव तकनीकी विधियो का आश्रय लिया जाने लगा।

(9) **यातायात एव सचार क्षेत्र का सुधार और विस्तार**—सोवियत सघ मे यातायात और सचार क्षेत्र मे तीव्र तकनीकी सुधार और प्रसार का एक आन्दोलन सा चलाया जा रहा है। 1958 मे विद्युत तथा डीजल से चलने वाली रेलो का प्रतिशत लगभग 26 था जो 1965 तक ही 85 प्रतिशत हो गया और 1979 तक इसमे आशातीत विस्तार हुआ है। यातायात क्षेत्रो मे क्षमता और लोचशीलता को बढाया जा रहा है, फलस्वरूप ढुलाई क्षमता मे लगभग 35 से 40 प्रतिशत वृद्धि हुई है। रूस मे यातायात और सचार साधनो का जाल बिछाया जा रहा है, फिर भी देश की परिवहन और सचार क्षमता अभी अमेरिका के समक्ष नही है। दसवी योजना (1976–1980) का लक्ष्य लगभग तीन हजार किलोमीटर मय रेल मार्गों और 65,000 किलोमीटर पक्की सडको के निर्माण का है।

(10) **व्यापार एव वाणिज्य मे तीव्र वृद्धि**—सोवियत सघ का आन्तरिक और विदेशी व्यापार तीव्र गति से बढा है। विदेशी व्यापार पर सरकार का एकाधिकार है। स्टालिन काल तक विदेशी व्यापार पर सरकार का कठोर नियन्त्रण रहा किन्तु बाद मे ख्रुश्चेव युग मे विदेशी व्यापार नीति नियन्त्रणो को शिथिल बनाया गया और प्रवृत्ति निरन्तर विकासमान है। आज सोवियत सघ के सौ से भी

अधिक राष्ट्रों से व्यापारिक समझौते हैं। 1971–75 की अवधि मे ही विदेशी व्यापार में लगभग 30 से 35 प्रतिशत वृद्धि हुई। विदेशी व्यापार की एक मुख्य प्रवृत्ति समाजवादी राष्ट्रों के साथ व्यापार विस्तार मे पहल करने और साथ ही विकासशील राष्ट्रों से विदेशी व्यापार को प्राथमिकता देने की है। विदेशी व्यापार की वृद्धि के लिए साम्राज्य सरकार औद्योगिक सगठनो तथा सहकारी सस्थाओ के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियो और व्यापारिक मेलो मे भाग लेती है। वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि एक ओर तो उत्पादन को परिमाणात्मक रूप मे बढाया जाए और दूसरे गुणात्मक पक्ष पर भी अधिकाधिक ध्यान दिया जाए ताकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में रूसी माल की प्रतिष्ठा बढे। 1980 तक विदेशी व्यापार मे लगभग 40 प्रतिशत वृद्धि हो जाने की आशा है।

(11) साम्यवादी समाज की स्थापना की ओर तेजी—नियोजन और आर्थिक विकास की वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि रूस मे शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण साम्यवादी समाज की स्थापना कर दी जाए। इसी दृष्टि से वर्तमान बीस वर्षीय कार्यक्रम चलाया जा रहा है। आर्थिक विकास और नियोजन की इस प्रवृत्ति के दर्शन हमे ख्रुश्चेव के इन शब्दो से होते हैं जो उन्होने अक्तूबर 1961 मे साम्यवादी दल की 22वीं कांग्रेस मे कहे थे—"अपने सघर्ष मे श्रमिक और उनके साम्यवादी दल को तीन ऐतिहासिक अवस्थाओ से गुजरना है—शोषको के शासन को बलपूर्वक समाप्त करके, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना, समाजवाद का निर्माण एव साम्यवादी समाज की स्थापना। हमारा साम्यवादी दल और हमारे देशवासी इनमे से दो अवस्थाओ को पार कर चुके हैं। 20वीं शताब्दी साम्यवादियो की अपूर्व विजय की शताब्दी है। इसके पूर्वार्द्ध मे समाजवाद ने हमारे देश मे मजबूती से पैर जमाया है और अब इसके उत्तरार्द्ध मे साम्यवाद अपने सुदृढ पैर जमायेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साम्यवादी दल का यह अधिवेशन नवीन कार्यक्रम (20 वर्षीय कार्यक्रम) प्रस्तुत करता है।"

(12) श्रमिक कल्याण कार्यक्रमो मे अभिवृद्धि—सोवियत सघ मे श्रमिको के कल्याण कार्यक्रमो की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, उन्हे पूर्वापेक्षा अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता दी जा रही है और उनके काम के घटो मे कमी की जा रही है। अक्तूबर सन् 1977 के नए सविधान मे रूसी श्रमिको को नयी दिशा और नयी सुविधाएँ प्रदान की। काम के घटे 1970 तक प्रति सप्ताह 35 कर दिए गए जिन्हें 1980 तक घटा कर 30 कर दिया जाना है। श्रमिकों की मासिक आय मे वृद्धि की गई है, उनके आवास गृहो के निर्माण मे तेजी लाई गई है। सामूहिक फार्मों की कृषको की आय मे लगभग 30 से 35 प्रतिशत वृद्धि हुई है। आवास सुविधाओ मे 1960 के मुकाबले 1980 तक लगभग 200 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य है। 1965 मे आवास-गृहो की क्षमता लगभग 50 करोड वर्ग मीटर फर्शक क्षेत्र था जो 1976 तक लगभग 108 करोड वर्ग मीटर कर दिया गया जिससे करोडों लोगो की उत्तम आवास व्यवस्था हो सकी। श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि का जो अभियान

चलाया गया है उससे पिछली पंचवर्षीय योजना में 28 से 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई और 1976–80 की अवधि में 35 प्रतिशत तक वृद्धि की सम्भावना है।

(13) **जन कल्याण सम्बन्धी सेवाओं का विस्तार**—आर्थिक विकास व नियोजन के क्षेत्र में एक आधुनिक प्रवृत्ति जन-कल्याण सम्बन्धी सेवाओं के अधिकाधिक विस्तार की है। इसी दृष्टि से ये प्रयत्न किए जा रहे हैं कि 1980 तक रूसियों को निम्नलिखित सेवाएँ मुफ्त मिल सकें—(1) विद्यार्थियों को शिक्षण संस्थानों में सभी प्रकार की व्यवस्था मुफ्त मिले, (2) अयोग्य और अपाहिज लोगों की देखभाल समाज द्वारा की जाए, (3) सभी विद्यालयों में मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था हो, (4) सभी नागरिकों को मुफ्त चिकित्सा और दवा दी जाए (5) मुफ्त आवास सुविधाएँ मिलें, (6) मुफ्त म्युनिसिपल यातायात सेवाएँ मिलें, (7) उद्योगों व संस्थानों में काम करने वाले लोगों और कृषि क्षेत्र में सभी सामूहिक किसानों को दिन का भोजन मुफ्त दिया जाए।

(14) **सामाजिक सुरक्षा का विस्तार**—एक आधुनिक प्रवृत्ति सामाजिक सुरक्षा योजना के अधिकाधिक विस्तार की है। इस दृष्टि से रूस आज विश्व का सबसे अग्रणी राष्ट्र है और रूसी बजट का लगभग 11–12 प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा पर व्यय किया जाता है। सोवियत शासन की यह प्रवृत्ति सोवियत श्रमिकों में आत्म विश्वास और दृढ़ता की भावनाओं का विकास करने में प्रशंसनीय रूप से सहायक हुई है। इसके अतिरिक्त श्रम की उत्पादकता की वृद्धि और प्राविधिक उत्कृष्टता में सुधार करने पर अधिकाधिक बल दिया जा रहा है।

(15) **श्रम शिक्षा में नया अभियान और फैक्ट्री विश्वविद्यालय**—अन्तर विद्यालय अध्ययन-उत्पादन कम्बाइन (एस पी सी) एक दशक पूर्व मास्को में पहली बार प्रकट हुए। आज यह बिलकुल स्पष्ट है कि ये कम्बाइन ऐसे नये प्रकार के विद्यालय बन गये हैं जो—सामान्य शिक्षा स्कूल और उद्योग, परिवहन, व्यापार तथा सेवा प्रतिष्ठानों में कार्यरत मजदूरों के स्कूलों के साथ-साथ स्कूली छात्रों की पोलिटेक्निकल और श्रम-शिक्षा के अनेकानेक प्रश्नों का सफलतापूर्वक हल निकाल रहे हैं। मास्को के 80 प्रतिशत से अधिक सीनियर स्कूली छात्र ऐसे ही कम्बाइनों में अपना व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। 1980 तक नौवें और दसवें वर्ष के सभी छात्र इन कम्बाइनों में जाने लगेंगे।

फैक्ट्री विश्वविद्यालय सोवियत संघ की उल्लेखनीय उपलब्धि है। फैक्ट्री-विश्वविद्यालयों के आज के अधिकांश छात्र स्कूल छोड़ कर आने वाले लोग हैं। फिर भी प्रशिक्षण का सिद्धान्त उसी प्रकार है—चुने हुए रोजगार में उत्पादक कार्य के साथ सैद्धान्तिक प्रशिक्षण को आवश्यक रूप से सम्बद्ध करना जरूरी है। फैक्ट्री विश्वविद्यालय का छात्र ज्यों-ज्यों ज्ञान संचित करता जाता है, क्रमिक रूप से वह अप्रेन्टिस से तरक्की कर कर्मी, सहायक फोरमेन, टेक्नीशियन, प्राविधिज्ञ, डिजाइनर इंजीनियर बनता है।

(16) **नये प्रयोगों व परीक्षणों का विकास**—आर्थिक विकास के लक्ष्यों की

पूर्ति के लिए नए-नए प्रयोगो और परीक्षणो की प्रवृत्ति ने बल पकडा है। आर्थिक नीतियो, व्यावसायिक प्रबन्ध और प्रशासनिक रीतियो को अधिक लचीला व आधुनिक बनाया जा रहा है। आधुनिक प्राविधिकी के क्षेत्र मे सैंकडो नए प्रयोग चल रहे हैं ताकि नवीन मशीनीकृति और स्वचालित उत्पादन प्रक्रियाओ का अधिकतम विकास किया जा सके। आवश्यकतानुसार सामयिक और अविलम्ब निर्णय करने की सुविधा देने के लिए तथा केन्द्रीयकरण के दुष्प्रभाव को घटाने के लिए औद्योगिक कारखानो के प्रबन्धको को पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रता दी जाने लगी है। इसके अलावा, औद्योगिक सस्थानो मे लागत लेख एव लाभ-सिद्धान्तो का समावेश किया जा रहा है।

(17) **रहन सहन के स्तर में आश्चर्यजनक प्रगति**—स्टालिन काल तक पूँजीगत उत्पादन-वृद्धि पर तो अत्यधिक बल दिया जाता रहा, किन्तु उपभोग-वस्तुओ के उत्पादन की उपेक्षा की गई जिससे जनता को भारी कष्ट सहने पडे और भीतर ही भीतर जनता मे असन्तोष भी पनपा। किन्तु स्टालिन की मृत्यु के बाद नये नेतृत्व ने वस्तु स्थिति को समझा और पूँजीगत तथा उपभोग उत्पादन को सतुलित महत्त्व देने की नीति अपनाई। फलस्वरूप रूसियो के जीवन स्तर मे और उपभोग मे प्रगति आश्चर्यजनक रही है। भूतपूर्व प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने बीसवी काँग्रेस को सम्बोधित करते हुए कहा था कि अगले बीस वर्षो मे सोवियत जनता का जीवन स्तर विश्व के सब देशो से अधिक हो जायेगा। 1960 से 1980 की अवधि मे भोजन के उपयोग मे 13 गुनी, उपभोग वस्तुओ मे 5 गुनी और आवास व्यवस्था मे दुगुनी वृद्धि की जाएगी। रूस ख्रुश्चेव के स्वप्न को साकार कर रहा है। उच्च जीवन-स्तर के लिए श्रमिको की आय मे वृद्धि पर विशेष बल दिया जा रहा है, क्योकि रूस मुख्यत श्रमिको का देश है 1965 मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय 180 रूबल से कुछ अधिक थी जो 1970 मे 260 रूबल से अधिक हो गई और 1980 तक इसे बढाकर लगभग 400 रूबल कर देने का लक्ष्य है। रूसियो के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अकेले 1977 मे रूस मे लगभग 13 लाख कारो, 70 लाख टेलीविजन सैटो, 58 लाख रेफ्रिजरेटरो और 35 लाख से भी अधिक धुलाई-मशीनो का निर्माण किया गया। जन सामान्य के जीवन स्तर मे सुधार के लिए जो सामाजिक उपभोग कोष है, वह आश्चर्यजनक रूप मे बढा है। 1960 मे इस कोष मे लगभग 2450 रूबल थे जो बढकर 1980 तक लगभग 29500 करोड रूबल हो जाने की सम्भावना है जो कि रूस की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत भाग होगा। इस बात के विशेष प्रयत्न किए जा रहे हैं कि 1980 तक सोवियत जनता को मुफ्त शिक्षा, मुफ्त चिकित्सा, मुफ्त नगरीय यातायात, मुफ्त आवास, दोपहर का भोजन और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हो सके। कल्याणकारी कार्यक्रमो के लिए राज्य का योगदान अरबो रूबल बढा दिया गया है।

(18) **मूल्य-सूचियों का प्रकाशन**—एक हाल की प्रवृत्ति मूल्य-सूचियो के

प्रकाशन की है। जनवरी, 1968 से ही प्रत्येक उद्योग के लिए मूल्य-सूचियों का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। इन सूचियों को प्रतिवर्ष संशोधित रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस नई व्यवस्था से अर्थात् मूल्यों के निर्धारण में कारखानों के लिए उत्पादन लागत कम करना तथा आय-व्यय का सही हिसाब रखना अधिक सुगम हो गया है।

(19) आयात नीति को उदार करना—हाल ही के वर्षों में सोवियत रूस ने अपनी आयात नीति को पूर्वापेक्षा अधिक उदार बनाया है और पूँजीवादी विश्व से उसका व्यापार बढ़ रहा है। आम तौर पर अमेरिका से खाद्यान्न और अनेक वस्तुओं के आयात के समझौते किए गए हैं। रूस की औद्योगिक क्षेत्र में यह नवीन प्रवृत्ति राजनीतिक क्षेत्र में सह-अस्तित्व की धारणा को प्रोत्साहन देने वाली है।

ये सभी तथ्य इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सोवियत संघ के आर्थिक विकास में नई प्रवृत्तियाँ तेजी से प्रबल होती जा रही हैं और फलस्वरूप रूस का आर्थिक विकास चमत्कारी ढंग से हो रहा है। औद्योगिक निर्माण जारी है और देश एक विशाल निर्माण-स्थल बना हुआ है, किन्तु जोर अब निश्चित रूप से दूसरी चीजों पर दिया जाने लगा है। अधिकांशतः ध्यान सामाजिक उत्पादन की कार्य-कुशलता पर, पिछले वर्षों में अस्तित्व में आई उत्पादन क्षमताओं के अधिकतम उपयोग पर तथा उनके आधुनिकीकरण और तकनीकी पुनर्नवीकरण पर केन्द्रित किया जा रहा है। नवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (1971–75) के दौरान अर्थतंत्र की सभी शाखाओं में उद्योग में गुणात्मक सुधार लाने की दिशा में तीव्र मोड़ आया। दसवीं पंचवर्षीय योजना में इसे बुनियादी लाइन की पंचवर्षीय अवधि कहा जाता है। पहले की ही भांति आठवें दशक में लाखों कार्यरत प्रतिष्ठानों को मानो नये सिरे से बनाया गया। करीब पाँच वर्षों में उद्योग की 40 प्रतिशत उत्पादन क्षमताओं का पुनर्नवीकरण किया गया। कृषि भी पंचवर्षीय चरणों में विकसित होती जा रही है।

1977 के नये सोवियत संविधान ने देश के सर्वांगीण जीवन को नई दिशा दी है इसमें नये प्राण फूँके हैं। जैसा कि श्री सुवन बनर्जी ने लिखा है—किसी देश का संविधान न केवल मौजूदा सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली की पुष्टि करता है बल्कि उसके विकास की दीर्घकालिक सम्भावनाएँ भी व्यक्त करता है। इस प्रकार यह सामाजिक प्रगति और परिवर्तन का शक्तिशाली औजार है। उपलब्ध प्रगति के साथ तालमेल बैठाने के लिए समय-समय पर इसे संशोधित करने की भी आवश्यकता है। नया सोवियत संविधान उन्नत समाजवाद की उपलब्धियों को मान्यता देता है और कम्युनिज्म की स्थापना की सम्भावनाओं को व्यक्त करता है। यह व्यक्ति और समाज के समायोजन में इष्टतम हितों और कम्युनिज्म की स्थापना की सम्भावनाओं को व्यक्त करता है। यह व्यक्ति और समाज के समायोजन में इष्टतम हितों और कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण की प्रत्यक्ष माँगों के बीच समुचित सन्तुलन हासिल करता है। यह उत्पादन के समाजवादी सम्बन्धों को और अधिक उन्नत बनाने की, उपयुक्त अधिसंरचना के विकास की ओर स्वयं कम्युनिज्म के सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में उनके क्रमिक विकास की माग करता है।

प्रश्नावली
(University Questions)

अध्याय 1

1 रूसी सरकार ने सन् 1921 में नई आर्थिक नीति क्यों प्रारम्भ की ? इसकी मुख्य विशेषताएँ क्या थीं ? क्या यह नीति रूस की तत्कालीन आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत थी ? (1978)

Why was the new economic policy introduced by the Russian Govt in 1921 ? What were the main features ? Was it justified looking to the conditions prevailing then in Russia ?

2 लेनिन ने नवीन आर्थिक नीति को दो कदम आगे बढ़ाने के लिए एक कदम पीछे हटने की संज्ञा दी। क्या आप इससे सहमत हैं ? (1978)

Lenin described the New Economic Policy as a step backward to take two steps forward Do you agree ?

3 रूस की नवीन आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यह नीति रूस की तत्कालीन परिस्थितियों में उचित थी ? (1978)

Describe briefly the salient features of the new economic policy of Russia Do you agree with the view that it was justified under the economic conditions in Russia at that time ?

4 सोवियत आर्थिक नीतियों व नियोजन में नवीन आर्थिक नीति की विवेचनात्मक व्याख्या कीजिए। (1978)

5 रूस में नवीन आर्थिक नीति के कारण तथा उद्देश्य बताइए तथा कृषि क्षेत्र में अपनाए गए कार्यक्रमों का विवरण दीजिए। साथ में इस नीति की कृषि में उपलब्धियों व असफलताओं का भी विवेचन कीजिए। (1977)

Explain the causes and objects of New Economic Policy in U S S R and describe the programmes adopted in the field of agriculture Also discuss its achievements and failure in agri culture

6 नई आर्थिक नीति "दो कदम आगे बढ़ने के लिए एक कदम पीछे हटना कहा जा सकता है।" क्या आप सहमत हैं ? कारण दीजिए। (1977)

The new economic policy can be described "as a step backward to take two steps forward Do you agree ? Give reasons

7 नई आर्थिक नीति क्या थी ? यह किस सीमा तक सफल रही ? (1977)
What was the new Economic Policy ? How far did it succeed ?

8 सोवियत रूस मे कैंची सकट की व्याख्या कीजिए और इस सकट से मुक्ति पाने के लिए सरकार द्वारा अपनाए गए उपायो का विवरण दीजिए। (1977)
Describe the Scissors Crisis in USSR and explain the methods adopted by the Govt to check the crisis

9 आयोजन काल के पूर्व सोवियत सघ मे कैंची सकट के लिए उत्तरदायी कारणो की व्याख्या कीजिए। इसके प्रभाव क्या थे ? (1978)
Describe the circumstances leading to the scissors crisis in the U S S R before the plan period What were its effects ?

अध्याय 2

10 सोवियत भूमि में प्रथम पचवर्षीय योजना के समय अर्थ-व्यवस्था की क्या स्थिति थी ? (1977)
What was the economic condition of Soviet Union on the eve of First Five Year Plan ?

11 प्रथम योजना से पूर्व रूस की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति की समीक्षा कीजिए। (1977)
Discuss the social, political and economic conditions of U S S R on the eve of the First Five Year Plan

12 सोवियत सघ मे पहली पचवर्षीय योजना के समय राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए और बतलाइए कि नियोजन से इन परिस्थितियो मे कहाँ तक सुधार हुआ है ? (1978)

13 प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ के समय रूस की अर्थ-व्यवस्था का परीक्षण कीजिए। (1978)
Examine the conditions of Russian economy on the eve of First Five Year Plan

अध्याय 3

14 सोवियत सघ मे सहकारी खेती का क्या स्वरूप है ? आप सामूहिक खेती और राजकीय खेती मे कैसे भेद करेंगे ? (1977)
What is the nature of Co-operative Farming in Soviet Union ? How would you distinguish between collective farming and state farming ?

15 रूस में प्रथम योजना काल मे कृषि के सामूहीकरण के प्रभावों का विवेचन कीजिए और कालखोज (सामूहिक खेत) के कार्य में आई बाधाओ पर प्रकाश डालिए। (1977)

Discuss the effects of collectivisation on agriculture during First Five Year Plan in U S S R and throw light on the obstruction put forth in the working of Kolkhoz (collective farms) in U S S R.

अध्याय 4

16 सन् 1954 से सोवियत सघ मे कृषि विकास कार्यक्रमो की 20 सफलताओ तथा असफलताओ का परीक्षण कीजिए।

17 हाल के वर्षो मे सोवियत सघ की कृषि और औद्योगिक नीतियो मे क्या परिवर्तन हुए हैं ? (1977)
What changes have been brought about in the agricultural and industrial policies of Soviet Union during recent years ?

18 सोवियत सघ मे पिछले पच्चीस वर्षों मे थो कुछ कृषि विकास के क्षेत्र मे परिवर्तन हुआ है, उसकी आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (197?)

अध्याय 5

19 सोवियत सघ मे तीव्र औद्योगीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न प्रमुख समस्याओ का वर्णन कीजिए और विकास की नई प्रवृत्तियो का उल्लेख कीजिए।

20 रूस मे प्रारम्भिक तथा वतमान समस्याओ का विवेचन कीजिए जिनका सामना द्रुतगति से औद्योगीकरण के दौरान किया गया। (1977)
Discuss the basic and present problems faced by U S S R during rapid industrialization

21 क्या यह कहना उपयुक्त है कि सोवियत सघ मे तीव्र औद्योगीकरण राज्य की आर्थिक विकास मे सक्रिय भूमिका के कारण हुआ है ? (1978)
It is correct to say that rapid industrialization in the Soviet Union is due to the active role of the state in the process of development

22 तीव्र औद्योगीकरण के प्रारम्भिक काल मे रूस द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयो के विषय मे आप क्या जानते हैं ? इन्हे किस प्रकार सुलझाया गया ? (1978)
What do you know of the difficulties faced by the U S S R in the initial period of rapid industrialization ? How did she solved them ?

अध्याय 6

23 रूस की नियोजन तथा आर्थिक विकास प्रणाली की आधुनिक प्रवृत्तियो पर एक टिप्पणी लिखिए। (1978)
Write a short note on the recent trends in planning and economic development of U S S R

24 सोवियत सघ ने आर्थिक विकास के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी सफलता प्राप्त की है। इस कथन के सन्दर्भ मे नियोजन की आधुनिक प्रवृत्तियो का उल्लेख कीजिए। (1978)